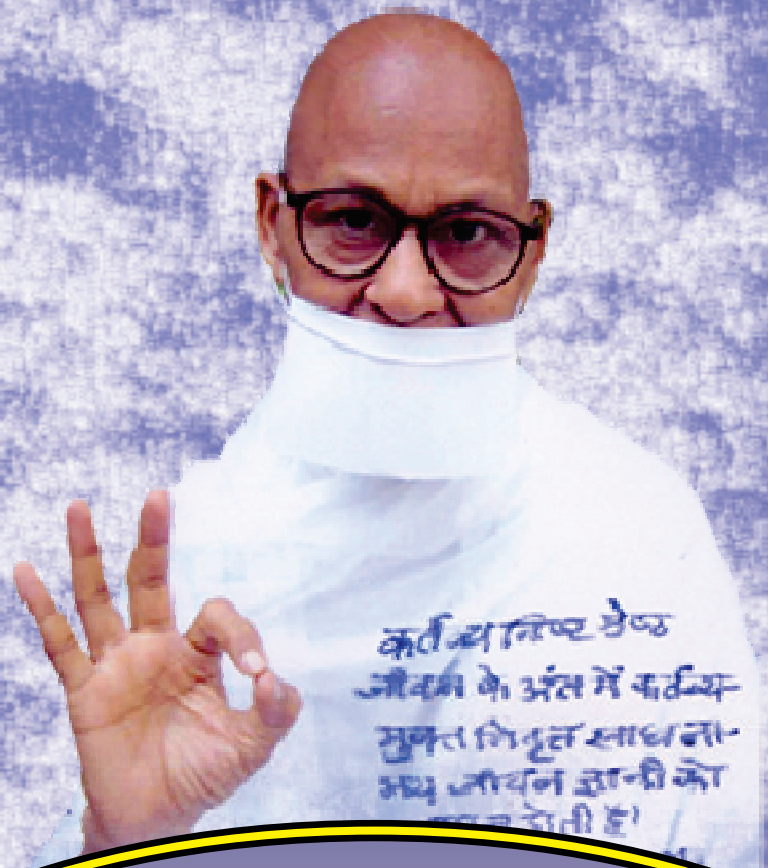

आगम मनीषी

श्री तिलोकचंद जैन द्वारा संपादित

जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर

भाग ० ७

प्रस्तावना : उद्‌बोधन

जैन धर्म के मूलभूत सिद्धा तों के प्रचार प्रसार से स पूर्ण विश्व में सुख शा ति का स चार हो सकता है । धर्म ही वह अमृतमय रसपान है, जो जीवन को अशान्ति और अस तोष की व्याधि से मुक्त कर सकता है, अतएव धर्म के व्यापक और सर्वतोमुखी प्रचार प्रसार की आज के युग में निता त आवश्यकता है ।

जैनधर्म के मूलभूत सिद्धा त ऐसे उदार और व्यापक है जो विश्व की सभी समस्याओं का व्यावहारिक समाधान करने की क्षमता रखते हैं । भगवान महावीर के मौलिक सिद्धा तो के प्रचार प्रसार की आवश्यकता और उसके अनुकूल अवसर आज पहले से अधिक रूप में उपस्थित है । आज समग्र जैन समाज का यह गुरुतर दायित्व है कि वह अपने आराध्यदेव के अनमोल उपदेशों को विश्व के कोने-कोने में फैलाये । जैन सिद्धा तों को दुनिया के सामने मुक्त भाव से रखना चाहिए । ऐसा करके ही हम अपने आराध्य देव के प्रति सच्ची भक्ति का परिचय दे सकेंगे ।

आत्म कल्याण के लिये मानव भव का अधिक से अधिक उपयोग कर लेना चाहिए । मनुष्य शरीर ही मुक्ति का निमित्त है, इस शरीर के बिना मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती । इसी कारण सम्यग्दृष्टि देव भी मानव भव पाने की लालसा रखते हैं । प्रबल पुण्योदय से ही इस भव की प्राप्ति होती है । मानव भव में ही विशिष्ट विवेक प्राप्त होता है, इसी में बुद्धि का प्रकर्ष होता है, इसी शरीर का निमित्त पाकर स यम ग्रहण किया जाता है । ऐसे अनमोल जीवन को पाकर भी यदि आत्मकल्याण की साधना नहीं की तो, यह भव प्राप्त होना ही निरर्थक हो जायेगा । एक बार प्राप्त मानव जीवन वृथा व्यतीत कर देने के बाद दूसरी बार इसकी पुनः प्राप्ति कब होगी यह कहा नहीं जा सकता । मानव जीवन ही अत्यन्त दुर्लभ है, इसे पाना बड़ा कठिन है ।

स सार एक कि पाक फल के समान है, कि पाक फल बाहरी र ग रूप में चाहे जितना सुन्दर और मनमोहक दिखाई देता हो, परन्तु उसका सेवन परिणाम में दारुण दुःखों का कारण होता है । प्रभु ने फरमाया, स सार की भी यही दशा है । स सार के भोगोपभोग, आमोद-प्रमोद हमारे मन को हरण कर लेते हैं किन्तु उनका परिणाम दुर्गतिदायक होता है । दरिद्र व्यक्ति पुण्योदय से लक्ष्मी प्राप्त कर लेता है तो वह कृतकृत्य हो जाता है, स तान की कामना रखने वाले के स तान प्राप्ति होने पर मानो वह निहाल हो गया । जो अदूरदर्शी

है, बहिरात्मा हैं, उन्हें यह सब सा सारिक पदार्थ मूढ़ बना लेते है । क चन और कामिनि की माया उसके दोनों नेत्रों पर पर्दा डाल देती है, कि इसके अतिरिक्त उसे कुछ भी नहीं सूझता । यह माया मनुष्य के मन पर मदिरा से भी अधिक स्थाई प्रभाव ड़ालती है, वह बेभान हो जाता है । ऐसी दशा में वह जीवन के लिये मृत्यु का आलि गन करता है, अमर बनने के लिये जहर का पान करता है, सुखों की प्राप्ति के लिये भय कर दुःखों का जाल बुनता जाता है । वह सोचता है कि वह दुःखों से दूर होता जा रहा है, परन्तु जब उसे ठोकर लगती है, लक्ष्मी अलग हो जाती है, स तान मर्मस्थान पर चोट पहुँचाकर बिछुड़ जाती है, वियोग का वज्र ममता के शेल शिखर को चूर चूर कर ड़ालता है, ऐसे समय में यदि पुण्योदय हुआ तो, आ खों का पर्दा हट जाता है, और जगत की वास्तविकता एक विभत्स नाटक की तरह नजर आने लगती है, जगत की भीषण अवस्था का आभास होता है ।

अर्थान स ति न मु चति मा दुराशा मिथ्या आका क्षाए पीछा नहीं छोड़ती और आका क्षाओं के अनुकूल अर्थ की प्राप्ति कभी नहीं होती । यहाँ दुःखों का ठिकाना कहाँ है ? प्रातःकाल जो राज सि हासन पर था, दोपहर होते होते दर-दर के भिखारी हो जाते हैं । अभी र गरेलियाँ उड़ रही थी, वहीं क्षण भर में हाय हाय की चित्कार हृदय को चीर ड़ालती है । कहा है- ***काहू घर पुत्र जायो, काहू के वियोग आयो, काहू रागर ग, काहू रोआरोई परी है ।***

गर्भवास की विकट वेदना, व्याधियों की धमाचौकड़ी, जन्म मरण की व्यथाएँ, नरक गति के अपरम्पार दुःख ! सारा स सार मानो एक विशाल भट्टी है, और प्रत्येक स सारी जीव इसमें कोयले की तरह जल रहा है ।

वास्तव में स सार का यही सच्चा स्वरूप है । मनुष्य जब अपने आन्तरिक नेत्रों से स सार की इस अवस्था को देख पाता है, तो उसके अ तःकरण में एक अपूर्व स कल्प उत्पन्न होता है । वह इन दुःखों से, आपदाओं से मुक्त होने की, इन दुःखों की परम्परा से छुटकारा पाने की भावना जागृत कर उनसे छुटकारा पाने का उपाय खोजता है । जब स सार से जीव विरक्त या विमुख बन जाता है, तो वह स सार से परे किसी और लोक की कामना करता है, यानि मोक्ष चाहता है । मुक्ति की कामना व्यक्ति को धर्म के सम्मुख लाती है, और फिर वह धर्माराधना में लग जाता है । प्रभु के उपदेश सुनने पढ़ने में रत हो जाता है, इस प्रकार धर्म आराधन कर अपनी आत्मा को भावित करता है ।

यस्य ज्ञानमनन्त वस्तु विषय , यः पूज्यते दैवते,
नित्य यस्य वचो न दुर्नयकृतैः, कोलाहले र्लुप्यते ।

रागद्वेष मुख द्विषा च परिषद, क्षिप्ता क्षणाद्देन सा,
स श्री वीर विभुर्विधूत कलुषा , बुद्धिं विधत्ता मम ॥

जिनका ज्ञान अनन्त वस्तुओं को विषय करता है, देव जिनकी पूजा उपासना करते है, जिनके वचन दुर्नयवादियों के द्वारा कृत कोलाहल में लिप्त विलुप्त नहीं होते, जिन्होने रागद्वेष आदि प्रमुख शत्रुओं के समूह को–आन्तरिक दोषों को क्षणभर में भगा दिया, नष्ट कर दिया, वे वीर प्रभु हमारी बुद्धि को निर्मल करे ।

स सार में धर्म के समान अन्य कोई वस्तु श्रेष्ठ व उपकारक नहीं है, धर्म ही प्राणीमात्र को विपत्ति के समय में सहायता देनेवाला, एव पतन के गर्त्त में गिरने से बचाने वाला है । सभी सा सारिक पदार्थ यहाँ तक की जीव के साथ रहने वाला शरीर भी आयुकर्म की समाप्ति होने पर यहीं रह जाता है, केवल धर्म ही जीव के साथ परलोक में जाता है और उसे विपत्ति से बचाकर, सुख शा ति प्रदान करता है, कहा है–

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे, भार्यागृहद्वारि, जना:श्मशाने ।
देहश्चिताया परलोक मार्गे, धर्मानुगो गच्छति जीव एक: ॥

इस प्रकार श्रद्धा रखता हुआ धर्म की खोज में निकल पड़ता है और मनुष्य 'जिन खोजा तिन पाइया' की नीति के अनुसार प्रभु वचनों में श्रद्धा रखकर अज्ञान और कषाय को मन्द–मन्दतर करता जाता है । धर्म की तासीर उन्नत बनाना है । नीच से नीच, पतित से पतित, पापी से पापी भी यदि धर्म की शरण में जाता है, प्रभु वचनों की शरण में जाता है तो उसे भी वह अलौकिक आलोक दिखलाता है, सन्मार्ग दिखलाता है । जिस प्रकार माता ग दे बालक को नहला–धुलाकर साफ सुथरा बना देती है वैसे ही यह जिनवाणी मलिन से मलिन आत्मा के कर्म मैल को छुड़ाकर उसे शुद्ध विशुद्ध बना देती है।

हिंसा की प्रतिमूर्ति, भय कर हत्यारे अर्जुनमाली का उद्धार करने वाला कौन था ? अ जन जैसे चोरों को किसने तारा ? लोग जिसकी परछाई से भी घृणा करते है ऐसे चा ड़ाल जातीय हरिकेशी को परम आदरणीय और पूज्यपद पर प्रतिष्ठित करने वाला कौन है ? प्रभव जैसे भय कर चोर की आत्मा का निस्तार करके उसे भगवान महावीर का उत्तराधिकारी बनाने का सामर्थ्य किसमें था ? इन सब प्रश्नों का उत्तर एक ही है–प्रभु के प्रवचन अशरण–शरण है, अनाथों का नाथ, दीनों का ब धु, नारकियों को देव बनाने वाला है ।

प्रस्तुत पुस्तक जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तरी भाग–७, श्री प्रज्ञापना सूत्र

पर आधारित अनेक प्रश्नों का अन्वेषण कर उनका सार गर्भित समाधान देने का स्तुत्य प्रयास आगम मनीषी श्री त्रिलोकमुनि जी महाराज ने बड़ी सूझबूझ के साथ कतिपय चार्टों के माध्यम से किया है । उपलब्ध शास्त्र के ३६ पदों की सुन्दर सार गर्भित व्याख्या कर उनमें से उद्‌भवित अनेक प्रश्नों का तार्किक समाधान करते हुए जीव, अजीव, इन्द्रिय, स ज्ञा, लेश्या, समुद्‌घात आदि कई विषयों पर चार्ट युक्त सुन्दर विवेचन उपलब्ध कर समग्र जैन समाज की अदभूत सेवा करने का समुचित प्रयास किया है । इससे पूर्व ५ पुस्तकों में ग्यारह अ गसूत्रों के निर्मित प्रश्नोत्तर एव छठे भाग में तीन उपा ग सूत्र औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम सूत्रों से स ब धित प्ररूनोत्तर का स पादन किया था । आगे तीन और पुस्तकों में शेष उपा ग और मूल तथा छेद सूत्रादि एव आवश्यक सूत्र, यों कुल ३२ आगमों के प्रश्नोत्तर बनेंगे।

इन से पूर्व भी आगमसारा श स पादित हुए थे, जिनका स योजन मैंने किया था । हमारा मूल उद्देश्य ज्ञान का अर्जन, उपार्जन और प्रचार प्रसार रहा है। स्वप्रेरणा से समाज के समक्ष विशाल आगमज्ञान को स प्रेक्षण कर, अनेकविध रूप से भव्य आत्माओं में 'धर्म की ज्योति' जगमगाये यही भावना रही है ।

समग्र जैन समाज के अनन्त उपकारी महामहिम स त मुनिराजों, एव महासती वर्यायों का शुभाशीर्वाद मुझे इस कार्य में नित्य प्रति प्रेरणास्पद रहता है, सभी गुरु भगव तों का हृदय से आभारी हूँ ।

विगत २२ वर्ष से आगम सेवा में रत श्रद्धेय आगम मनिषी श्री त्रिलोकमुनि जी महाराज का यह सराहनीय प्रयास मात्र भारत में ही नहीं स पूर्ण विश्व में भव्य धर्मानुरागियों के लिए आगम ज्ञान का प्रेरणा स्त्रोत रहा है । ऐसे सरल स्वभावी, आगम के प्रति विनम्र एव जागरुक प्रज्ञाशील स त रत्न का हृदय की असीम आस्था के साथ आभारी हूँ । कोम्प्युटर कार्य सहयोगी राजकोट के श्री डी. एल. रामानुजभाई को हार्दिक धन्यवाद ।

पीपोदरा, **विमलकुमार नवलखा**
नववर्ष सन् २०११ स पादन सहयोगी–आगम प्रकाशन समिति
मो॰ ९४२६८८३६०५, (०२६२१)२३४८८४

प्रज्ञापना सूत्र : परिचय

प्रश्न–१ : इस सूत्र का परिचय किस प्रकार है ?

उत्तर– स्थानकवासी जैनों द्वारा मान्य उपा ग सूत्रों में यह चौथा उपा ग सूत्र है । न दीसूत्र की आगम सूचि में इसका नाम अ गबाह्य उत्कालिक आगमों में उपलब्ध है। अतः समस्त श्वेता बर जैनों में यह सर्व सम्मत शास्त्र है। इस शास्त्र के रचनाकार ने स्वय ने अपना नाम निर्देश नहीं किया है, तथापि सूत्र की प्रार भिक प्रस्ताविक गाथाओं में इस शास्त्र के रचनाकार का नाम उपलब्ध है। जिसमें इस शास्त्र के रचयिता श्यामाचार्य (कालकाचार्य) को बताया गया है।

कालकाचार्य नाम को सूचित करने वाली दोनों गाथाओं को प्रायः सभी विद्वानों ने एव टीकाकारो ने, प्रक्षिप्त स्वीकारा है अर्थात् आगम रचनाकार की खुद की रचित वे गाथाएँ नहीं है कि तु अन्य श्रद्धेय शिष्य के द्वारा रची गई है ।

प्रक्षिप्त गाथाओं को एक तरफ करके विचारणा करने पर यह आगम भी अज्ञात कृतक शास्त्र के रूप में होने से १२ उपा गसूत्र सभी अज्ञातनामा बहुश्रुत रचित आगम है, यह एकरूपता स्पष्ट होती है ।

शास्त्र की अति प्राचीनता दर्शाने हेतु श्रद्धा जगत में इसे ग्र थों, व्याख्याओं में आचार्य देवर्धिगणि के समय से पूर्व के कालकाचार्य से जोड़ा जाता है । वास्तव में सही इतिहास के अनुभव–अनुप्रेक्षण में इस शास्त्र के रचनाकार देवर्धिगणि के समय में मौजूद कालकाचार्य का मानना अधिक स गत होता है । क्यों कि अ गशास्त्रों के लेखन के बाद ही उपा गसूत्रों के लेखन की आवश्यकता रही है । उसके पूर्व तात्विक विषय पूर्वों के ज्ञान से जुड़ा हुआ था । पूर्वों के ज्ञान का लेखन देवर्धि गणि के समय स भव नहीं होने से आचार्यों के परस्पर विचारणा से अनेक अ गबाह्य आगमों का लेखन स कलन किया गया हो ऐसा मानना अधिक उचित होता है । अतः ऐतिहासिक चिंतन से यह शास्त्र देवर्धिगणि के समय स कलित अनेक आगमों में से ही एक आगम है, ऐसा स्पष्ट

होता है । एव उन सभी सूत्रों के समान इसकी भी प्रामाणिकता सर्व सम्मत है ।

प्रश्न–२ : इस आगम के व्याख्याकार एव विषय परिचय किस प्रकार है ?

उत्तर– प्रायः उपा गसूत्रों के ऊपर स स्कृत टीका व्याख्या उपलब्ध है जो महान टीकाकार आचार्य श्री मलयगिरि द्वारा विक्रम की तेरहवीं चौदहवीं शताब्दि के आसपास रची गई है । उपा गसूत्रों में यह सब से विशाल आगम है जिसके मूलपाठ का परिमाण ७८८७ श्लोक तुल्य माना गया है । इस शास्त्र का पाठ प्रायः गद्यमय स कलन वाला है, क्वचित् विषय स कलन आदि रूप में श्लोक–गाथाएँ भी दी गई है ।

विषय :– इस आगम में जीव और अजीव दोनों तत्त्वों के भेद-प्रभेद और उनकी पर्यायों का(गुणों का) तात्त्विक विवेचनात्मक वर्णन है । इसके अध्यायों को **"पद"** स ज्ञा दी गई है तदनुसार इस शास्त्र के अध्ययन रूप **पद–३६** है एव किसी पद में उद्देशक रूप प्रतिविभाग भी किये गये हैं। इस शास्त्र की विशेषता यह भी है कि इसके प्रत्येक पद में प्रायः एक एक विषय की चर्चा–विचारणा की गई है। स क्षेप में यों भी समझ सकते है कि इसमें कथा, उपदेश, आचार या खगोल-भूगोल वगैरह विषयों का सग्रह नहीं किया गया है मात्र जीव-अजीव का तात्त्विक विवेचनात्मक वर्णन है ।

उपलब्ध साहित्य :– प्रज्ञापना सूत्र की आचार्य मलयगिरिजी कृत स स्कृत टीका, टीकानुवाद हिंदी गुजराती में प्रकाशित है । लुधियाना, सैलाना, ब्यावर एव राजकोट से यह शास्त्र विवेचन सहित प्रकाशित हुआ है। आगम सारा श और प्रश्नोत्तर के हमारे प्रावधान में इस शास्त्र की स्वत त्र पुस्तक प्रस्तुत की गई है और की जा रही है । इस सूत्र पर आधारित थोकड़ों के तीन भाग बीकानेर से प्रकाशित हुए हैं । बाद में ब्यावर से भी उनका पुनः प्रकाशन हुआ है।

प्रश्न–३ : इस शास्त्र के प्रत्येक पद का(अध्ययन का) विषय परिचय क्या है ?

उत्तर– इस सूत्र के ३६ पद है उनका संक्षिप्त परिचय निम्न है–

(१) प्रज्ञापनापद– जीव और अजीव के भेद प्रभेद किये गये है ।

(२) स्थानपद– जीवों के स्वस्थान का(उत्पतिस्थानों का) एकेन्द्रिय से

प चेन्द्रिय तक एव नारकी से देव पर्यंत तथा सिद्धो का वर्णन है।

(३) अल्पाबहुत्वपद– जीवों की अनेक द्वारों–अपेक्षाओं से तथा दिशा और क्षेत्र से अल्पाबहुत्व दर्शाई है। छ द्रव्यों की एव उनके पर्याय की, आयुष्यादि १४ बोल की तथा उत्कृष्ट ९८ बोलों में जीव के भेदों की अल्पाबहुत्व दर्शाई गई है।

(४) स्थितिपद– द ड़क के क्रम से जीवों की उम्र–स्थिति बताई है।

(५) पर्यवपद– जीवपर्यव में अवगाहना, स्थिति, वर्णादि एव ज्ञानादि पर्यायों की छट्ठाणवड़िया से(छ प्रकार की भिन्नताओं से) तुलना की गई है ।अजीव द्रव्य की प्रदेश, अगवाहना स्थिति, वर्णादि से तुलना की गई है।

(६) व्युत्क्रांतिपद– जीवों की गतागत, उत्पत्ति और मरण का विरह-काल एव आयुष्यब ध स ब धी वर्णन है।

(७) उश्वासपद– श्वासोश्वास कालमान स ब धी वर्णन २४ द ड़क के क्रम से है।

(८) स ज्ञापद– १० स ज्ञा और ४ स ज्ञा स ब धी वर्णन है ।

(९) योनिपद– जीवों की तीन–तीन प्रकार की योनि स ब धी वर्णन है।

(१०) चरमपद– रत्नप्रभा आदि, परमाणु आदि के चरम अचरम का वर्णन २६ भ गों के साथ दर्शाया गया है ।

(११) भाषापद– विविध प्रकार से भाषा का स्वरूप और वर्णन है।

(१२) शरीरपद– बद्धेलक, मुक्केलग शरीरों का वर्णन है। फिर २४ द ड़क के क्रम से भी निरूपण किया गया है।

(१३) परिणामपद– जीव तथा अजीव के परिणमन का वर्णन है ।

(१४) कषायपद– चार कषायों का स्वरूप विविध प्रकार से बताया गया है।

(१५) इन्द्रियपद– इन्द्रिय स ब धी वर्णन द्रव्य और भाव के भेदो से दो उद्देशक में किया गया है।

(१६) प्रयोगपद– १५ योग को ही "प्रयोग" कहकर २४ द ड़क में उसका वर्णन किया है।

(१७) लेश्यापद– ६ उद्देशकों द्वारा लेश्या स ब धी विविध वर्णन है ।

(१८) कायस्थितिपद– २२ द्वारों से १९५ बोलों की कायस्थिति कही गई है।

(१९) सम्यक्त्व– २४ द ड़क में तीन दृष्टि स ब धी कथन है।

(२०) अ तक्रियापद– एक समय में कौन कितनी स ख्या में सिद्ध होते हैं तथा तीर्थंकर, चक्रवर्तीपद, १४ रत्न, भवीद्रव्यदेव आदि की आगत और गत कही गई है और असन्नि आयुष्य का कथन है।

(२१) अवगाहना–स स्थान– पा च शरीरों की द ड़क क्रम से अवगाहना आदि का वर्णन है।

(२२) क्रियापद– कायिकी आदि ५ और आर भिकी आदि–५ क्रियाओं का अनेक प्रकार से निरूपण है।

(२३ से २७) कर्मपद– कर्मों की प्रकृति के ब ध उदय आदि की विचारणा विस्तार से की गई है।

(२८) आहारपद– २४ द ड़क में आहार स ब धी वर्णन प्रथम उद्देशक में एव दूसरे उद्देशक में आहारक अनाहारक का वर्णन अनेक द्वारों से किया गया है ।

(२९) उपयोगपद– २४ द ड़क में १२ उपयोग स ब धी वर्णन है ।

(३०) पश्यतापद– विशेष उपयोग रूप–९ पश्यता का वर्णन है ।

(३१) सन्नीपद– सन्नी-असन्नि स ब धी वर्णन द ड़क क्रम से है ।

(३२) स यतपद– सयत-अस यत जीवों का वर्णन है ।

(३३) अवधिज्ञानपद– अवधिज्ञान के भेद-प्रभेद स ब धी वर्णन है।

(३४) परिचारणापद– पा च प्रकार की परिचारणा स ब धी निरूपण है।

(३५) वेदनापद–वेदना के अनेक प्रकार से भेद दर्शाये गये हैं ।

(३६) समुद्घातपद– सात समुद्घातों और चार कषाय समुद्घातों स ब धी विस्तृत वर्णन है। अ त में मोक्ष तत्त्व का वर्णन करते हुए केवली, केवली समुद्घात और सिद्धों के स्वरूप का निरूपण है।

卐 卐 पद–१ : प्रज्ञापना 卐 卐

प्रश्न–१ : इस प्रथम पद के अनुसार जीव के उत्कृष्ट ५६३ भेद और अजीव के ५६० भेद किस प्रकार होते हैं ?

उत्तर– जीव के ५६३ भेद– नारकी के १४, तिर्यंच के ४८, मनुष्य के ३०३, देव के १९८ भेद हैं।

नारकी के १४ भेद– सात नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त।

तिर्यंच के ४८ भेद– पृथ्वीकाय के चार भेद है– (१) सूक्ष्म के अपर्याप्त (२) सूक्ष्म के पर्याप्त (३) बादर के अपर्याप्त (४) बादर के पर्याप्त। इसी प्रकार अपकाय के चार, तेउकाय के चार, वायुकाय के चार भेद है। वनस्पतिकाय के ६ भेद–(१) सूक्ष्म (२) साधारण (३) प्रत्येक। इन तीनों के अपर्याप्त एव पर्याप्त। ये एकेन्द्रिय के कुल ४+४+४+४+६=२२ भेद होते हैं ।

बेइन्द्रिय के दो भेद है–(१) अपर्याप्त (२) पर्याप्त। इसी तरह तेइन्द्रिय और चौरेन्द्रिय के दो-दो भेद है। ये विकलेन्द्रिय के कुल २+२+२=६ भेद होते हैं।

प चेन्द्रिय के २० भेद है– (१) जलचर (२) स्थलचर (३) खेचर (४) उरपरिसर्प (५) भुजपरिसर्प, ये पा च प्रकार है। प्रत्येक के चार-चार भेद है– (१) असन्नि अपर्याप्त (२) असन्नि-पर्याप्त (३) सन्नी अपर्याप्त (४) सन्नी पर्याप्त। ये कुल ५x४=२० भेद प चेन्द्रिय तिर्यंच के हुए। सब मिलाकर २२+६+२०=४८ भेद तिर्यंच के होते हैं।

मनुष्य के ३०३ भेद– ५ भरत ५ ऐरवत ५ महाविदेह ये १५ कर्मभूमि क्षेत्र है। ५ देवकुरु ५ उत्तरकुरु ५ हरिवर्ष ५ रम्यक वर्ष ५ हेमवय ५ हेरण्यवय ये ३० अकर्मभूमि क्षेत्र है। ५६ अ तरद्वीप क्षेत्र है। ये कुल १५+३०+५६=१०१ मनुष्य क्षेत्र है। इनमें रहने वाले मनुष्यों के १०१ भेद है। इन सभी के तीन-तीन भेद– (१) असन्नि अपर्याप्त (समुच्छिर्म मनुष्य) (२) सन्नी अपर्याप्त (३) सन्नी पर्याप्त। यों कुल १०१x३=३०३ भेद मनुष्य के हुए। स मुच्छिर्म मनुष्य पर्याप्त नहीं होते, अपर्याप्त ही मर जाते हैं।

ज बूद्वीप में एक, घातकीख ड़ में दो और अर्द्ध पुष्करद्वीप में दो यों कुल १+२+२=५ पा च-पा च भरत आदि क्षेत्र होते है। अ तरद्वीप के ५६ ही क्षेत्र लवण समुद्र में है। इनका वर्णन जीवाभिगम सूत्र प्रश्नोत्तर, प्रतिपत्ति–३ में है। भरत आदि क्षेत्रों का वर्णन ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में है।

देव के १९८ भेद :– (१) भवनपति (२) वाणव्य तर (३) ज्योतिषी (४) वैमानिक, ये मुख्य ४ भेद है। इनमें भवनपति के २५, वाणव्य तर के २६, ज्योतिषी के १०, वैमानिक के ३८, ये कुल २५+२६+१०+३८ =९९। इनके अपर्याप्त और पर्याप्त दो-दो भेद है। यों कुल ९९x२=१९८ भेद देव के होते हैं ।

२५ भवनपति के नाम :– (१) असुरकुमार (२) नागकुमार (३) सुवर्णकुमार (४) विद्युतकुमार (५) अग्निकुमार (६) द्वीपकुमार (७) उदधिकुमार (८) दिशाकुमार (९) पवनकुमार (१०) स्तनितकुमार ।

प द्रह परमाधामी देव हैं जो असुरकुमार जाति के ही देव हैं। ये नरक में नारकी जीवों को दु:ख देते हैं। परम अधर्मी और क्रूर होते हैं। इसलिए परमाधामी कहे जाते हैं। वे इस प्रकार हैं– (१) अम्ब (२) अम्बरीष (३) श्याम (४) शबल (५) रौद्र (६) महारौद्र (७) काल (८) महाकाल (९) असिपत्र (१०) धनुष (११) कुम्भ (१२) बालुका (१३) वैतरणी (१४) खरस्वर (१५) महाघोष। ये १०+१५=२५ भेद होते हैं ।

२६ वाणव्य तर–पिशाचादि आठ– (१) पिशाच (२) भूत (३) यक्ष (४) राक्षस (५) किन्नर (६) कि पुरुष (७) महोरग (८) ग धर्व।
आणपण्णे आदि आठ– (१) आणपन्ने (२) पाणपन्ने (३) इसिवाई (४) भूयवाई (५) क दे (६) महाक दे (७) कुह्म ड़े (८) पय ग देव।
जृम्भक दस– (१) अन्न जृ भक (२) पान जृ भक (३) लयन जृ भक (४) शयन जृभक (५) वस्त्र जृभक (६) फल जृभक (७) पुष्प जृभक (८) फल–पुष्प जृभक (९) विद्या जृभक (१०) अग्नि जृभक। ये कुल ८+८+१०=२६ भेद होते हैं।

ज्योतिषी दस– (१) चद्र (२) सूर्य (३) ग्रह (४) नक्षत्र (५) तारा ये पा च प्रकार है। इनके दो दो भेद है– (१) चल (२) स्थिर। ये कुल ५x२=१० भेद है। ढ़ाईद्वीप में ये ज्योतिषी चल है और ढ़ाईद्वीप के बाहर स्थिर है।

वैमानिक ३८– १२ देवलोक, ३ किल्विषी, ९ लोका तिक, ९ ग्रैवेयक, ५ अणुत्तर विमान।

१२ देवलोक– (१) सौधर्म (२) ईशान (३) सनत्कुमार (४) माहेन्द्र (५) ब्रह्मलोक (६) ला तक (७) महाशुक्र (८) सहस्रार (९) आणत (१०) प्राणत (११) आरण (१२) अच्युत।

किल्विषी– १. तीन पल्योपम वाले २. तीन सागरोपम वाले ३. तेरह सागरोपम वाले।

लोका तिक :– (१) सारस्वत (२) आदित्य (३) वन्हि (४) वरुण (५) गर्दतोयक (६) तुषित (७) अव्याबाध (८) आग्नेय(मरुत) (९) अरिष्ट।

९ ग्रैवेयक– (१) भद्र (२) सुभद्र (३) सुजात (४) सुमनस (५) सुदर्शन (६) प्रियदर्शन (७) आमोघ (८) सुप्रतिबद्ध (९) यशोधर।

५ अणुत्तर विमान– (१) विजय (२) वैजय त (३) जय त (४) अपराजित (५) सर्वार्थसिद्ध।

नोट– इस सूत्र में भवनपति के असुरादि दस और वाणव्य तर के पिशाचादि आठ भेद कहे हैं। प द्रह परमाधामी, आठ आणपण्णे आदि, १० जृंभक ये नाम और भेद अन्य सूत्रों से लिये हैं। इसी तरह वैमानिक में नौ लोका तिक ३ किल्विषी के नाम और भेद भी अन्य सूत्रों से लिये हैं।

अजीव के भेद-प्रभेद ५६० और सिद्धों के १५ भेद वगैरह वर्णन जीवाभिगम प्रश्नोत्तर के भाग–६, पृष्ट–७८ से ८२ में कर दिया गया है।

प्रश्न–२ : पिशाच आदि व्य तर देवों के भेद-प्रभेद व्याख्या में किस प्रकार बताये हैं ?

उत्तर– मूलपाठ में मुख्य आठ प्रकार के भेद ही व्य तर देवो के बताये हैं। व्याख्यानुसार भेदानुभेद इस प्रकार है –

१. पिशाच :– वे स्वभाविक रूप से अत्य त रूपवान और सौम्य होते हैं। वे हाथ में एव गले आदि में रत्नमय आभूषण धारण करते हैं। इनके १६ भेद इस प्रकार है– १. कुष्मांड़ २. पटक ३. सुजोष ४. आह्निक ५. काल ६. महाकाल ७. चोक्ष ८. अचोक्ष ९. ताल–पिशाच १०. मुखरपिशाच ११. अधस्तारक १२. देह १३. विदेह १४. महाविदेह १५. तूष्णीक १६. पिशाच।

२. भूत :– वे सुदर रूपवान सौम्य मुखाकृति वाले एव विविध प्रकार की सजावट एव विलेपन करने वाले। इनके ९ भेद इस प्रकार है – १. सुरूप २. प्रतिरूप ३. अतिरूप ४. भूतोत्तम ५. स्क ध ६. महास्क ध ७. महावेग ८. प्रतिच्छिन्न ९. आकाशग।

३. यक्ष :– वे देव स्वभाव से ग भीर, प्रियदर्शनी, सप्रमाण शरीरवाले मस्तक पर देदीप्यमान मुकुट तथा चित्र-विचित्र रत्नों के आभूषणों को धारण करने वाले होते है। इनके १३ भेद इस प्रकार है– १. पूर्णभद्र २. मणिभद्र ३. श्वेतभद्र ४. हरितभद्र ५. सुमनोभद्र ६. व्यतिपातकभद्र ७. शुभद्र ८. सर्वतोभद्र ९. मनुष्ययक्ष १०. वनाधिपति ११. वनाहार १२. रूपयक्ष १३. यक्षोत्तम।

४. राक्षस :– वे भय कर रूप धारण करने वाले, विकराल रूपों की विकुर्वणा करने वाले, तेजस्वी आभूषणों को पहनने वाले होते हैं। इनके सात भेद इस प्रकार है– १. भीम २. महाभीम ३. विघ्न ४. विनायक ५. जलराक्षस ६. यक्षराक्षस ७. ब्रह्मराक्षस।

५. किन्नर :– ये शांत आकृति और प्रकृति वाले तथा मस्तक पर चमकते हुए मुकुट को धारण करते हैं। इनके १० प्रकार है– १. किन्नर २. कि पुरुष ३. कि पुरुषोत्तम ४. किन्नरोत्तम ५. हृदय गम ६. रूपशाली ७. अनिन्दित ८. मनोरम ९. रतिप्रिय १०. रतिश्रेष्ठ।

६. कि पुरुष :– ये देव अत्य त सु दर और मनोहर मुखाकृति वाले होते हैं। वे विविध प्रकार की माला और आभूषण धारण करते हैं। इनके १० प्रकार है– १. पुरुष २. सत्पुरुष ३. महापुरुष ४. पुरुष वृषभ ५. पुरुषोत्तम ६. अतिपुरुष ७. महादेव ८. मरुत ९. मेरुप्रजा १०. यशव त।

७. महोरग :– ये देव महावेग वाले, महाशरीर वाले, विस्तृत और मजबूत गर्दन वाले, चित्र–विचित्र आभूषणों से विभूषित होते हैं। इनके १० प्रकार है– १. भुजग २. भोगशाली ३. महाकाय ४. अतिकाय ५. स्क धशाली ६. मनोरम ७. महावेग ८. महायक्ष ९. मेरुका त १०. भारव त।

८. ग धर्व :– ये देव प्रियदर्शनी, सु दररूप वाले, उत्तम लक्षणयुक्त, मस्तक पर मुकुट धारण करते है एव गले में हार पहनते हैं। इनके १२

प्रकार है- १. हाहा २. हूहू ३. तु ब ४. नारद ५. ऋषिवाद ६. भूत-वादिक ७. कद ब ८. महाकद ब ९. रैवत १०. विश्वासव ११. गीतरति १२. गीतयश ।

प्रश्न-३ : सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त तथा साधारण-प्रत्येक इनका स्पष्ट स्वरूप क्या है ?

उत्तर- सूक्ष्म बादर- सूक्ष्म और बादर नाम कर्म के उदय से जीव सूक्ष्म और बादर होते हैं। सूक्ष्म में ५ स्थावर है ये चर्मचक्षु से नहीं दिखते एव स पूर्ण लोक में ठसाठस भरे हैं। इनकी गति स्थूल पुद्गलों एव औदारिक शरीर तथा शस्त्रादि से अप्रतिहत है। इस सूत्र के दूसरे पद में एव उत्तराध्ययन सूत्र में इन सूक्ष्म जीवों को सर्व लोक में होना कहा गया है। बादरजीव ५ स्थावर रूप और त्रसकाय रूप दोनों प्रकार के होते है। इनका शरीर स्थूल होता है। शस्त्र आदि से प्रतिहत होता है। बादर के ये स्थावर और त्रस जीव लोक में कहीं होते हैं कहीं नहीं होते हैं। बादर के भी कोई कोई एक जीव चर्मचक्षु से दिख सकते हैं और कोई अनेक स ख्य अस ख्य अन त इकट्ठे होने पर दिखते हैं।

पर्याप्त अपर्याप्त- समुर्च्छिम मनुष्य को छोड़ कर शेष सूक्ष्म बादर सभी जीव के भेद प्रभेदों में पर्याप्त और अपर्याप्त ये दोनों भेद होते हैं।

पर्याप्त नामकर्म के उदय वाला जीव पर्याप्त कहा जाता है और अपर्याप्त नामकर्म के उदय वाला जीव अपर्याप्त कहा जाता है अथवा जिस जीव के जितनी पर्याप्ति पूर्ण करने की होती है वे प्रार भिक समयों में जब तक पूर्ण नहीं होती है तब तक वह जीव अपर्याप्त कहा जाता है। उन पर्याप्तियों के पूर्ण करने में सभी जीवों को जघन्य और उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त समय लगता है।

पर्याप्तियाँ ६ है। जिसमें आहार पर्याप्ति का अपर्याप्ता १-२ समय ही रहता है शेष पा चों पर्याप्ति का अपर्याप्त अस ख्य समय रहता है अर्थात् आहार पर्याप्ति का पर्याप्त बनने में १-२ समय लगता है,शेष पा चों पर्याप्ति का पर्याप्त बनने में प्रत्येक में भी अस ख्य-अस ख्य समय का अ तर्मुहूर्त लगता है और सब में मिलकर भी अ तर्मुहूर्त लगता है। किस जीव में कितनी पर्याप्तियाँ होती है यह वर्णन जीवाभिगम सूत्र प्रश्नोत्तर प्रथम प्रतिपत्ति में है।

साधारण-प्रत्येक- बादर वनस्पति में ही साधारण और प्रत्येक ऐसे दो भेद किये जाते हैं। एक शरीर में एक जीव का होना यह प्रत्येक शरीरी का लक्षण है, अथवा प्रत्येक जीव का स्वत त्र एक शरीर होना यह प्रत्येक जीवी का लक्षण है।

अन त जीवों का सम्मिलित एक शरीर होना अर्थात् एक ही शरीर में अन त जीवों का सम्मिलित अस्तित्व होना, उनका स्वत त्र व्यक्तिगत कोई भी अस्तित्व नहीं होना यह साधारण शरीर का लक्षण है । ऐसे जीव साधारण शरीरी कहे जाते हैं।

यों तो प्रत्येक शरीरी भी एक शरीर में अनेक जीव देखे जाते है किन्तु वह तो उनका पि ड़ीभूत शरीर दिखता है, साथ ही उनके प्रत्येक जीवों का अपना व्यकितगत स्वत त्र शरीर भी अलग अलग होता है। यथा- तिल पपड़ी या मोदक आदि जैसे एक पि ड़ है। उसके सभी तिल चिपक कर एक पि ड़ दिखता है तो भी प्रत्येक तिल का अपना स्वत त्र अस्तित्व शरीर स्क ध रहता है। उसी प्रकार प्रत्येक वनस्पति के अनेक जीवों के स घात-समूह को समझना चाहिये। किन्तु साधारण वनस्पति में ऐसा नहीं होता है, उसमें तो एक ही शरीर में अन त जीव भागीदार के समान होते है। उसका स्वरूप एव लक्षण आदि इस प्रकार है-

प्रश्न-अन तकाय का क्या मतलब है ?

उत्तर- जिसमें एक छोटे से शरीर में अन त जीव रहते हैं, प्रतिक्षण जन्मते मरते रहते हैं, वह अन तकाय के पदार्थ कहे जाते हैं।

प्रश्न- छोटे शरीर से क्या आशय है ?

उत्तर- एक सूई की नोक पर आवे उतने अ श में अस ख्य गोले(वृत)होते हैं, प्रत्येक गोले में अस ख्य प्रतर होते हैं, प्रत्येक प्रतर में अस ख्य शरीर होते हैं और उस छोटे से प्रत्येक शरीर में अन त-अन त जीव होते हैं।

प्रश्न- ये अन तकाय क्या क दमूल ही होते हैं ?

उत्तर- क दमूल तो अन तकाय होते ही हैं, इसके अतिरिक्त भी अनेक अन तकाय होते हैं, यथा-

(१) जहाँ भी, जिसमें भी, फूलण(काई) होती है, वह अन तकाय है।

(२) जिस वनस्पति के पत्ते आदि किसी भी विभाग में दूध निकलने

की अवस्था है, जैसे-आकड़े का पत्ता, कच्ची मुगफली(सि ग)आदि।

(३) कोई भी हरी तरकारी या वनस्पति का हिस्सा तोड़ने से एक साथ **तट्ट** ऐसी आवाज करते हुए टूटे और सम कट जाय, जैसे- भींड़ी, तुराई, ककड़ी।

(४) जिस वनस्पति को गोलाकार चक्कू से काटने पर उसकी सतह पर रजकण सरीखे जलकण हो जाय।

(५) जिस वनस्पति की छाल भीतरी तने से भी जाड़ी हो वह तना अन तकाय। (६) जिस पत्तों मे नसे न दिखे।

(७) जो क द और मूल भूमि के अ दर पक कर निकलते हैं।

(८) सभी वनस्पति की कच्ची जड़ें।

(९) सभी वनस्पति की कच्ची कौंपल।

(१०) कोमल एव नसे न दिखने वाली प खुड़ियाँ वाले फूल।

(११) भिगोये हुए धान्यों में तत्काल निकले हुए अ कुर।

(१२) कच्चे कोमल फल, यथा-इमली आदि, म जरी आदि।

इत्यादि लक्षण वनस्पति के किसी भी विभाग में दिखते हों वे सभी विभाग अन तकाय होते हैं। विशेष जानकारी एव प्रमाण के लिये प्रज्ञापना सूत्र का मूलपाठ देखें।

क दमूल के कुछ नाम इस प्रकार हैं-(१) आलू (२) रतालू (३) सूरण क द (४) वज्रक द (५) हल्दी (६) अदरक (७) का दा (प्याज)(८) लसण (९) गाजर (१०) मूला (११) अरवी (१२) शकरक द इत्यादि।

वह अन त जीवी का एक शरीर निगोद कहलाता है। उसमें रहे अन त जीव निगोद जीव कहलाते हैं। ये अन त जीव मिलकर ही एक शरीर बनाते हैं, एक साथ जन्मते हैं, एक साथ ही पर्याप्तियाँ पूर्ण करते हैं, एक साथ मरते हैं और श्वासोश्वास भी एक साथ ही लेते हैं अर्थात् उनका आहार, श्वासोश्वास, पुद्गल ग्रहण आदि साधारण ही होता है, यही उनकी साधारणता का लक्षण है।

ये निगोद सूक्ष्म और बादर दोनों तरह के होते है जिसमें सूक्ष्म तो चर्मचक्षु से अग्राह्य ही है और बादर में भी अस ख्य निगोद मिलने पर कोई ग्राह्य होते है कोई ग्राह्य नहीं होते। इनके जानने में वीतराग

वचन ही प्रमाणभूत है। इस प्रकार इन अन त जीवों के औदारिक शरीर एक होता है किन्तु तैजसकार्मण शरीर तो प्रत्येक जीव का भिन्न-भिन्न ही होता है।

प्रश्न-४ : पृथ्वीकाय आदि पा च स्थावर जीवों के उदाहरण क्या है ?

उत्तर- पृथ्वी दो प्रकार की होती है- श्लक्षण और खर पृथ्वी। **(१) श्लक्षण(कौमल)पृथ्वी-** मुलायम मिट्टी को श्लक्षण पृथ्वी कहते हैं। इसके सात प्रकार है- (१) काली मिट्टी (२) नीली (३) लाल (४) पीली (५) सफेद मिट्टी (६) प डु-मटमेले र ग की मिट्टी (७) पपड़ी- परपड़ी की मिट्टी। सात प्रकार में अन्य भी सभी प्रकार की कोमल मिट्टी समाविष्ट समझ लेनी चाहिये।

(२) खर(कठोर)पृथ्वी- (१) सामान्य पृथ्वी (२) क कर-मुरड़ (३) बालुरेत (४) पत्थर (५) शिला (६) लवण (७) खार (८) लोहा (९) ता बा (१०) तरुवा (११) शीशा (१२) चांदी (१३) सोना (१४) वज्र (१५) हड़ताल (१६) हिंगलू (१७) मैनसिल (१८) सासग(पारद) (१९) सुरमा (२०) प्रवाल (२१) अभ्रक पटल (२२) अभ्रस।

१. गोमेद रत्न २. रुचक रत्न ३. अ क रत्न ४. स्फटिक रत्न ५. लोहिताक्ष रत्न ६. मरकत रत्न ७. मसारगल्ल(मसगल) ८. भुजमोचक रत्न ९. इन्द्रनील रत्न १०. चंदन रत्न ११.गेरु रत्न १२. हंसगर्भरत्न १३. पुलकरत्न १४. सौग धिक रत्न १५. चंद्रप्रभ रत्न १६. वैडूर्यरत्न १७.जलका त मणी १८. सूर्यका त मणी। ये कुल ४० नाम शास्त्र में उपलब्ध है।

टिप्पण- इसी ४० भेदों को उतरा.अध्य.३६ में ३६ स ख्या के कथन से कहा गया है। जिसका कारण अज्ञात है। स भवत: अर्थ एव गिनती करने में कुछ भिन्नता हो सकती है।

अप्काय-(१) ओस (२) बर्फ (३) धूँअर (४) गड़ा(ओले) (५) वनस्पति से झरने वाला पानी (६) शुद्ध जल (७) शीतोदक (८) उष्णोदक (९) खारोदक (१०) खट्टोदक(कुछ खट्टा) (११) अम्लोदक (१२) लवण समुद्र का जल (१३) वरुणोदक (१४) क्षीरोदक (१५) घृतोदक (१६) क्षोदोदक(इक्षु रस के समान) (१७) रसोदक(पुष्कर समुद्रीय जल)।

तेउकाय- (१) अ गारे (२) ज्वाजल्यमान ज्वाला (३) भोभर(राख युक्त) (४) टूटती झाल (५) कु भकार की अग्नि या जलती लकड़ी

(६) शुद्ध अग्नि(लोहे के गोले की अग्नि) (७) उल्का(चकमक की) अग्नि (८) विद्युत (९) अशनि-आकाश से गिरने वाले अग्नि कण अथवा अरणि काष्ट से उत्पन्न अग्नि (१०) निर्घात(कड़कने की) अग्नि (११) स घर्ष से उत्पन्न(खुर, सि ग, काष्ठ आदि के घर्षण से उत्पन्न) अग्नि, (१२) सूर्यका त मणि-आइग्लास से उत्पन्न होने वाली अग्नि (१३) दावानल की अग्नि (१४) वड़वानल की अग्नि।

वायुकाय- (१) पूर्वीवात् (२) पश्चिम (३) उत्तर (४) दक्षिण (५) ऊपर (६) नीचे (७) तिरछे एव (८) विदिशावात (९) अनवस्थितवात् (१०) तूफानी हवा (११) म ड़लिकवात(वातोली) (१२) आ धी (१३) गोल चक्करदार हवा (१४) सनसनाती आवाज करके गू जने वाली हवा (१५) वृष्टि के साथ चलने वाला अ धड़, वृक्षों को उखाड़ने वाली हवा (१६) प्रलयकाल में चलने वाली हवा, सामान उड़ाकर ले जाने वाली हवा (१७) घनवात (१८) तनुवात (१९) शुद्धवात(धीमे धीमे बहने वाली हवा)।

वनस्पतिकाय- १. वृक्ष- आम, नीम, जामुन, पीलु, शेलु, हरड़ा, बेहड़ा, आँवला, अरीठा, महुआ, रायण, खजूर आदि ये **एक बीज** गुटली वाले फलों के वृक्ष है।

जामफल, सीताफल, अनार, विल्व, कबीठ, कैर, नीबू, टींबरू, बड़, पीपल, बिजोरा, अनानास इत्यादि **बहुबीजी** फलों के वृक्ष है।

२. गुच्छ- छोटे और गोल वृक्ष को गुच्छ-पौधा कहते हैं । बैंगन, तुलसी, जवासा, मातुलि ग(बिजोरा) आदि।

३. गुल्म- फूलों के वृक्ष को गुल्म कहते हैं, यथा-च पा, मोगरा, मरुवा, केतकी, केवड़ा आदि।

४. लता- वृक्षों पर चढ़ने वाली-च पक लता, नागलता, अशोकलता आदि।

५. बेल- जमीन पर फैलने वाली- ककड़ी, तुराई, तरबूज, तु बी, एला आदि।

६. पर्वक- गा ठ वाले- इक्षु, बा स, बेंत आदि।

७. तृण- कुश, दोब आदि घास।

८. वलय- सुपारी, खारक, खजूर, केला, तज, इलायची, लोंग, ताड़, तमाल, नारियल आदि।

९. हरितकाय- पत्ती की भाजी-मेथी, चदलोई, सुवा, पालक, बथुआ आदि।

१०. धान्य- चावल, गेहू, जौ, चना, मसूर, तिल, मूँग, उड़द, निष्फाव, कुलत्थ, बाजरा, जवार, मक्की, तुवर, चवले, मटर आदि।

११.जलवृक्ष- कमल, सि घाड़े, सेवाल, कसेरुका, पु ड़रीक आदि।

१२. कुहणा- सर्प छत्रा, भूफोड़ा, आय, काय, कुहण आदि वनस्पतियाँ।

प्रश्न-५ : योनिभूत बीज और अयोनिभूत बीज का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर- जिसमें उगने की शक्ति हो वह योनिभूत बीज कहलाता है। यह सचित्त और अचित्त दोनों तरह का होता है अर्थात् जीव निकल जाने पर भी योनिभूत बीज में उगने की शक्ति रहती है। ये अविध्व स योनि के बीज कहे जाते हैं। शक्ति स पन्न अख ड़ बीज ही योनि भूत होता है। ऐसे बीज प्रायः पूर्णायु वाले होते हैं। अयोनिभूत बीज पूर्ण परिपक्व नहीं होते अथवा अल्प शक्तिवान होते हैं। वे अल्प उम्र वाले होते हैं, जल्दी ही अचित्त हो जाते हैं। सचित्त अचित्त दोनों अवस्था में वे नहीं उगते हैं।

वनस्पति का उत्पादक बीज- वृक्ष की उत्पत्ति का मूल कारण होने से अ तिम दसवें विभाग को बीज कहा गया है। किसी-किसी वनस्पति के उत्पत्ति में बीज के सिवाय अन्य विभाग भी कारण बनते हैं अतः उन्हें भी आगम में केवल बीज न कहकर बीज शब्द के साथ सूचित किया जाता है, यथा- अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, ख दबीया।

वनस्पति के ये स्थान बीज रूप नहीं होते हुए भी अर्थात् ख द, मूल, पर्व होते हुए भी बीज का कार्य(वृक्ष उत्पत्ति रूप कार्य) करने वाले हैं। इन चार प्रकार की वनस्पतियों के भी फल और बीज स्वत त्र भी हो सकते हैं। तथापि उनके ये विभाग बीज का कार्य करने वाले होने से बीज रूप कहलाते हैं। इसलिए कई वृक्ष कलम करने से लगते है तथापि सभी वनस्पतियाँ अपने बीज से तो उगती ही हैं, इसमें कोई स देह नहीं हैं।

साधारणतया वनस्पति का उगने वाला विभाग बीज है और कोई-कोई वनस्पति ख द, पर्व आदि से उगती है। ख द, पर्व आदि तो सूखने के बाद नहीं उगते। अतः ये सचित्त गीली अवस्था में ही उगते हैं। किन्तु बीज विभाग पकने व सूखने के बाद ही उगते हैं गीली अवस्था में नहीं उगते।

बीजों का सचित्त काल(उग्र)- ठाणा ग सूत्र व भगवतीसूत्र में धान्यों की ३ वर्ष, द्विदलों की ५ वर्ष और शेष अन्य बीजों की ७ वर्ष की उत्कृष्ट स्थिति बताई है। तीन प्रकार की स्थितियों में समस्त वनस्पति के बीजों का समावेश हो जाता है अर्थात् ७ वर्ष से अधिक कोई भी बीज सजीव नहीं रहता है। इनकी यह स्थिति वृक्ष पर तो बहुत अल्प ही बीतती है किन्तु वृक्ष से अलग होने के बाद और सूखने के बाद ज्यादा बीतती है। इस प्रकार दस विभाग में यह बीज विभाग ही ऐसा है जो सूखने पर भी वर्षो तक सचित्त रहता है और उगने की शक्ति धारण किए रहता है।

विकसित और परिपक्क अवस्था- फल और बीज का पहले पूर्ण विकास होने के बाद उसमें परिपक्क अवस्था आती है।

जब फल की पूर्ण विकसित अवस्था हो जाती है तब बीज की भी पूर्ण विकसित अवस्था हो जाती है और फल के परिपक्क होने के साथ कई बीज भी परिपक्क होने लगते हैं। कई फल वृक्ष पर ही पूर्ण परिपक्क होने के बाद तोड़े जाते है और कई पूर्ण परिपक्क अवस्था के पूर्व ही तोड़ कर अन्य प्रयोगों से पूर्ण परिपक्क बनाए जाते है। वृक्ष पर पूर्ण परिपक्क बनने वाले फलों के बीज में तो उगने की योग्यता बन ही जाती है किन्तु अन्य प्रयोगों से परिपक्क बनने वाले कई फलों के बीज परिपक्क बनते है और कई नहीं बनते। तथा अनेक बीज वाले एक फल में भी कोई बीज परिपक्क होते है और कई नहीं होते।

उत्पादक(उगने की)शक्ति- वृक्ष पर या बाद में जो बीज पूर्ण परिपक्क नहीं बनते है उनमें पूर्ण विकसित अवस्था होकर भी उगने की योग्यता नहीं आती है। जो पूर्ण परिपक्क हो जाते है वे ही उग सकते है। फल की पूर्ण विकसित अवस्था होने पर बीज की भी पूर्ण विकसित अवस्था हो जाती है। वह लम्बी स्थिति तक सचित्त रह सकता है किन्तु उगने

की योग्यता तो पूर्ण परिपक्क होने पर ही होती है। इसलिये कई बीजों में उगने की योग्यता रहती है और कई में नहीं होती। जिनमें उगने की योग्यता है वे ३-५-७ वर्ष की स्थिति समाप्त होने पर अचित्त हो जाने पर भी उगते है।

अतः फल की पूर्ण विकसित अवस्था का पूर्ण विकसित बीज अपनी स्थिति पर्यंत सचित्त रह सकता है और फल की पूर्ण परिपक्व अवस्था का पूर्ण परिपक्व बीज अपनी स्थिति पर्यंत तथा उसके बाद अचित्त हो जाने पर भी अख ड़ रहे तब तक उग सकता है।

इससे यह समझना चाहिए कि उगने का लक्षण अलग है और सचित्त होने का लक्षण अलग है, दोनों का स ब ध तो है, किन्तु वह अविनाभाव स ब ध नहीं किया जा सकता है।

प्रश्न-६ : बेइन्द्रिय आदि त्रस जीवों के भेद एव उदाहरण रूप नाम किस प्रकार दर्शाये गये हैं ?

उत्तर- बेइन्द्रिय- शंख, कौड़ी, सीप, जलोक, कीड़े, पोरे, लट, अलसिये, कृमि, चरमी, कातर(जलज तु), वारा(वाला), लालि(लार) आदि।

तेइन्द्रिय- जूँ, लीख, माकड़(खटमल), चा चड़, कु थुवे, धनेरे, उधई (दीमक), ईली, भुंड़, मकोड़े, जींघोड़े, जुआ, गधैया, कानखजूरे, सवा, ममोले आदि।

चौरेन्द्रिय-भँवरे, भँवरी, बिच्छु, मक्खी-मच्छर, ड़ाँस, टीड़, पत गा, क सारी, फु दी, केकड़े, बग, रुपेली आदि।

प चेन्द्रिय में-जलचर-मच्छ, कच्छ, मगरमच्छ, कछुआ, ग्राह, मेंढ़क, सु सुमार आदि।

स्थलचर- (१) एक खुर वाले-घोड़े, गधे, खच्चर आदि।
(२) दो खुर वाले-गाय, बैल, भैंस, बकरे, हिरण, खरगोश आदि।
(३) गड़ीपद- ऊ ट, गेंड़े, हाथी आदि।
(४) नखी- बाघ, सि ह, चीता, कुत्ते, बिल्ली, रींछ, ब दर आदि।

उरपरिसर्प- (१) अहि(सर्प)-फण करने वाले और फण नहीं करने वाले (२) अजगर-जीवों को निगल जाने वाले (३) असालिया-चक्रवर्ती सेना को भी नष्ट करने योग्य, उत्कृष्ट १२ योजन शरीर वाला (४) महोरग-

भूमि पर उत्पन्न होते है, जल स्थल दोनों में विचरण करते हैं, ढ़ाई द्वीप के बाहर होते हैं, महाकाय वाले होते हैं।

भुजपरिसर्प- नेवला, गोहा, चन्दनगोह, चूहा, छिपकली, गिलहरी, काकीड़ा इत्यादि।

खेचर- १. चर्म पक्षी- बगुला, चमचेड़, चमगीदड़, कानकटिया आदि **२. रोम पक्षी-**कबूतर, चिड़ी, कौवे कमैड़ी, मैना, पोपट, कुकुट, चील, मयूर, कोयल, कुरज, बतख, तीतर, बाज, ह स आदि। **३. समुद्ग पक्षी-**ड़ब्बे जैसी भिड़ी हुई गोल पा ख वाले, ये ढ़ाईद्वीप के बाहर होते हैं। **४. विततपक्षी-** प ख फैलाये रखने वाले या ल बे प खों वाले। ये भी ढ़ाईद्वीप के बाहर होते हैं।

प्रश्न-७ : आर्य-अनार्य मनुष्य किस-किस प्रकार से समझना ?

उत्तर- मनुष्य दो प्रकार के होते है- १.आर्य २.अनार्य(म्लेच्छ)।

अनार्य(म्लेच्छ)- शक, यवन, किरात, शबर, बर्बर, मरुड़, गोंड़, सि हल, आँध्र, तमिल, पुलि द, ड़ोंब, कोंकण, मालव, चीना, बकुश, अरबक, कैकय, रुसक, चिलात आदि।

आर्य- १. ऋद्धि प्राप्त-अरिह त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, चारण, विद्याधर। २. ऋद्धि अप्राप्त-नौ प्रकार के हैं-(१) क्षेत्रार्य-२५॥ देश आर्य है इनमें जन्म लेने वाले मनुष्य क्षेत्रार्य हैं। (२) जाति आर्य- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जातियों वाले जाति आर्य है (३) कुल- उग्रकुल, भोगकुल, इक्ष्वाकुकुल, ज्ञातकुल आदि कुलआर्य है। (४) कर्म-सुथार, कुभार आदि कर्म आर्य है। (५) शिल्पआर्य-दरजी, जिल्दसाज आदि शिल्प आर्य है। (६) हिन्दी, स स्कृत, प्राकृत, अर्द्धमागधी आदि आदि भाषा और जिसकी बाह्मीलिपि हो वह भाषार्य है। (७ से ९) वीतराग मार्ग में ज्ञान एव श्रद्धा युक्त प्रवृत्ति करने वाले ज्ञानदर्शनचरित्र आर्य हैं अर्थात् पा च ज्ञान एव सम्यग्दर्शन वाले ज्ञानार्य, दर्शनार्य हैं। श्रावक, साधु ये चारित्रार्य हैं अथवा पा चों स यत चारित्रार्य हैं।

साड़े पच्चीस आर्य देश एव प्रमुख नगरी :-(१) मगधदेश-राजगृहीनगर (२) अ गदेश-च पानगरी (३) ब गदेश-ताम्रलिप्ति नगरी (४) कलींगदेश-का चनपुर (५) काशीदेश- वाराणसी नगरी (६) कौशल देश-साकेतनगर (७) कुरुदेश-हस्तिनापुर (८) कुशावर्तदेश-सौर्यपुर

(९) प चालदेश-काम्पिल्यनगर (१०) जा गलदेश-अहिछत्रानगरी (११) सौराष्ट्र-द्वारिकानगरी (१२) विदेहदेश-मिथिलानगरी (१३) कच्छदेश-कोशाबी (१४) शाड़िल्यदेश-न दिपुर (१५) मालवदेश-भद्दिलपुर (१६) वच्छदेश-वैराटनगर (१७) वरणदेश-अच्छापुरी (१८) दशार्णदेश-मृतिकावती नगरी (१९) चेदिदेश-शुक्तिमति-शौक्तिकावती (२०) सि धु-सौवीर देश-वीतभयनगर (२१) शूरसेनदेश-मथुरानगरी (२२) भ गदेश-पावापुरी(अपापा) (२३) पुरिवर्तदेश-मासापुरी (२४) कुणालदेश-श्रावस्तिनगरी (२५) लाढ़देश-कोटिवर्ष नगर (२६) कैकयार्द्ध देश-श्वेता बिकानगरी।

इनके अतिरिक्त सेकड़ों हजारों देश हैं जो क्षेत्र की अपेक्षा अनार्य की कोटि में कहे गये है तथा जाति कुल आदि जो भी आर्य कहे गये है उनके अतिरिक्त को अनार्य जाति कुल समझ लेना चाहिये। क्षेत्र, जाति, कुल आदि से अनार्य कहा जाने वाला व्यक्ति भी ज्ञान, दर्शन, चारित्र से अर्थात् धर्माराधन से सच्चा आर्य बन सकता है एव कहा जा सकता है और आर्य की गति को, एव मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। अतः क्षेत्र, जाति, कुल आदि ६ प्रकार के आर्य केवल व्यवहार परिचय की अपेक्षा समझना चाहिये। वास्तव में अ तिम तीन आर्य अवस्था प्राप्त हो जाय तो जीवन सफल है। पूर्व की ६ आर्य अवस्था मिल भी गई कि तु धर्म आराधना नहीं की तो वे क्षेत्र आदि की आर्यता दुर्गति से नहीं बचा सकती है। अतः कर्म एव धर्म से आर्य होने का प्रयत्न करना चाहिये।

प्रश्न-८ : स मुर्च्छिम मनुष्य स ब धी परिज्ञान एव उसका विवेक किस प्रकार हो सकता है ?

उत्तर- स मुर्च्छिम मनुष्य के १४ प्रकार-१. बड़ी नीत में २. पेशाब में ३. खेल में(कफ में) ४. श्लेषम में ५.वमन में ६. पित्त में ७. रसी में ८. खून में ९.वीर्य में १०.वीर्य के सूखे पुद्गल पुनः गीले होने पर ११. मृत शरीर में १२. स्त्री पुरुष स योग में १३. नगर नाला गटर में १४. सर्व मनुष्य स ब धी अशुचि स्थानों में। मनुष्य स ब धी इन १४ स्थानों में १२ तो स्वत त्र मानव शरीर के अशुचि स्थान है। तेरहवें गटर के बोल में अनेक बोल अशुचिस्थान स ग्रहित है। चौदहवें बोल में भी

अनेक बोलों स्थानों के स योगी भ ग अर्थात् मिश्रण कहे गये हैं। यहाँ कहे गये स्थानों में पसीना, थूक कहीं भी नहीं कहा गया है, अतः इन दोनों में स मुर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न नहीं होते हैं।

उत्पत्तिकाल–इन १४ स्थानों में आत्मप्रदेशों से अलग हो जाने पर अ तर्मुहूर्त बाद स मुर्च्छिम असन्नि मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

अ तर्मुहूर्त शब्द का अर्थ विशाल है। व्याख्याकारों ने इसका स्पष्टीकरण नहीं किया है। अतः प्राप्त पर परानुसार उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त अर्थात् करीब ४७ मिनट का समय व्यवहार से माना गया है। ४७ मिनिट एक अ तिम सीमा समझनी चाहिये उसके बाद ४८ मिनट होने पर अ तर्मुहूर्त नहीं कहा जाता किन्तु मुहूर्त हो जाता है। न्यूनतम समय एक घड़ी २४ मिनट तक जीवोत्पत्ति स मुर्च्छिम मनुष्य होना स भव नहीं लगता है। २४ से ४७ मिनट के बीच का समय जीवोत्पत्ति का समझना चाहिये। विरहकाल हो जाने की अपेक्षा कभी कहीं कई मुहूर्तों तक भी जीवोत्पत्ति नहीं होती है।

स्वरूप–इन जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना भी अ गुल के अस ख्यातवें भाग की होती है। ये चर्म चक्षु से दिखने योग्य नहीं है। उम्र उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त(करीब २ मिनट)की होती है। समय समय में जघन्य १-२-३ तथा उत्कृष्ट अस ख्य जीव जन्मते रहते हैं और मरते रहते हैं। ये सभी अपर्याप्त ही मरते हैं, अपर्याप्त नामकर्म वाले ही होते हैं। ये प चेन्द्रिय एव मनुष्य गतिक कहे गये हैं।

पशु अशुचि–पशु के अशुचि स्थानों में होने वाले कृमि आदि अन्य जीव तिर्यंच बेइन्द्रिय आदि होते हैं। उन्हें भी स मुर्च्छिम कहा जा सकता है पर तु स मुर्च्छिम मनुष्य नहीं कहना चाहिये। वे जीव चर्मचक्षु से दिख सकते है।

पशुओं के मलमूत्र आदि अशुचि स्थानों में कालातर से स मुर्च्छिम त्रस जीव उत्पन्न होते हैं किन्तु उक्त स मुर्च्छिम मनुष्य नहीं होते है।

गाय आदि का गोबर श्रमण के लिये ग्रहण करके उपचार हेतु उपयोग में लेने का आगम में विधान है। अतः उसमें कुछ घ टों तक जीवोत्पत्ति नहीं होती है ऐसा समझ लेना चाहिये।

फ्लश दोष–भूमि गृह(अ ड़र ग्राउन्ड़ फ्लश) शौचालय में स मुर्च्छिम

मनुष्यों की एव अन्य त्रस जीवों की विपुलमात्रा में उत्पत्ति-जन्म मरण होता रहता है। इन जीवों की अपेक्षा यह भूमिगृह शौचालय महादोष पापस्थान है। भव भीरु धर्मी आत्माओं को उसका उपयोग नहीं करना चाहिये। मानव शरीर के अशुचि पदार्थ शीघ्र सूख जाय या विरल हो जाय ऐसा ही विवेक रखना चाहिये।

मृत कलेवर–मानव के मृत कलेवर में स मुर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होने का समय भी अ तर्मुहूर्त ही है। अतः अधिक समय मृत कलेवर को रखने में इन जीवों की विराधना का दोष होता है। श्रमणों को मुहूर्त पूर्व ही मृत कलेवर का व्युत्सर्जन कर देना चाहिये। ***(टिप्पण- १. महान प्रख्यात श्रमण श्रमणियों के मृत कलेवर को भक्त समुदाय १-२ दिन रोककर रखते हैं, यह आगमोचित प्रवृत्ति नहीं है। अतः इस प्रवृत्ति का अ धानुकरण नहीं करना चाहिये।)***

पशुओं के मृत शरीर में विविध प्रकार के जीवों की उत्पत्ति हो जाती है, अत्य त दुर्गंध भी हो जाती है किन्तु आगम में ये ऊपरोक्त जीवोत्पत्ति के १४ स्थान मनुष्य स ब धी और स मुर्च्छिम मनुष्योत्पत्ति स ब धी कहे हैं। अतः पशुओं के शरीर में तिर्यंच योनिक बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय आदि जीवों की उत्पत्ति होना अलग से समझ लेना चाहिये।

पद-२ : स्थान

प्रश्न-१ : इस पद में जीवों के निवास स्थलों का निरूपण स पूर्ण लोक की अपेक्षा किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर– एकेन्द्रिय में पृथ्वीकाय से वर्णन प्रार भ कर प चेन्द्रिय में वैमानिक देव पर्यंत जीवों के स्थानों का, निवास स्थानों का, स्वस्थान रूप से निरूपण किया गया है।

यह वर्णन **एक जीव** की अपेक्षा नहीं किया गया है कि तु पृथ्वी काय के पर्याप्त या अपर्याप्त आदि **सामुहिक जीवों** के निर्देश से कथन है। यह बात इस पद के समस्त वर्णन में विशेष रूप से ध्यान में रखनी चाहिये।

पृथ्वीकाय–नरक–देवलोक के पृथ्वीपि ड़, सिद्धशिला, विमान, भवन, नगर, छत, भूमि, भित्ति। तिरछालोक के क्षेत्र, पृथ्वी, नगर, मकान, द्वीप, समुद्रों की भूमि, पर्वत, कूट, वेदिका, जगती आदि शाश्वत, अशाश्वत पृथ्वीमय स्थलों में, पृथ्वीकाय का स्वस्थान है अर्थात् यहाँ पृथ्वी जीव उत्पन्न होते है एव मृत्युपर्यंत रहते है। बादर के पर्याप्त-अपर्याप्त सभी का यही स्वस्थान जानना। सूक्ष्म सर्व लोक में है।

अप्काय–घनोदधि एव घनोदधि वलय, पातालकलश, समुद्र, नदी, कुड़, द्रह, झील, झरना, तालाब, सरोवर, नाला, बावड़ी, पुष्करणी, कुए, हौद, खड्डे, खाई आदि अन्य भी छोटे बड़े जलस ग्रह के शाश्वत अशाश्वत स्थलों में बादर अप्काय का स्वस्थान है। सूक्ष्म सर्वलोक में है।

तेउकाय–निर्व्याघात की अपेक्षा ढ़ाईद्वीप में १५ कर्मभूमि क्षेत्र हैं, वे ही बादर तेउकाय के स्वस्थान है। व्याघात की अपेक्षा केवल पा च महाविदेह क्षेत्र ही इनके स्वस्थान है। अर्थात् छट्ठा और पहला आरा एव युगलिक काल में ५ भरत ५ ऐरवत में अग्नि नहीं रहती है।

लवण समुद्र में वड़वानल होने पर अग्निकाय की उत्पत्ति होती है। सूक्ष्म सर्व लोक में है।

वायुकाय–घनवाय, तनुवाय, घनवाय वलय, तनुवाय वलय, पाताल कलश, भवन, नरकावास, विमान एव लोक के समस्त आकाशीय पोलार वाले छोटे-बड़े स्थानों में बादर वायुकाय का स्वस्थान है। सूक्ष्म सर्वलोक में है।

वनस्पतिकाय–तीनों लोक के सभी जलीय स्थानों मे एव तिरछा लोक के जलीय, स्थलीय सभी स्थानों में बादर वनस्पतिकाय का स्वस्थान है। सूक्ष्म सर्व लोक में है।

बेइन्द्रियादि–ऊर्ध्वलोक में रहे तिरछेलोक के पर्वतों पर, नीचे लोक में रहे समुद्री जल में और तिरछेलोक के सभी जलीय स्थलीय स्थानों में बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौरेन्द्रिय, प चेन्द्रिय तिर्यंच का स्वस्थान है।

नरक–सातों नरकों में जो ३००० योजन के पाथड़े हैं उनमें १००० योजन ऊपर १००० योजन नीचे छोड़ कर बीच में १००० योजन की पोलार है उनमें नारकी के रहने के नरकावास है, वे ही उनके स्वस्थान हैं।

मनुष्य–मनुष्यों के १०१ क्षेत्र है वे ही उनके स्वस्थान है।

भवनपति– प्रथम नरक पृथ्वी के तीसरे आ तरे से १२वें आ तरे तक भवनपति के भवनावास है। समभूमि से ४००००० योजन नीचे तीसरे आ तरे में असुरकुमार जाति के भवनपति देवों का स्वस्थान है। प्रथम नरक के चौथे आ तरे में नागकुमार जाति के भवनपति देवों का, पा चवें आ तरे में सुवर्णकुमार देवों का स्वस्थान है। इसी क्रम से १२वें आ तरे में स्तनितकुमार देवों का स्वस्थान है।

व्य तर– प्रथम नरक पृथ्वी का ऊपरी छत १००० योजन का है उसकी ऊपरी सतह ही हमारी समभूमि है। इस प्रथम नरक के ऊपरी छत के १००० योजन में १०० योजन नीचे और १०० योजन ऊपर छोड़ कर बीच में जो ८०० योजन का क्षेत्र है, वहाँ भोमेय नगरावास है, उसमें १६ जाति के व्य तर देवों का स्वस्थान है। जृंभक देवों का स्वस्थान तिरछालोक में वैताढ्य पर्वतों की श्रेणी पर है और का चनक पर्वतों के शिखर तल पर एव अन्य पर्वतों पर है।

ज्योतिषी–तिरछालोक के समभूमि से ऊपर ७९० योजन से लेकर ९०० योजन तक का क्षेत्र एव अस ख्य द्वीप समुद्रों में स्थित ज्योतिषियों की राजधानियाँ एव द्वीपे,ज्योतिषी देवों का स्वस्थान है।

वैमानिक– १२ देवलोक, ९ ग्रैवेयक एव ५ अणुत्तर विमान ये वैमानिक देवों के स्वस्थान हैं।

प्रश्न–२ : देवो स ब धी ऋद्धियुक्त वर्णन यहाँ किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर– देवों के निवासस्थानों के वर्णन के साथ उनकी विविध शोभा का, गुणों का क्रमशः वर्णन है। ६४ इन्द्रों के नाम एव ऋद्धि सहित क्रमशः वर्णन है। ऋद्धि में शारीरिक स पदा, परिवार स पदा का अनेक विशेषणों युक्त वर्णन किया गया है। ६४ इन्द्रों का एक साथ कथन हमने स्थानांग प्रश्नोत्तर पृष्ट–२७ में दिया है। शक्रेन्द्र ईशानेन्द्र के अनेक नाम एव विशेषण भगवतीसूत्र प्रश्नोत्तर में दिये हैं। यहाँ देवों के आभूषण इस प्रकार कहे हैं– वक्षःस्थल पर हार, हाथ में कड़े बाजुब द, कान में अ गद, कुड़ल, कर्णपीठ, विचित्र हस्ताभरण, पुष्पमाला, मस्तक पर मुकुट, उत्तम वस्त्र, श्रेष्ठ अनुलेपन, लम्बी वनमाला आदि से सुसज्जित

देव दिव्य तेज से दशों दिशाओं को प्रकाशमान करते हैं।

प्रश्न-३ : देवलोकों में तिर्यंच-पशु आदि नहीं होते हैं तो उनके नाम जगह-जगह क्यों आते हैं ?

उत्तर- देवों के विमानों की और देवों की विभूषा की भिन्नता बताने के लिये तिर्यंचों के नाम-भेद गिनाना आवश्यक हो जाता है। मानव की और देव की आकृति तो एक ही प्रकार की होती है। जब कि पशुओं की विभिन्न जातियां होती है। अतः विभिन्नता सूचक चिन्हों को बताने के लिये देवों के विमानों एव मुकुट में विभिन्न पशुओं के चिन्ह बताये जाते हैं। सात प्रकार की देवों की सेना में भी चार प्रकार तो तिर्यंच के ही कहे हैं। वे देव ही वैसे वैसे रूपों की विकुर्वणा करके वैसी सेना दिखाते हैं। अनेक व्य तर देवों के वाहन रूप में भी तिर्यंचों को गिनाया जाता है। उन सबका कारण भी यही है कि तिर्यंचों में अनेक भिन्नताएँ होती है, जिससे सभी देवों की अलग-अलग पहिचान निर्धारित की जा सकती है।

प्रश्न-४ : पृथ्वी आदि जीवों के निवासस्थान-स्वस्थान, लोक की तुलना में किस प्रकार होते हैं ?

उत्तर- बादर पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय के पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों जीवों का स्वस्थान क्षेत्र लोक के अस ख्यातवें भाग प्रमाण होता है। बादर तेउकाय का स्वस्थान केवल ढ़ाईद्वीप में ही होने से वे लोक के अत्य त छोटे अस ख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र में होते हैं। बादर तेउकाय के पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों का भी इतना ही क्षेत्र समझना। बादर वायुकाय के जीव लोक के समस्त पोलार के स्थानों में होने से लोक के घणा (बहुत) अस ख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में उनका स्वस्थान होता है। शेष त्रस जीव बेइन्द्रिय से वैमानिक देव पर्यंत सभी के पर्याप्त-अपर्याप्त का स्वस्थान लोक के अस ख्यातवें भाग का होता है। सूक्ष्म पा चों स्थावर के पर्याप्त अपर्याप्त का स्वस्थान स पूर्ण लोक होता है। जन्म से मृत्यु पर्यंत जीव जहाँ रहता है उसे उसका स्वस्थान कहा गया है।

प्रश्न-५ : पृथ्वी आदि जीव मारणा तिक समुद्घात अवस्था में लोकक्षेत्र की तुलना में किस प्रकार होते हैं ?

उत्तर- ये पृथ्वी आदि जीव आयुष्य पूर्ण होने के पहले प्रायः मरणातिक समुद्घात करते हैं। तब समुद्घात गत बादर पृथ्वीकाय, अप्काय के पर्याप्ता जीव लोक के अस ख्यातवें भाग में पाये जाते हैं। तेउकाय के पर्याप्ता जीव छोटे(थोड़े)अस ख्यातवें भाग में और वायुकाय के पर्याप्ता जीव बहुत अस ख्यातवें भाग में पाये जाते हैं और वनस्पति के पर्याप्त जीव मारणा तिक समुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक में पाये जाते हैं।

बादर पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के अपर्याप्ता जीव समुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक में होते हैं। सूक्ष्म सभी सर्वलोक में होते हैं। त्रस जीव लोक के अस ख्यातवें भाग में होते हैं।

प्रश्न-६ : पृथ्वी आदि उपपात अवस्थाओं में अर्थात् वाटे वहेता अवस्था में लोक क्षेत्र की तुलना में किस प्रकार होते हैं ?

उत्तर- उपपात-जन्म समय में जीव वाटे वहेता अवस्था में ल बा क्षेत्र अवगाहन करता है। उस **उपपात की** अपेक्षा बादरपर्याप्त पृथ्वी, पानी, अग्नि और वायु लोक के अस ख्यातवें भाग क्षेत्र का अवगाहन करते हैं। वनस्पति के पर्याप्त जीव सर्व लोक का अवगाहन करते हैं, अन त होने से।

बादर अपर्याप्त पृथ्वी, पानी, अग्नि, वनस्पति आदि चारों सर्व लोक का अवगाहन करते हैं कि तु तेउकाय के अपर्याप्त जीव दो उर्ध्व कपाट लोकप्रमाण तथा तिरछालोक रूप तट, इतना क्षेत्र अवगाहन जन्म समयकी अपेक्षा करते हैं। मारणा तिक समुद्घात में अस ख्य समय होने से तेउकाय के अपर्याप्त स पूर्णलोक में व्याप्त हो जाते हैं कि तु उपपात में तो जीव को ३ समय ही मिलते हैं, अतः स पूर्णलोक नहीं कहा है। जिससे पहले समय में द ड़ करते हैं और दूसरे समय में दो ऊर्ध्व कपाट जैसा क्षेत्र बनता है और तीसरे समय में तो स्थान पर पहुँच जाते हैं। इसलिये म थान-पूरण रूप क्षेत्र भी नहीं बनता है।

सभी त्रस जीव बेइन्द्रिय से वैमानिक पर्यंत उपपात क्षेत्र की अपेक्षा लोक के अस ख्यातवें भाग में पाये जाते हैं।

जीवों की उपपात-समुद्घात क्षेत्र तालिका :-

जीव	उपपात क्षेत्र	समुद्घात क्षेत्र
पृथ्वी पर्याप्त	लोक का अस ंभाग	लोक का अस ख्यातवा भाग
पृथ्वी अपर्याप्त	सर्वलोक	सर्वलोक
पानी पर्याप्त	लोक का अस ं भाग	लोक का अस ख्यातवाँ भाग
पानी अपर्याप्त	सर्वलोक	सर्वलोक
अग्नि पर्याप्त	लोक का अस ंभाग	लोक का अस ख्यातवाँ भाग
अग्नि अपर्याप्त	दो ऊर्ध्व कपाट एव तिरछालोकतट	सर्वलोक
वायु पर्याप्त	लोक का घणा अस ंभाग	लोक का घणा अस ंभाग
वायु अपर्याप्त	सर्वलोक	सर्वलोक
वन.पर्याप्त	सर्वलोक	सर्वलोक
वन.अपर्याप्त	सर्वलोक	सर्वलोक
सूक्ष्म पा चों	सर्वलोक	सर्वलोक
त्रस सभी	लोक का अस ंभाग	लोक का अस ख्यातवाँ भाग
मनुष्य	**केवली समु.की अपेक्षा**	**सर्वलोक**

जीवों की स्वस्थान तालिका :-

(१) लोक के अनेक अस ख्यातवें भाग- बादरवायुकाय के पर्याप्त, अपर्याप्त ।

(२) ढ़ाईद्वीप प्रमाण- बादरअग्निकाय के पर्याप्त अपर्याप्त ।

(३) लोक के अस ख्यातवें भाग- बादर पृथ्वी, पानी, वनस्पति एव सभी त्रस के पर्याप्त-अपर्याप्त ।

(४) स पूर्ण लोक- सूक्ष्म पा च स्थावर पर्याप्त-अपर्याप्त ।

❋ पद-३ : अल्पाबहुत्व ❋

प्रश्न-१ : क्षेत्र की अपेक्षा चारों दिशाएँ समान होती है तो उनमें जीवों की अल्पता और बहुलता कैसे होती है ?

उत्तर- लोक की रचना में सर्वत्र समानता नहीं होने से भिन्नता बनती

है, यथा- (१) गौतम द्वीप लवणसमुद्र में पश्चिम दिशा में है, अन्य दिशा में नहीं है। (२) सूर्य चन्द्र के द्वीप पूर्व-पश्चिम में है उत्तर दक्षिण में नहीं है। (३) भवनपति देवों के भवन उत्तर दक्षिण में अधिक है, पूर्व पश्चिम में कम है (४) नरक में कृष्णपक्षी जीव दक्षिण में ज्यादा उत्पन्न होते हैं नरकावास भी उस दिशा में ज्यादा है। (५) पश्चिम महाविदेह एक हजार योजन ऊँड़ा गोघाट सरीखा ढ़लाव वाला है, पूर्व में वैसा नहीं है समतल है। इसलिये पश्चिम महाविदेहक्षेत्र की ल बाई ज्यादा है। (६) उत्तर दिशा में एक विशाल मानस सरोवर है, अन्य दिशाओं में नहीं है।

इस प्रकार की लोकरचना की भिन्नता के कारण से जीवों की हीनाधिकता इस प्रकार होती है- (१) समुद्र में द्वीप बढ़ने से पानी कम होता है और पानी कम होने से वनस्पति के अन तकाय जीव कम होते हैं। (२) मानस सरोवर के कारण उस दिशा में पानी वनस्पति जीव ज्यादा होते हैं। (३) पश्चिम महाविदेह के ढ़लाव के कारण और क्षेत्र विस्तार ज्यादा होने के कारण मानव और अग्नि जीव ज्यादा होते है। (४) भरत एरवत क्षेत्र उत्तर दक्षिण में छोटे होने से एव पूर्व पश्चिम में महाविदेह क्षेत्र बड़े होने से मनुष्य और अग्नि जीव ज्यादा होते है। (५) भवन ज्यादा होने से पोलार ज्यादा होती है । क्यों कि भवन के सिवाय पृथ्वी ठोस होती है अत: पृथ्वी जीव घटते है और वायुजीव बढ़ते हैं। (६) समुद्र में द्वीप बढ़ने से उस दिशा में पृथ्वीकाय जीव बढ़ते हैं। इत्यादि कारणों से चारों दिशाएँ क्षेत्र की अपेक्षा समान होते हुए भी सभी प्रकार के जीवों में कुछ न कुछ कारण से अल्पता या अधिकता हो जाती है।

प्रश्न-२ : पृथ्वीकायिक आदि जीवों की चारों दिशाओं में न्यूनाधिकता किस प्रकार है ?

उत्तर- पृथ्वीकाय आदि पा चों सूक्ष्म जीव लोक में सर्वत्र समान होने से उनकी अल्पाबहुत्व नहीं की जाती है। बादर में वनस्पति जीव सबसे ज्यादा होते हैं अत: समुच्चयजीव और वनस्पति का बोल एक सरीखा होता है तथा वनस्पति भी जहाँ जल की अधिकता है वहीं निगोद की अपेक्षा ज्यादा होती है । बेइन्द्रिय आदि विकलेन्द्रिय जीव भी जल में अधिक होने से उनका बोल भी अप्काय के समान बनता है।

(१) इस प्रकार समुच्चयजीव, अप्काय जीव, वनस्पतिकाय जीव एव विकलेन्द्रिय त्रस जीव ये सभी पश्चिम में **सबसे कम हैं**(गौतमद्वीप होने से जल कम होने से)। **उससे** पूर्व में विशेषाधिक गौतमद्वीप नहीं होने से जल बढ़ने से। **उससे** दक्षिण में जीव विशेषाधिक है सूर्य चन्द्र के द्वीप नहीं होने से जल बढ़ा। **उससे** उत्तर में विशेषाधिक मानस सरोवर होने से जल बढ़ने से।

(२) पृथ्वीकाय के जीव सबसे थोड़े दक्षिण में। भवनपतियों के भवन अधिक होने से पोलार ज्यादा है अतः पृथ्वी **जीव कम** है। **उससे** उत्तर में पृथ्वी जीव विशेषाधिक है। दक्षिण की अपेक्षा उत्तर में भवन कम होने से पृथ्वी की ठोसता ज्यादा हुई। **उससे** पूर्व में पृथ्वी जीव विशेषाधिक। सूर्य चन्द्र के द्वीप अधिक होने से। **उससे** पश्चिम में पृथ्वी जीव विशेषाधिक गौतमद्वीप होने से पृथ्वी बढ़ी, समुद्री जल कम हुआ ।

(३) तेउकाय के जीव सबसे अल्प उत्तर दक्षिण में भरत एरवत क्षेत्र छोटे होने से। **उससे** पूर्व में स ख्यातगुणा, महाविदेह क्षेत्र विशाल होने से। **उससे** पश्चिम में विशेषाधिक, पश्चिम महाविदेह बड़ा होने से, ढ़लाव क्षेत्र होने से।

(४) वायुकाय के जीव **सबसे थोड़े** पूर्व में, भवन कम होने से पोलार कम। **उससे** पश्चिम में विशेषाधिक, पश्चिम महाविदेह ढ़लाव में एक हजार योजन ऊंड़ा होने से पोलार बढ़ी और पोलार में वायुकाय जीव होवे। **उससे** उत्तर में विशेषाधिक, भवन ज्यादा होने से। **उससे** दक्षिण में विशेषाधिक, उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में भवन ज्यादा होने से पोलार ज्यादा होवे ।

(५) सातों नारकी के जीव तीन दिशा में अल्प है। **उससे** दक्षिण में अस ख्यगुणे। लोक स्वभाव से कृष्णपक्षी जीव दक्षिण में ज्यादा उत्पन्न होते हैं एव उस दिशा में नरकावास भी अधिक है।

(६) तिर्यंच प चेन्द्रिय, जलचर की प्रमुखता से पश्चिम में सबसे कम उससे पूर्व में विशेषाधिक। **उससे** दक्षिण में विशेषाधिक। **उससे** उत्तर में विशेषाधिक। कारण सभी अप्काय के समान ।

(७) मनुष्य उत्तर-दक्षिण में सबसे कम, क्षेत्र छोटे होने से। उससे पूर्व

में स ख्यात गुणे। उससे पश्चिम में विशेषाधिक, पश्चिम महाविदेह विशाल एव ढ़लाव वाला होने से ।

(८) भवनपति देव पूर्व-पश्चिम में अल्प, भवन कम होते हैं । **उससे** उत्तर में अस ख्यगुणा। **उससे** दक्षिण में अस ख्यगुणा ।

(९) व्य तरदेव सबसे कम पूर्व में। **उससे** पश्चिम में विशेषाधिक, पश्चिम विदेह बड़ा होने से। **उससे** उत्तर में विशेषाधिक । **उससे** दक्षिण में विशेषाधिक ।

(१०) ज्योतिषी देव सबसे कम पूर्व-पश्चिम में। **उससे** दक्षिण में विशेषाधिक। **उससे** उत्तर में विशेषाधिक, मानस सरोवर है ।

(११) वैमानिक **४ देवलोक** के देव पूर्व-पश्चिम **में कम**। उससे उत्तर में अस ख्यगुणा। **उससे** दक्षिण में विशेषाधिक। **देवलोक-५ से ८** में तीन दिशा में अल्प। दक्षिण में अस ख्यगुणा । आगे के देवलोक में प्रायः चारों दिशाओं में समान है ।

अधिक या कम होने के कारण ऊपर दिये गये है। उनके सिवाय स्वभाव से भी कुछ हीनाधिकता रहती है। जैसे व्य तर ज्योतिषी पूर्व पश्चिम में स्वभाव से कम होते हैं, और उत्तर दक्षिण में स्वभाव से ही अधिक होते हैं ।

(१२) सिद्ध जीव सबसे कम उत्तर-दक्षिण में, भरत एरवतक्षेत्र छोटे होने से। **उससे** पूर्व में स ख्यातगुणा, **उससे** पश्चिम में विशेषाधिक। थोकड़ों की भाषा में इस दिशा स ब धी अल्पाबहुत्व को **दिशाणुवाई का थोकड़ा** कहा जाता है ।

प्रश्न-३ : ऊँचा लोक आदि ६ क्षेत्र किस प्रकार होते है ?

उत्तर- प्रस्तुत में क्षेत्र के **६ बोल** इस प्रकार बताये गये हैं- (१) **ऊँचालोक**- समभूमि से ९०० योजन ऊपर जाने के बाद से लेकर ऊपर लोका त तक का क्षेत्र। (२) **नीचालोक**- समभूमि से ९०० योजन नीचे जाने के बाद से प्रार भ होकर नीचे लोका त तक का क्षेत्र । (३) **तिरछालोक**- समभूमि से ९०० योजन नीचे और ९०० योजन ऊपर का, यों कुल-१८०० योजन का जाड़ा चारों दिशा में लोका त तक का क्षेत्र

तिरछा लोक है। (४) **त्रैलोक**–जीव जब जब ऊपर से नीचे या नीचे से ऊपर तीनों लोक को आत्मप्रदेशों से स्पर्श करता है अर्थात् वाटे वहेता जीव और मरण समुद्घात में रहा जीव तीनों लोकों को एक साथ स्पर्श करता है उस आत्मप्रदेशों से अवगाहित क्षेत्र को **त्रैलोक** कहा गया है। (५) **अधोलोक तिरियलोक**–अधोलोक का ऊपरी प्रतर और तिरछेलोक के नीचे का अ तिम प्रतर ये दोनों मिलकर अधोलोक तिरियलोक नाम से कहे गये हैं। (६) **ऊर्ध्वलोक तिरियलोक**– ऊर्ध्वलोक का नीचे का एक प्रतर और तिरछेलोक का ऊपरी अ तिम एक प्रतर ये दोनों मिलकर **ऊर्ध्वलोक तिरियलोक** नाम से कहे गये हैं ।

विशेष–(१) ऊर्ध्वलोक ७ राजु से कुछ कम है, अधोलोक ७ राजु से कुछ अधिक है (२) त्रैलोक में तिरछालोक क्षेत्र स पूर्ण आता है, शेष दोनों लोक का जघन्य एक देश और उत्कृष्ट स पूर्ण भी हो सकते हैं ।

प्रश्न-४ : इन ६ क्षेत्रों में जीवों की अल्पाबहुत्व किस प्रकार है?

उत्तर–चार दिशाओं की तरह प्रस्तुत ६ क्षेत्र समान नहीं है कि तु विभिन्न क्षेत्रफल वाले हैं। अतः इस अल्पाबहुत्व में सूक्ष्म जीवों को भी शामिल गिना गया है। जिससे (१) समुच्चय जीव (२)समुच्चय तिर्यंच (३) समुच्चय एकेन्द्रिय और (४-८) पा च स्थावर इन आठ बोलों की अल्पाबहुत्व एक समान(सूक्ष्म की मुख्यता से)होती है ।

समुच्चय जीव आदि आठ– (१) सबसे कम ऊर्ध्वलोक तिरियलोक को स्पर्शने वाले जीव (२) **उससे** अधोलोक तिरियलोक को स्पर्श करने वाले जीव विशेषाधिक (नीचा लोक कुछ बड़ा होने से अधिक है।) (३) **उससे** तिरछालोक में रहे जीव अस ख्यगुणे (क्यों कि क्षेत्र बड़ा है) जिससे स्वस्थानगत जीव ज्यादा होते हैं (४) **उससे** त्रैलोक को स्पर्शने वाले जीव अस ख्यगुणा। ऊर्ध्वलोक और अधोलोक बहुत बड़े है उनके वाटे वहेता और समुद्घात वाले सभी जीव गिने गये हैं (५) **उससे** ऊर्ध्व लोक के जीव अस ख्यगुणा। इसमें स्वस्थानगत जीव पूरे ऊर्ध्वलोक के समाविष्ट है (६) **उससे** अधोलोक के जीव विशेषाधिक। क्यों कि स्वस्थान स्थित जीवों का अधोलोक क्षेत्र ऊर्ध्वलोक से कुछ बड़ा है ।

तीन विकलेन्द्रिय जीव–(१) सबसे कम ऊर्ध्वलोक में। क्यों कि देवलोकों में विकलेन्द्रिय नहीं होते अतः स्वस्थान कम है। (२) **उससे** ऊर्ध्वलोक तिरियलोक में अस ख्यगुणा। तिरछालोक में स्वस्थान-उत्पत्तिस्थान ज्यादा होने से। (३) **उससे** त्रैलोक को स्पर्शने वाले अस ख्यात गुणा। क्यों कि ऊर्ध्वलोक और अधोलोक का क्षेत्र विशाल है जिससे वाटेवहेता और समुद्घातगत जीव एकेन्द्रिय में जाने-आने वाले अधिक होते हैं। (४) **उससे** अधोलोक तिरियलोक को स्पर्शने वाले अस ख्य गुणा। तिरछेलोक में समुद्र होने से स्वस्थानगत बादरजीव ज्यादा है। तथा वाटेवहेता और समुद्घात गत जीव भी अधोलोक से आने वाले अधिक होते हैं। (५) **उससे** अधोलोक में रहे जीव स ख्यातगुणे। क्षेत्र बड़ा है। (६) **उससे** तिरछेलोक में जीव स ख्यातगुणा। समुद्री जल ज्यादा होने से ।

त्रस और समुच्चय प चेन्द्रिय–इसमें चारों गति के प चेन्द्रिय समाविष्ट है। (१) सबसे कम तीनलोक को स्पर्श करनेवाले। क्यों कि ऐसे समुद्घात वाले और वाटेवहेता प चेन्द्रिय या त्रस थोड़े होते हैं (२) **उससे** ऊर्ध्वलोक तिरियलोक को स्पर्श करने वाले त्रस या प चेन्द्रिय स ख्यात गुणे होते हैं। (३) **उससे** अधोलोक तिरियलोक को स्पर्शने वाले स ख्यात गुणा। (४-५) **उससे** ऊर्ध्वलोक, अधोलोक के स्वस्थानगत त्रस या प चेन्द्रिय क्रमशः स ख्यातगुणा। (६) **उससे** तिरछालोक में रहे स्वस्थानगत प चेन्द्रिय या त्रस अस ख्यगुणा ।

तिर्यंचाणी– (१) सबसे कम ऊर्ध्वलोक में (२) उससे ऊर्ध्वलोक-तिरियलोक में अस ख्यगुणी। ऊर्ध्वलोक के एकेन्द्रियादि तिर्यंचाणी में उत्पन्न होते हुए वाटेवहेता के जीव तथा तिर्यंचाणी जीव ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होने के पूर्व समुद्घात में इन दो प्रतरों का स्पर्श करते है। (३) **उससे** तीनलोक को स्पर्श करने वाली उपपात और समुद्घात अवस्था वाली तिर्यंचाणी स ख्यातगुणी होती है। (४) **उससे** अधोलोक तिरियलोक को स्पर्श करने वाली तिर्यंचाणी स ख्यातगुणी। ऊर्ध्वलोक तिरियलोक के समान समझना। (५) **उससे** स्थान स्थित अधोलोक में स ख्यातगुणी। १०० योजन के समुद्र अधोलोक में होने से। (६) **उससे** स्थान स्थित

तिरछालोक में तिर्यंचाणी स ख्यातगुणी, नौ सौ योजन ऊड़े समुद्र होने से।

मनुष्य मनुष्याणी-(१) सबसे कम तीनलोक को स्पर्श करने वाले मनुष्य समुद्घात की अपेक्षा (२) **उससे** ऊर्ध्वलोक तिरियलोक में स ख्यात गुणा (अस ख्यातगुणा) (३) **उससे** अधोलोक तिरियलोक में स ख्यात गुणा (४) **उससे** ऊर्ध्वलोक में स ख्यातगुणा (५) अधोलोक में स ख्यात गुणा (६) तिरछालोक में स ख्यातगुणा। मनुष्याणी सर्वत्र स ख्यात गुणी होती है। मनुष्य के बोल में स मुच्छिम मनुष्य समाविष्ट होने से दूसरे ऊर्ध्व लोक तिरियलोक के बोल में अस ख्यगुणा मनुष्य होते हैं। शेष सभी बोल मनुष्य-मनुष्याणी के एक सरीखे हैं ।

नारकी-(१) सबसे कम तीन लोक में (२) **उससे** अधोलोक तिरिय लोक में अस ख्यातगुणा (३) **उससे** अधोलोक में अस ख्यातगुणा ।

देव-देवी समुच्चय-(१) सबसे **कम** ऊर्ध्वलोक में (२) **उससे** ऊर्ध्व लोक तिरियलोक में अस ख्यगुणा (३) **उससे** तीन लोक के स्पर्श करने वाले स ख्यातगुणा (४) **उससे** अधोलोक तिरियलोक को स्पर्श करने वाले देव देवी स ख्यातगुणा। व्य तर भवनपति के आवागमन की अपेक्षा (५) **उससे** अधोलोक में स ख्यातगुणा। भवनपति देवों का स्वस्थान है। (६) **उससे** तिरछालोक में देव देवी स ख्यातगुणा व्य तर ज्योतिषी दोनों प्रकार के देवों का स्वस्थान है ।

भवनपतिदेव-(१) सबसे कम ऊर्ध्वलोक में (२) **उससे** ऊर्ध्व लोक तिरियलोक को स्पर्शने वाले अस ख्यगुणे । तिरछालोक के अस ख्य द्वीप समुद्रों में रहने वाले मालिक देवों के उपपात-समुद्घात की अपेक्षा (३) **उससे** तीनलोक को स्पर्शने वाले स ख्यातगुणे। उपपात समुद्घात की अपेक्षा। (४) **उससे** अधोलोक तिरियलोक के दो प्रतरों को स्पर्श करने वाले अस ख्यातगुणे। ये भी उपपात समुद्घात की अपेक्षा। (५) **उससे** तिरछालोक के स्वस्थान गत की अपेक्षा अस ख्यगुणे (६) **उससे** नीचालोक के स्वस्थान की अपेक्षा अस ख्यगुणा।

[नोट- यहाँ क्षेत्र की अपेक्षा की इस अल्पाबहुत्वों में स ख्यातगुणा या अस ख्यात गुणा जैसा भी मूलपाठ मिलता है उसी को प्रमाणभूत मान कर स्वीकार करना ही रहा है । क्यों कि कहीं उस स ब धी तर्क का समाधान होता है, कहीं कोई उत्तर नहीं होता है ।]

व्य तरदेव-(१) सब से कम ऊर्ध्वलोक में (२) **उससे** ऊर्ध्वलोक-तिरियलोक में अस ख्यगुणा (३) **उससे** तीनलोक को स्पर्शने वाले स ख्यात गुणा (४) **उससे** अधोलोक तिरियलोक को स्पर्शने वाले अस ख्यगुणा (५) **उससे** अधोलोक के स ख्यातगुणा (६) **उससे** तिरछेलोक के स्वस्थान-गत स ख्यातगुणे। ***[नोट-तिरछालोक इनका खास स्वस्थान है फिर भी इसके लिये अस ख्यगुणा का पाठ उपलब्ध नहीं है ।]***

ज्योतिषीदेव-(१) सबसे कम ऊर्ध्वलोक में (२) **उससे** ऊर्ध्वलोक तिरिय लोक को स्पर्शने वाले अस ख्यगुणे । तिरछेलोक के सीमांतवर्ती एव गमनागमन करने वाले देवों की अपेक्षा (३) **उससे** तीनलोक का स्पर्श करने वाले देव स ख्यातगुणा (४) **उससे** अधोलोक तिरियलोक को स्पर्श करने वाले ज्योतिषी अस ख्यगुणे। समुद्र के प चेन्द्रिय से स ब धित उपपात समुद्घात की अपेक्षा (५) **उससे** अधोलोक में रहे ज्योतिषी देव स ख्यात गुणे। ***[नोट-यह बोल कि चित भी कोई भी अपेक्षा से समझ में नहीं आता है। तर्क एव कल्पना से यह बोल सबसे पहला यानि ऊर्ध्व लोक से भी पहले होना चाहिये । क्यों कि ऊर्ध्वलोक तो ज्योतिषी विमानों से निकट है सैकड़ों हजारों अस ख्य देव भ्रमण कर सकते है कि तु स्वत त्र अधोलोक और ज्योतिषी देवों का ऐसा कोई स ब ध नहीं जमता है । मात्र सलिलावती-वप्रा इन विजयों में कभी प्रस ग से स ख्यात देव मिल सकते है जो ऊर्ध्वलोक के प्रथम बोल से कम ही होने की शक्यता है।]*** (६) **उससे** तिरछे लोक में स्वस्थानगत ज्योतिषी देव अस ख्यगुणा है।

वैमानिक देव-(१) सबसे कम ऊर्ध्वलोक तिरियलोक को स्पर्शने वाले, उपपात-समुद्घात(गमनागमन) की अपेक्षा। (२) **उससे** तीन लोक को स्पर्श करने वाले स ख्यातगुणा।(३) **उससे** अधोलोक तिरिय लोक को स्पर्शने वाले स ख्यात गुणा।(४) **उससे** अधोलोक में स्थित रहे वैमानिक स ख्यातगुणा। (५) उससे तिरछेलोक में रहे स्थित वैमानिक स ख्यातगुणे।(६) **उससे** ऊर्ध्वलोक में स्वस्थान स्थित वैमानिक देव अस ख्यगुणे।

[नोट-यह वैमानिक देवों का अल्पाबहुत्व भी आगम प्रमाण से

समझ में नहीं आवे जैसा है क्यों कि उपपात-समुद्घातगत जीव ऊपर कहे प्रथम द्वितीय बोल में अस ख्य हो सकते है । तथा तीसरे चौथे पा चवें बोल में स ख्याता देव ही स भव हो सकते है । अतः तीसरे चौथे पा चवें बोल को पहला दूसरा तीसरा बोल कहा जाय फिर दूसरे को चौथा और पहले को पा चवाँ बोल कहा जाय तो तर्क स गत होता है । *यथा-*

(१) सबसे कम अधोलोक तिरियलोक को स्पर्श करनेवाले देव(स ख्यात) (२) उससे अधोलोक में आये हुए देव स ख्यातगुणा (३) उससे तिरछालोक में आये वैमानिक देव स ख्यातगुणे (४) उससे तीनलोक स्पर्शने वाले उपपात-समुद्घात वाले अस ख्यगुणा (५) उससे ऊर्ध्व-तिरिय लोक को स्पर्शने वाले उपपात समुद्घात वाले स ख्यातगुणे । (६) उससे ऊर्ध्वलोक के वैमानिक स्वस्थान होने से अस ख्यगुणे ।]

इस प्रकार ज्योतिषी और वैमानिक में क्षेत्र की अपेक्षा वाली अल्पाबहुत्व स ब धी मूलपाठ अनुसारी सत्यार्थ पर परा अनुपलब्ध है अथवा तो कभी मूलपाठ में लिपि-प्रमाद दोष हुआ हो ऐसा स्वीकारा जा सकता है। ***तत्त्व ज्ञानी गम्य । तमेव सच्च णिस क ज जिणेहिं पवेइय ।*** *इन वाक्यों से छद्मस्थों को अनाग्रहभाव रखकर जिनवचनों के प्रति श्रद्धा स्थिर रखनी चाहिये ।*

प्रश्न-५ : इन क्षेत्रीय अल्पाबहुत्व को स क्षिप्त में किस प्रकार समझें ?

उत्तर- क्षेत्रलोक के ६ बोलों में जीवों की अल्पाबहुत्व :-

[चार्ट सूचना :- *कोष्ठक में सूचित आ कड़े अल्पाबहुत्व के क्रम न बर हैं। जैसे कि (१) समुच्च्य तिर्यंच सबसे कम ऊर्ध्वलोक-तिरियलोक में (२)* ***उससे*** *अधोलोक-तिरियलोक में विशेषाधिक (३)* ***उससे*** *तिरछालोक में अस ख्यात गुणे (४)* ***उससे*** *तीनों लोक में अस ख्यगुणे (५)* ***उससे*** *ऊर्ध्वलोक में अस ख्य गुणे (६)* ***उससे*** *अधोलोक में विशेषाधिक ।*

[स क्षिप्त अक्षरो की पहिचान : अस० *= अस ख्यातगुणा,* ***स०, स ख्य०*** *= स ख्यातगुणा,* ***विशे०*** *= विशेषाधिक।* ***ऊर्ध्व-तिरिय०*** *= ऊर्ध्वलोक तिरछालोक,* ***अधो-तिरिय०*** *= अधोलोक तिरछालोक]*

क्रम	जीव	ऊर्ध्वलोक	अधोलोक	तिर्छालोक	ऊर्ध्व-तिरिय	अधो-तिरिय	तीन लोक
१	समुच्चय जीव,तिर्यंच एकेन्द्रिय ५ स्थावर	५ अस०	६ विशे०	३ अस०	१ अल्प	२ विशे०	४ अस०
२	३ विकले०	१ अल्प	५ स ख्य०	६ स०	२ अस०	४ अस०	३ अस०
३	प चेन्द्रिय	४ स०	५ स०	६ अस०	२ स०	३ स०	१ अल्प
४	त्रस	४ स०	५ स०	६ अस०	२ स०	३ स०	१ अल्प
५	तिर्यंचाणी	१ अल्प	५ स ख्य०	६ स०	२ अस०	४ स०	३ स०
६	मनुष्य	४ स०	५ स ख्य०	६ स०	२ अस०	३ स०	१ अल्प
७	मनुष्याणी	४ स०	५ स ख्य०	६ स०	२ स ख्य	३ स०	१ अल्प
८	नारकी	–	३ अस०	–	–	२ अस०	१ अल्प
९	देव-देवी	१ अल्प	५ स ख्य०	६ स०	२ अस०	४ स०	३ स०
१०	भवनपति	१ अल्प	६ अस०	५ अस०	२ अस०	४ अस०	३ स०
११	वाणव्य तर	१ अल्प	५ स०	६ स०	२ अस०	४ अस०	३ स०
१२	ज्योतिषी	१ अल्प	५ स०	६ अस०	२ अस०	४ अस०	३ स०
१३	वैमानिक	६ अस०	४ स०	५ स ख्य०	१ अल्प	३ स०	२ स०

प्रश्न-६ : ६ द्रव्यों की एव आयुष्य कर्म ब धक आदि १४ बोलों की अल्पाबहुत्व किस प्रकार होती है ?

उत्तर- षटद्रव्य- (१) धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय द्रव्य से तीनों एक एक होने से समान है और सबसे अल्प हैं। (२) धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय के प्रदेश आपस में तुल्य अस ख्यगुणा । (३) जीवास्तिकाय द्रव्य अन तगुणा। (४) जीवास्तिकाय प्रदेश अस ख्य गुणा (५) पुद्गलास्तिकाय द्रव्य अन तगुणा (६) इन्ही के प्रदेश अस ख्य गुणा। (७) अद्धासमय अप्रदेशार्थ अन तगुणा। (८) आकाशास्तिकाय प्रदेश अन तगुणा ।

(१) सबसे थोड़ा जीव (२) पुद्गल अन तगुणा (३) अद्धासमय अन तगुणा (४) सर्व द्रव्य विशेषाधिक (५) सर्वप्रदेश अन तगुणा (६) सर्व पर्याय अन तगुणे है ।

आयुष्य कर्मब धक आदि १४ बोल–(१) सबसे थोड़े आयु के ब धक (२) अपर्याप्त स ख्यातगुणा (३) सुप्त जीव स ख्यातगुणा (४) समुद्घात वाले स ख्यातगुणा (५) सातावेदक स ख्यातगुणा (६) इन्द्रियोपयुक्त स ख्यातगुणा (७) अनाकारोपयुक्त स ख्यातगुणा (८) साकारोपयुक्त स ख्यातगुणा (९) नो इन्द्रियोपयुक्त विशेषाधिक (१०) असाता वेदक विशेषाधिक (११) समुद्घात रहित विशेषाधिक (१२) जागृत विशेषाधिक (१३) पर्याप्त जीव विशेषाधिक (१४) आयु के अब धक जीव विशेषाधिक।

प्रश्न–७ : समस्त जीवों की सम्मिलित अल्पाबहुत्व किस प्रकार कही गई है ?

उत्तर– सर्व प्रकार के जीवों के विकल्प ९४ और ४ निगोद शरीर यों कुल मिलाकर **९८ बोलों की** अल्पाबहुत्व इस पद में कही गई है । जिसे **महाद ड़क** का थोकड़ा नाम से भी कहा जाता है ।

महाद ड़क : ९८ बोलों की अल्पाबहुत्व :-

(१) सबसे थोड़ा गर्भज मनुष्य (२) मनुष्याणी स ख्यातगुणी (३) बादर तेउकाय के पर्याप्त अस ख्यातगुणा (४) अणुत्तर विमान के देव अस ख्यगुणा (५) ऊपरि ग्रैवेयक त्रिक के देव स ख्यातगुणा (६) मध्यम त्रिक के देव स ख्यातगुणा (७) नीचे की त्रिक के देव स ख्यातगुणा (८) बारहवें देवलोक के देव स ख्यातगुणा (९) ग्यारहवें देवलोक के देव स ख्यातगुणा (१०) दसवें देवलोक के देव स ख्यातगुणा (११) नवमें देवलोक के देव स ख्यातगुणा ।

(१२) सातवीं नरक के नैरयिक अस ख्यातगुणा (१३) छट्ठी नरक के नारकी अस ख्यातगुणा (१४) आठवें देवलोक के देव अस ख्यातगुणा (१५) सातवें देवलोक के देव अस ख्यातगुणा (१६) पा चवीं नरक के नैरयिक अस ख्यातगुणा (१७) छट्ठे देवलोक के देव अस ख्यातगुणा (१८) चोथी नरक के नैरयिक अस ख्यातगुणा (१९) पा चवें देवलोक के देव अस ख्यातगुणा (२०) तीसरी नरक के नैरयिक अस ख्यातगुणा (२१) चौथे देवलोक के देव अस ख्यातगुणा (२२) तीसरे देवलोक के देव अस ख्यातगुणा (२३) दूसरी नरक के नैरयिक अस ख्यगुणा (२४) स मूर्च्छिम मनुष्य अस ख्यगुणा ।

(२५) दूसरे देवलोक के देव अस ख्यातगुणा (२६) दूसरे देवलोक की देवियाँ स ख्यातगुणी (२७) पहले देवलोक के देव स ख्यातगुणा (२८) पहले देवलोक की देवियाँ स ख्यातगुणी (२९) भवनपति देव अस ख्यात गुणा (३०) भवनपति देवियाँ स ख्यातगुणी (३१) पहली नरक के नैरयिक अस ख्यातगुणा

(३२) खेचर तिर्यंच पुरुष अस ख्यातगुणा (३३) खेचर तिर्यंचाणी स ख्यातगुणी (३४) स्थलचर तिर्यंच पुरुष स ख्यातगुणा (३५) स्थलचर तिर्यंचाणी स ख्यातगुणी (३६) जलचर तिर्यंच पुरुष स ख्यातगुणा (३७) जलचर तिर्यंचाणी स ख्यातगुणी ।

(३८) वाणव्य तर देव स ख्यातगुणा (३९) वाणव्य तर देवियाँ स ख्यातगुणी (४०) ज्योतिषी देव स ख्यातगुणा (४१) ज्योतिषी देवियाँ स ख्यातगुणी ।

(४२) खेचर सन्नी नपु सक स ख्यातगुणा (४३) स्थलचर सन्नी नपु सक स ख्यातगुणा (४४) जलचर सन्नी नपु सक स ख्यातगुणा

(४५) चौरेन्द्रिय के पर्याप्त स ख्यातगुणा (४६) प चेन्द्रिय के पर्याप्त विशेषाधिक (४७) बेइन्द्रिय के पर्याप्त विशेषाधिक । (४८) तेइन्द्रिय के पर्याप्त विशेषाधिक ।

(४९) प चेन्द्रिय के अपर्याप्त अस ख्यातगुणा (५०) चौरेन्द्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक (५१) तेइन्द्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक (५२) बेइन्द्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक ।

(५३) प्रत्येक शरीरी वनस्पति पर्याप्त अस ख्यातगुणा (५४) बादर निगोद शरीर पर्याप्त अस ख्यातगुणा (५५) बादर पृथ्वीकाय के पर्याप्त अस ख्यातगुणा (५६) बादर अप्काय के पर्याप्त अस ख्यातगुणा (५७) बादर वायुकाय के पर्याप्त अस ख्यातगुणा ।

(५८) बादर तेउकाय के अपर्याप्त अस ख्यातगुणा (५९) प्रत्येक शरीरी वनस्पति के अपर्याप्त अस ख्यातगुणा (६०) बादर निगोद शरीर अपर्याप्त अस ख्यातगुणा (६१) बादर पृथ्वीकाय के अपर्याप्त अस ख्यात गुणा (६२) बादर अप्काय के अपर्याप्त अस ख्यातगुणा (६३) बादर वायुकाय के अपर्याप्त अस ख्यातगुणा ।

(६४) सूक्ष्म तेउकाय के अपर्याप्त अस ख्यातगुणा (६५) सूक्ष्म पृथ्वीकाय के अपर्याप्त विशेषाधिक (६६) सूक्ष्म अप्काय के अपर्याप्त विशेषाधिक (६७) सूक्ष्म वायुकाय के अपर्याप्त विशेषाधिक (६८) सूक्ष्म तेउकाय के पर्याप्त स ख्यातगुणा (६९) सूक्ष्म पृथ्वीकाय के पर्याप्त विशेषाधिक (७०) सूक्ष्म अप्काय के पर्याप्त विशेषाधिक (७१) सूक्ष्म वायुकाय के पर्याप्त विशेषाधिक (७२) सूक्ष्म निगोद(शरीर) अपर्याप्त अस ख्यात गुणा (७३) सूक्ष्मनिगोद(शरीर) पर्याप्त स ख्यातगुणा

(७४) अभवी अन तगुणा (७५) पड़िवाई सम्यग्दृष्टि अन तगुणा (७६) सिद्ध अन तगुणा ।

(७७) बादर वनस्पति के पर्याप्त अन तगुणा (७८) बादर (समस्त) के पर्याप्त विशेषाधिक (७९) बादर वनस्पति के अपर्याप्त अस ख्यात गुणा (८०) बादर के अपर्याप्त विशेषाधिक (८१) बादर विशेषाधिक ।

(८२) सूक्ष्म वनस्पति के अपर्याप्त अस ख्यातगुणा (८३) सूक्ष्म के अपर्याप्त(समस्त) विशेषाधिक (८४) सूक्ष्म वनस्पति के पर्याप्त स ख्यातगुणा (८५) सूक्ष्म के पर्याप्त(समस्त) विशेषाधिक (८६) सूक्ष्म विशेषाधिक ।

(८७) भवी जीव विशेषाधिक (८८) निगोद के जीव विशेषाधिक (८९) वनस्पति जीव विशेषाधिक (९०) एकेन्द्रिय जीव विशेषाधिक (९१) तिर्यंच जीव विशेषाधिक ।

(९२) मिथ्या दृष्टि जीव विशेषाधिक (९३) अविरत जीव विशेषाधिक (९४) सकषायी जीव विशेषाधिक (९५) छद्मस्थ जीव विशेषाधिक (९६) सयोगी जीव विशेषाधिक (९७) स सारी जीव विशेषाधिक (९८) सर्व जीव विशेषाधिक ।

विशेष :-(१) मनुष्य से मनुष्याणी उत्कृष्ट की अपेक्षा २७ गुणी २७ अधिक होती है, देव से देवी उत्कृष्ट ३२ गुणी ३२ अधिक होती है एव सन्नी तिर्यंच से तिर्यंचाणी ३ गुणी ३ अधिक होती है ।

(२) भवनपति देव, नारकी से कम है किन्तु व्य तर और ज्योतिषी देव नारकी से अधिक है । अतः नरक से देव अधिक है ।

(३) सन्नी तिर्यंच पुरुष एव स्त्री से व्य तर ज्योतिषी देव अधिक है किन्तु

सन्नी तिर्यंच नपु सक के जीव देवों से अधिक है । अतः देवों से समुच्चय सन्नी तिर्यंच अधिक है । तभी देव का अ तिम बोल ४१वाँ है और सन्नी तिर्यंच नपु सक का अ तिम बोल ४४वाँ है ।

(४) समुर्च्छिम मनुष्य और बादर तेउकाय को छोड़कर ४४ बोल तक सभी बोल सन्नी के ही है। ४५ वें बोल से असन्नी जीव है। ४६ वें और ४९ वें बोल में असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय एव सन्नी तिर्यंच प चेन्द्रिय दोनों का समावेश है ।

(५) बादर के अपर्याप्त अस ख्यातगुणा अधिक होता है और सूक्ष्म में पर्याप्त स ख्यातगुणा अधिक होता है ।

(६) ५४, ६०, ७२, ७३ इन चार बोलों में निगोद शरीर अपेक्षित है जीव नहीं। ८८ वें बोल में निगोद के जीव अपेक्षित है अर्थात् ९८ बोलों में ९४ बोल जीव के और ४ बोल शरीर के अपेक्षित है ।

(७) बादर तेउकाय के पर्याप्त बहुत कम होते है उसका बोल तीसरा ही है तो अपर्याप्त का बोल ५८ वाँ है ।

(८) प्रार भ के दो बोल में स ख्याता जीव है, तीसरे से ७३ वें बोल तक में अस ख्य जीव है। अतः देवों में स ख्यात गुणा जो कहा गया है वह पूर्व बोल की अपेक्षा से है। किन्तु देव तो उस बोल के अस ख्य ही समझना ।

(९) अन त का बोल ७४ से प्रार भ होता है अर्थात् ७३ बोल तक ७१ बोल अस ख्य के हैं। अभवी चौथे अन त जितने है। पड़िवाई समदृष्टि पा चवें और सिद्ध आठवें अन त जितने हैं। भवी आठवें अन त में है। सर्व जीव भी आठवें अन त में है।

(१०) २४, ९५, ९७ ये तीन बोल अशाश्वत है, वे क्रमशः समुर्च्छिम मनुष्य, १२वें गुणस्थान एव १४वें गुणस्थान से स ब धित है। ये दोनों गुणस्थान भी अशाश्वत है अर्थात् १२ वें गुणस्थान में कोई जीव नहीं होता तो ९५ वाँ बोल नहीं बनता और जब १४वें गुणस्थान में कोई जीव नहीं होता तो ९७वाँ बोल नहीं बनता है ।

अल्पाबहुत्व पर अनुप्रेक्षा :- स सार में सबसे अल्प मनुष्यों की

स ख्या है इतनी ल बी सूची में मनुष्य का स्थान सर्वप्रथम है। इसी कारण आगम में मनुष्य भव दुर्लभ कहे गये हैं ।

नरक में नीचे-नीचे जीवों की स ख्या कम है तो देवों में ऊपर ऊपर जीवों की स ख्या कम है, सातवीं नरक में जीव सब नरकों से कम है तो अणुत्तरदेव भी सब देवों से बहुत कम है अर्थात् लोक में अत्य त पुण्यशाली जीव कम होते है तो अत्य त पापी जीव भी कम ही होते है।

इन्द्रियाँ कम होती है, वहाँ जीव ज्यादा होते है अर्थात् प चेन्द्रिय से चौरेन्द्रिय अधिक है, एकेन्द्रिय सर्वाधिक है अर्थात् विकास प्राप्त जीव कम होते हैं ।

५२ बोल तक त्रस जीवों की अल्पाबहुत्व है केवल तीसरा बोल स्थावर का है ।

५३ से ८६ बोल तक स्थावर जीवों की अल्पाबहुत्व है ७४, ७५, ७६ बोल को छोड़कर । ३८ से ४४ तक के बोल स ख्यातगुणे है । वे अत्यधिक स ख्यातगुणे है अत: एकाधिक बोल मिलने से अस ख्यगुणे बन जाते है । यथा- तिर्यंचाणी ३७वाँ बोल से देवी(४१वाँ बोल) अस ख्यगुणी है । देव से (४०-४१ वें बोल से) सन्नी तिर्यंच (४४वाँ बोल) अस ख्यगुणे है ।

नोट- इस ल बी अल्पाबहुत्व में अनेक छुटकर अल्पाबहुत्वों का समावेश हो जाता है और कई अल्पाबहुत्व जीवाभिगम सूत्र में एव इस सूत्र में एक सरीखी है । अत: एक जगह देने का ही ध्यान रखा गया है । अर्थात् जीवाभिगम प्रश्नोत्तर में दी गई अल्पाबहुत्वों का यहाँ प्रज्ञापना सूत्र के प्रश्नोत्तर में पुन:कथन नहीं किया गया है ।

❋ पद-४ : स्थिति ❋

प्रश्न-१ : इस पद में जीवों की स्थितियों का वर्णन किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर- स्थिति=उम्र । चार गति २४ द ड़क के जीवों के भेदों में स्थिति का वर्णन है। जिसमें पहले समुच्चय स्थिति जघन्य-उत्कृष्ट कही है

फिर अपर्याप्त-पर्याप्त की भी जघन्य उत्कृष्ट स्थिति कही है ।

पा च स्थावर जीवों में पहले समुच्चय पृथ्वी आदि की, फिर सूक्ष्म-बादर की एव उनके पर्याप्त अपर्याप्त की अलग अलग स्थिति कही है । जिसमें (१) जघन्य सभी की अ तर्मुहूर्त की है (२) सूक्ष्म के पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों की उत्कृष्ट भी अ तर्मुहूर्त है (३) बादर में अपर्याप्तों की जघन्य-उत्कृष्ट दोनों अ तर्मुहूर्त की है (४) बादर में समुच्चय की और पर्याप्तों की दोनों की जघन्य अ तर्मुहूर्त की है ।

समुच्चय बादर पृथ्वी आदि की उत्कृष्ट और उनके पर्याप्ता की उत्कृष्ट स्थितिएँ अलग-अलग कही है, यथा-

जीव	बादर की उत्कृष्ट	पर्याप्ता बादर की उत्कृष्ट
पृथ्वीकाय	२२०००वर्ष	२२०००वर्ष में अ तर्मुहूर्त कम
अप्काय	७०००वर्ष	७०००वर्ष में अ तर्मुहूर्त कम
तेउकाय	३ अहोरात्रि	३ अहोरात्रि में अ तर्मुहूर्त कम
वायुकाय	३०००वर्ष	३००० वर्ष में अ तर्मुहूर्त कम
वनस्पतिकाय	१००००वर्ष	१००००वर्ष में अ तर्मुहूर्त कम

नोट- *यहाँ पर्याप्ता की स्थिति, करण पर्याप्ता की अपेक्षा कही गई है अत: सर्वत्र अ तर्मुहूर्त करण अपर्याप्त अवस्था का कम किया गया है। अपर्याप्ता में लब्धि अपर्याप्त और करण अपर्याप्त सभी की जघन्य उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त की स्थिति होती है। लब्धिपर्याप्त की स्थिति पृथ्वी आदि की २२००० वर्ष आदि परिपूर्ण ही होती है, उसमें अ तर्मुहूर्त न्यून करने की आवश्यकता नहीं होती है कि तु प्रस्तुत में शास्त्रकार ने पर्याप्त के कथन में करण पर्याप्त को लक्षित करके सर्वत्र करण अपर्याप्त का अ तर्मुहूर्त घटाकर स्थिति कही है। लब्धिपर्याप्त अर्थात् पर्याप्त नाम कर्म वाले जीव भी जन्म समय में जब तक पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं कर लेते तब तक के उस अ तर्मुहूर्त में उन्हें करण अपर्याप्त कहा जाता है।*

इसी पद्धति से २४ द ड़क में स्थिति कहते हुए देवो में भी पर्याप्त की स्थिति जघन्य १०००० वर्ष में अ तर्मुहूर्त कम और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम में अ तर्मुहूर्त कम इस पद में कही गई है ।

प्रश्न-२ : देवों को 'अमर' कहा जाता है तो फिर उनकी स्थिति-उम्र क्यों कही गई है ?

उत्तर- देवों को अपेक्षा विशेष से ही 'अमर' कहा जाता है। जिस तरह अन्य प्राणी छोटी उम्र में अर्थात् वर्ष २-४ वर्ष की उम्र में या १००-५० वर्ष की उम्र में मरते देखे जाते है वैसे देवों में छोटी उम्र में मरना नहीं होता है। मानव जिन देवों का नाम सुनता, पहिचानता है वे देव मानवों की अनेक पीढ़ी तक चलते हैं। क्यों कि देवों में सामान्य से सामान्य छोटे देव की भी कम से कम १०००० वर्ष की उम्र होती है, जो वर्तमान के मानव की दृष्टि में बहुत अधिक एव कल्पनातीत है, अतः ल बी उम्र की अपेक्षा देवों को **अमर** कह दिया जाता है। देवों की उत्कृष्ट उम्र तो अस ख्य वर्षों की भी होती है जिसकी स ख्या भी अरबो खरबो वर्ष में नहीं कही जा सकती। उसे उपमा से कहा जाता है जैसे कि पल्योपम, सागरोपम। अर्थात् कई ऋद्धिव त देवों की उत्कृष्ट उम्र होती है, वह देवी की ५५ पल्योपम तक भी एव देवों की ३३ सागरोपम तक भी होती है।

प्रश्न-३ : पल्योपम या सागरोपम की यह उपमा वाली स्थिति को हम कैसे समझ सकते है ?

उत्तर- पल्योपम और सागरोपम की उपमा का सूक्ष्मतम निरूपण विस्तार पूर्वक अनुयोगद्वार सूत्र में किया गया है। जिसे स क्षिप्त में इस प्रकार समझना— एक योजन(४ कोश) ल बा-चौड़ा और उतना ही ऊँड़ा एक खड्डा युगलियों के बालाग्र ख ड़ (एक बाल के अस ख्यख ड़)से ठसाठस भरा जाय उसमें से एक-एक बालाग्र को १००-१०० वर्ष से निकाला जाय। इस प्रकार निकालते निकालते जब, जितने वर्षों में वह खड्डा पूर्ण खाली हो जाय, एक भी बालाग्र उसमें नहीं रहे; उतने वर्षों के काल का एक पल्योपम समझना। १० क्रोड़ाक्रोड़ पल्योपम के जितने वर्ष बीतने पर एक सागरोपम का काल होता है, ऐसे ३३ सागरोपम की स्थिति नारकी और देवों में अधिकतम होती है। जो सातवीं नरक में और अनुत्तर विमान में होती है।

प्रश्न-४ : २४ द ड़क के जीवों की जघन्य उत्कृष्ट स्थितियाँ किस प्रकार है ?

उत्तर- जीवाभिगम सूत्र प्रथम प्रतिपत्ति में २३ द्वारों से २४ ही द ड़क

के जीवों का वर्णन है उसमें २० वाँ द्वार स्थिति का है, वहाँ के वर्णन में सभी जीवों की स्थितियों का वर्णन कर दिया गया है। जिसमें युगलिक मनुष्य-तिर्यंच की एव देव-देवियों की स्थितियाँ भी खुलासे पूर्वक कही गई है। जो प्रश्नोत्तर भाग-६, पृष्ट-८६ से १०६ में देखा जा सकता है।

पद-५ : पर्यव (विशेष पद)

प्रश्न-१ : इस पद में पर्यव=पर्यायों का वर्णन किस क्रम से किया गया है ?

उत्तर- जीव या अजीव की **विशेष-विशेष** अवस्थाओं को सिद्धा त में पर्यव-पर्याय शब्द से कहा जाता है। जीव सामान्य की भी अन त पर्यायें हैं और अजीव सामान्य की भी अन त पर्यायें हैं। क्यों कि २४ द ड़क और सिद्ध मिलकर लोक में कुल अन त जीव है। उनमें कुछ न कुछ भिन्नता अवगाहना, स्थिति, वर्णादि, ज्ञानादि की होती है। वैसे ही अजीव-पुद्गल भी लोक में अन त प्रकार के(स्क ध) हैं। उनमें भी प्रदेश, अवगाहना, स्थिति तथा वर्णादि की भिन्नता होती है। इस प्रकार सामान्य रूप से समुच्चय जीव और समुच्चय अजीव के अन त-अन त पर्यव-पर्याय होते हैं।

प्रस्तुत पद में पहले जीव पर्यव का विस्तार से वर्णन है फिर अजीव पर्यवों का भी विस्तृत वर्णन है।

जीवपर्यव में- (१) नारकी से लेकर वैमानिक पर्यंत जीवों में द ड़क के क्रम से सामान्य रूप से प्रत्येक के अन त पर्यवों का कथन उनकी अवगाहना, स्थिति, वर्णादि एव ज्ञानादि के पर्यवों के स्पष्टीकरण के साथ किया गया है। उसके बाद (२) जघन्य, उत्कृष्ट और अजघन्य अनुत्कृष्ट अर्थात् मध्यम अवगाहना, इन तीन विशेषण युक्त नारकी के अलग-अलग पर्यवों का कथन उनकी अवगाहना, स्थिति, वर्णादि एव ज्ञानादि की अपेक्षा किया गया है। (३) फिर जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम स्थिति वाले नैरयिक के पर्यवों का कथन उसकी अवगाहना, स्थिति, वर्णादि एव ज्ञानादि की अपेक्षा किया है। (४) फिर जघन्य, मध्यम एव उत्कृष्ट

कालागुण(वर्ण) वाले नैरयिक के पर्यवों का कथन है। यों २० ही वर्णादि वाले नैरयिक का कथन जघन्य मध्यम उत्कृष्ट गुण के विकल्प से किया है। (५) उसके बाद जघन्य मतिज्ञान, उत्कृष्ट मतिज्ञान एव मध्यम मति ज्ञान वाले नैरयिक के पर्यवों का कथन उसकी अवगाहना, स्थिति, वर्णादि और ज्ञानादि की अपेक्षा किया गया है। मतिज्ञान की तरह ही तीनों ज्ञान, तीनों अज्ञान और तीनों दर्शनों के जघन्य, उत्कृष्ट, मध्यम के विकल्प से अवगाहना, स्थिति, वर्णादि एव ज्ञानादि की अपेक्षा, कथन किया गया है। इस प्रकार समुच्चय नैरयिक के एक द ड़क का जघन्य मध्यम उत्कृष्ट विभागों द्वारा सभी अपेक्षाओं से पर्यवों का कथन पूर्ण होता है। (६) इसी प्रकार द ड़क के क्रम से २४ ही द ड़क में जघन्य मध्यम उत्कृष्ट के विभाग द्वारा वर्णन किया गया है। अ त में वैमानिक देवों के द ड़क में जघन्य मध्यम उत्कृष्ट के तीनों विकल्प से अवगाहना आदि सभी अपेक्षाओं का कथन करके जीवपर्यव का वर्णन पूर्ण किया गया है।

नोट- ***नारकी में ज्ञानादि ९ उपयोग का कथन है, अन्य द ड़कों में जहाँ जितने उपयोग(ज्ञानादि)होते है उतने का कथन होता है, यह विशेषता सर्वत्र समझ लेना ।***

अजीव पर्यव में- (१) अरूपी अजीव के दस भेदों को दस पर्याय कहकर स क्षेप में कथन पूर्ण कर दिया गया है। (२) रूपी अजीव के समुच्चय रूप से अन तपर्यव का कथन परमाणु से लेकर अन तप्रदेशी स्क धों की अन तता द्वारा किया गया है अर्थात् लोक में परमाणु भी अन त है, द्विप्रदेशी स्क ध भी अन त है, यों अन तप्रदेशी स्क ध भी अन त है। (३) उसके बाद परमाणु की अन त पर्यायों का कथन उसकी अवगाहना, स्थिति एव वर्णादि की अपेक्षा किया गया है। (४) उसी तरह द्विप्रदेशी स्क ध से लेकर अन त प्रदेशी स्क ध तक की पर्यायों का कथन उनके प्रदेश, अवगाहना, स्थिति एव वर्णादि की अपेक्षा किया गया है। (५) उसके बाद पुनः जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट के विकल्प से परमाणु आदि अन तप्रदेशी तक कथन है। जिसमें जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट, अवगाहना; जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट स्थिति; और जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट गुण काला आदि २० वर्णादि बोलों की अपेक्षा पर्यवों का कथन है। (६) उसके बाद परमाणु आदि भेद के बिना समुच्चय रूप से जघन्य प्रदेशी स्क ध, उत्कृष्ट प्रदेशी स्क ध और

मध्यम प्रदेशी स्क ध; जघन्य अवगाहना वाले स्क ध, मध्यम अवगाहना वाले स्क ध और उत्कृष्ट अवगाहना वाले स्क ध, यों जघन्य मध्यम उत्कृष्ट स्थिति वाले स्क ध तथा जघन्य मध्यम उत्कृष्ट गुण काला वर्ण आदि २० बोलों वाले स्क धों की पर्यायों का कथन उनके द्रव्य, प्रदेश, अवगाहना, स्थिति एव वर्णादि बोलों की अपेक्षा किया गया है।

प्रश्न-२ : नारकी के अन त पज्जवों का-पर्यायों का(अवस्थाओं का) कथन अवगाहना आदि से किस प्रकार होता है ?

उत्तर- यहाँ नारकी-नारकी में आपस में तुलना करके उनमें होने वाली भिन्नता के आधार से अन त विभिन्नताएँ-विशेषताएँ सिद्ध करके अन त पर्यव समझाये गये हैं। इस तुलना में भी एक व्यक्तिगत नारकी की विवक्षा नहीं करके जातिवाचक नारकी अर्थात् अनेक प्रकार के नैरयिकों की विवक्षा करके स भवित अनेक विभिन्नताएँ दर्शाई गई है।

नैरयिक-नैरयिक तुलना- एक नैरयिक दूसरे कोई भी नैरयिक से **द्रव्य की अपेक्षा** तुल्य होता है, आत्मद्रव्य सभी का एक होने से। **प्रदेश की** अपेक्षा भी तुल्य होता है आत्मप्रदेश भी सभी के एक सरीखे अस ख्य होने से। **अवगाहना** की अपेक्षा तुल्य भी हो सकते हैं और परस्पर हीनाधिक भी हो सकते हैं। हीनाधिक हो तो चार प्रकार से हीनाधिक हो सकते है, यथा- (१) एक अस ख्यातवें भाग हीन हो तो दूसरा उससे अस ख्यातवें भाग अधिक होगा। (२) एक स ख्यातवें भाग हीन हो तो दूसरा उससे स ख्यातवें भाग अधिक होगा। (३) एक स ख्यात गुण हीन हो तो दूसरा उससे स ख्यातगुण अधिक होगा। (४) एक अस ख्य गुण हीन अवगाहना वाला हो तो दूसरा उससे अस ख्य गुण अधिक अवगाहना वाला होगा। पूरे द ड़क की अपेक्षा नैरयिक नैरयिक में ये चार स्थानों की(प्रकार की) हीनाधिकता अवगाहना में हो सकती है इसे आगमभाषा में **चौठाणवड़िया** कहा जाता है।

अवगाहना के उदाहरण सहित चौठाणवड़िया हीनाधिकता-फर्क इस प्रकार के है- (१) कोई एक नैरयिक ५०० धनुष का है और दूसरा नैरयिक ५०० धनुष में अ गुल के अस ख्यातवें भाग कम है तो ये दोनों परस्पर अस ख्यातवें भाग हीनाधिक है। (२) एक नैरयिक ५०० धनुष का है और दूसरा (एक धनुष कम) ४९९ धनुष का है तो ये दोनों परस्पर

स ख्यातवें भाग हीनाधिक हैं। (३) एक नैरयिक ५०० धनुष का है और दूसरा १०० धनुष का है तो इन दोनों में परस्पर स ख्यातगुणी(पा चगुणी) हीनाधिकता है। (४) एक नैरयिक अ गुल के अस ख्यातवें भाग का है दूसरा ५०० धनुष का है तो ये दोनों परस्पर अस ख्यातगुणा हीनाधिक होते हैं। इस प्रकार नैरयिक अवगाहना की अपेक्षा कोई परस्पर तुल्य अथवा हीनाधिक भी हो सकते हैं। जिससे अस ख्यात भिन्नताएँ होने से अवगाहना की अपेक्षा नैरयिकों के अस ख्य पर्यव होते हैं।

स्थिति की अपेक्षा नैरयिक परस्पर तुल्य भी हो सकते हैं और हीनाधिक भी हो सकते हैं। हीनाधिक हो तो अवगाहना के समान ही चार प्रकार से हीनाधिक हो सकते हैं अर्थात् चौठाणवड़िया फर्क-भिन्नता परस्पर हो सकती है।

स्थिति के उदाहरण सहित चौठाणवड़िया फर्क इस प्रकार है- (१) एक नैरयिक ३३ सागरोपम की स्थिति का है और दूसरा ३३ सागर में अ तर्मुहूर्त कम स्थिति वाला है तो इन दोनों में परस्पर अस ख्यातवें भाग की हीनाधिकता है। (२) एक नैरयिक ३३ सागरोपम स्थिति वाला है और दूसरा ३२ सागरोपम वाला है तो ये दोनों परस्पर स ख्यातवें भाग हीन या अधिक है। (३) एक नैरयिक ३३ सागरोपम की स्थिति वाला है और दूसरा ३ सागरोपम की स्थिति वाला है तो ये दोनों परस्पर ११ गुणा अर्थात् स ख्यात गुणहीन या अधिक है। (४) एक नैरयिक ३३ सागरोपम की स्थिति वाला है और दूसरा १०००० वर्ष की स्थिति वाला है तो ये दोनों परस्पर अस ख्यगुण हीन या अधिक स्थिति वाले हैं। इस प्रकार नैरयिक स्थिति की अपेक्षा कोई तुल्य या कोई चौठाणवड़िया हीनाधिक हो सकते है। जिससे अस ख्यात भिन्नताएँ होने से स्थिति की अपेक्षा नैरयिकों के अस ख्य पर्यव होते हैं।

काले वर्ण की अपेक्षा नैरयिक परस्पर समान भी हो सकते है और ६ प्रकार से हीनाधिक भी हो सकते हैं- चार प्रकार तो अवगाहना जैसे ही है। दो प्रकार की हीनाधिकता काले वर्ण में विशेष है, यथा- (१) एक नैरयिक अन तवें भाग हीन हो तो दूसरा उससे अन तवें भाग अधिक काले वर्ण का होगा। (२) एक अन तगुण हीन काले वर्ण का हो तो दूसरा उससे अन तगुण अधिक होगा। पूरे द ड़क की अपेक्षा नैरयिक

नैरयिक में ये ६ प्रकार की भिन्नताएँ काले वर्ण की अपेक्षा हो सकती है जिसे शास्त्र की भाषा में **छट्ठाणवड़िया** कहा गया है। काले वर्ण के समान ही वर्णादि २० बोल के नैरयिक परस्पर छट्ठाणवड़िया हो सकते हैं।

काले वर्ण के उदाहरण सहित छट्ठाणवड़िया फर्क इस प्रकार है- चार स्थान का फर्क तो अवगाहना में कहा वैसा समझना। (५) एक नैरयिक अन तगुण काला है दूसरा अन त में एक गुण काला कम है तो ये दोनों परस्पर अन तवें भाग हीनाधिक काले वर्ण वाले है। (६) एक नैरयिक अन तगुणा काला वर्ण वाला है दूसरा उससे अन तवें भाग के अन तगुण काला वर्ण वाला है तो ये दोनों परस्पर अन तगुणहीन और अन तगुण अधिक काले वर्ण के हैं। इस प्रकार नैरयिक काले वर्ण की अपेक्षा कोई तुल्य और कोई छट्ठाणवड़िया हीनाधिक हो सकते है। जिससे अन त भिन्नताएँ होने से काले वर्ण की अपेक्षा नैरयिकों के अन त पर्यव होते हैं।

काले वर्ण के समान वर्णादि २० ही बोल और ९ उपयोग की अपेक्षा नैरयिकों में परस्पर छट्ठाणवड़िया भिन्नताएँ होने से उन सभी की अपेक्षा नैरयिकों के अन त पर्यव होते हैं।

यों स क्षेप में नैरयिकों के **द्रव्य** की अपेक्षा एक पर्यव है(समान होने से), प्रदेश की अपेक्षा भी एक पर्यव है(आत्मप्रदेश समान होने से), अवगाहना की अपेक्षा अस ख्यपर्यव-भिन्नताएँ होती है। स्थिति की अपेक्षा अस ख्य पर्यव और वर्णादि २० बोल ९ उपयोग की अपेक्षा अन त पर्यव नारकी के हैं। इसलिये कुल मिलाकर नारकी के अन त पर्यव (भिन्नताएँ) पर्याय कहे गये हैं।

प्रश्न-३ : असुरकुमार आदि देवों के अवगाहना आदि से अन त पर्यव-पज्जवों का कथन किस प्रकार होता है ?

उत्तर- एक असुरकुमार देव दूसरे कोई भी असुरकुमार देव की अपेक्षा परस्पर **द्रव्य** की अपेक्षा तुल्य होते हैं। प्रदेश की अपेक्षा भी तुल्य होते हैं। अवगाहना की अपेक्षा चौट्ठाणवड़िया भिन्नता होती है। स्थिति की अपेक्षा भी चौट्ठाणवड़िया भिन्नता होती है और वर्णादि २० बोल और ९ उपयोग की अपेक्षा परस्पर छट्ठाणवड़िया भिन्नता होती है।

जिससे कुल मिलाकर असुरकुमार देवों के अन तपर्यव होते हैं। इसी प्रकार नागकुमार आदि नवनिकाय देवों के भी अन तपर्यव समझना।

इसी प्रकार व्य तर, ज्योतिषी एव वैमानिक देवों के भी अवगाहना आदि की अपेक्षा कुल मिलाकर अन त पज्जवे-पर्यव होते हैं। ज्योतिषी और वैमानिक देवों में स्थिति की अपेक्षा तीन प्रकार की भिन्नताएँ होती है, चौथी अस ख्यगुण हीनाधिक स्थिति उनमें नहीं बनती है। क्योंकि पल्योपम और सागरोपम में परस्पर स ख्यातगुणा ही अ तर होता है। अतः १ पल्योपम और ३३ सागरोपम में भी आपस में स ख्यातगुणा अन्तर ही होता है। शेष सर्व कथन नारकी के समान है।

प्रश्न-४ : पृथ्वीकाय आदि के अवगाहना आदि की अपेक्षा अन त पर्यव-पज्जवे किस प्रकार होते हैं ?

उत्तर- एक पृथ्वीकाय दूसरे कोई भी पृथ्वीकाय की अपेक्षा परस्पर **(१)** द्रव्य से तुल्य, सभी का आत्मद्रव्य एक है। **(२)** प्रदेश से तुल्य, आत्मप्रदेश सभी के समान ही अस ख्य होते हैं। **(३)** अवगाहना से परस्पर चौठाण वड़िया, अस ख्य प्रकार की अवगाहनाएँ होने से। यद्यपि पृथ्वीकाय की अवगाहना जघन्य भी अ गुल के अस ख्यातवें भाग की होती है और उत्कृष्ट भी कथन की अपेक्षा अ गुल के अस ख्यातवें भाग की होती है पर तु जघन्य और उत्कृष्ट के बीच में अस ख्य प्रकार होते हैं। इसलिये अवगाहना की अपेक्षा पृथ्वीकाय परस्पर चौठाणवड़िया (चार प्रकार की भिन्नता वाले) होते हैं। **(४)** स्थिति की अपेक्षा परस्पर तिट्ठाणवड़िया= तीन प्रकार के फर्क वाले होते हैं। क्यों कि पृथ्वीकाय की स्थितियों में स ख्यातगुणा अ तर ही होता है, अस ख्यातगुणा अ तर नहीं होता है, क्यों कि स्थिति अस ख्यवर्ष की नहीं होती है ।

स्थिति में तीन प्रकार से फर्क के उदाहरण- १. एक पृथ्वीकाय २२००० वर्ष की स्थिति वाला है और दूसरा कोई भी पृथ्वीकाय २२००० वर्ष में १ समय कम स्थिति वाला है तो इन दोनों में परस्पर अस ख्यातवें भाग हीन और अस ख्यातवें भाग अधिक स्थिति होती है। २. एक पृथ्वीकाय की स्थिति २२००० वर्ष है और दूसरे किसी की २२००० वर्ष में १ वर्ष कम है तो इन दोनों में परस्पर स ख्यातवें भाग हीन और स ख्यातवें भाग अधिक स्थिति बनती है। ३. एक पृथ्वीकाय की २२००० वर्ष की स्थिति है और

दूसरे की १००० वर्ष की स्थिति है तो ये दोनों परस्पर स ख्यातगुण (२२गुणा) हीन एव अधिक स्थिति वाले होते हैं। इस प्रकार इनकी स्थिति में तिट्ठाणवड़िया=तीन स्थानों का फर्क होने से स्थिति की अपेक्षा पृथ्वीकाय के स ख्यात पर्यव(स ख्यात भिन्नताएँ) है। **(५)** वर्णादि २० बोल और ३ उपयोग(२ अज्ञान, १ दर्शन) की अपेक्षा छट्ठाणवड़िया फर्क=६ प्रकार का फर्क, नारकी के वर्णादि एव उपयोग के समान होता है।

वर्णादि एव ज्ञानादि की अपेक्षा छट्ठाणवड़िया फर्क होने से पृथ्वी-काय में अन त प्रकार की विभिन्नता होने से अन तपर्यव-पर्यायें बनती है। यों द्रव्य, अवगाहना आदि के एक, स ख्यात, अस ख्यात, अन तपर्यव मिलकर कुल अन त पज्जवे पृथ्वीकाय के हो जाते हैं।

पृथ्वीकाय के समान ही शेष चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय के अवगाहना आदि सभी अपेक्षाओं से मिलाकर अन तपर्यव होते हैं। उपयोग-ज्ञानादि बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय में पा च और चौरेन्द्रिय में ६ होते हैं।

तिर्यंच प चेन्द्रिय और मनुष्य का कथन भी पृथ्वीकाय के समान करना कि तु इन दोनों में ३पल्योपम की उम्र के युगलिये होने से स्थिति में अस ख्य विभिन्नताएँ हो जाती है, अतः स्थिति की अपेक्षा तिट्ठाण की जगह चौठाणवड़िया कहना। उपयोग भी तिर्यंच में ९ और मनुष्य में १० की अपेक्षा छट्ठाणवड़िया फर्क होता है। मनुष्य में केवलज्ञान केवल दर्शन **दो उपयोग** की अपेक्षा मात्र तुल्य ही कहना। क्यों कि इन दोनों उपयोग में किसी के भिन्नता नहीं होती है। शेष सर्व वर्णन तिर्यंच प चेन्द्रिय और मनुष्य का पृथ्वीकाय के समान समझना।

इस प्रकार पृथ्वी आदि १० ही औदारिक द ड़कों के द्रव्य, प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, वर्णादि और ज्ञानादि की अपेक्षा कुल मिलाकर अन तपर्यव-पज्जवे होते हैं।

इस प्रकार २४ द ड़क के जीवों का समुच्चय रूप से अवगाहनादि की अपेक्षा अन त पज्जवों का कथन विस्तार से किया गया है, स क्षेप में कोष्ठक से भी जाना जा सकता है, यथा-

२४ द ड़क के जीवों के पज्जवे-पर्यव-[द्रव्य और प्रदेश से सभी समान होते हैं, अवगाहनादि इस प्रकार है-]

जीव	अवगाहना से	स्थिति से	वर्णादि से	ज्ञानादि से
नारकी भवनपति व्य तर	तुल्य अथवा चौठाणवड़िया	तुल्य अथवा चौठाणवड़िया	छट्ठाणवड़िया	९ उपयोग में छट्ठाणवड़िया
ज्योतिषी वैमानिक	तुल्य अथवा चौठाणवड़िया	तुल्य अथवा तिट्ठाणवड़िया	छट्ठाणवड़िया	९ उपयोग में छट्ठाणवड़िया
पा च स्थावर	तुल्य अथवा चौठाणवड़िया	तुल्य अथवा तिट्ठाणवड़िया	छट्ठाणवड़िया	३ उपयोग में छट्ठाणवड़िया
तीन विकले०	तुल्य अथवा चौठाणवड़िया	तुल्य अथवा तिट्ठाणवड़िया	छट्ठाणवड़िया	५/६ उपयोग में छट्ठाणवड़िया
तिर्यंच प चेन्द्रिय	तुल्य अथवा चौठाणवड़िया	तुल्य अथवा चौठाणवड़िया	छट्ठाणवड़िया	९ उपयोग में छट्ठाणवड़िया
मनुष्य	तुल्य अथवा चौठाणवड़िया	तुल्य अथवा चौठाणवड़िया	छट्ठाणवड़िया	१० उपयोग में छट्ठाणवड़िया २ उपयोग-तुल्य

प्रश्न-५ : जघन्य, उत्कृष्ट एव मध्यम अवगाहना स्थिति आदि वाले विशिष्ट नैरयिक आदि २४ द ड़क के अन तपर्यव किस प्रकार होते हैं ?

उत्तर- ये जघन्य आदि ३-३ बोल अवगाहना से लेकर २० वर्ण और ९ उपयोग सभी के होने से ३+३+६०(२०×३)+२७(९×३)=९३ बोलों की पृच्छा नरक स ब धी बनती है। जिसमें जिस बोल की पृच्छा है उसके खुद के जघन्य, उत्कृष्ट में तुल्य और मध्यम में चौट्ठाणवड़िया कहना, बाकी सभी के तीन-तीन बोलों में समुच्चय नारकी के पूर्व प्रश्न में(चार्ट में)बताये अनुसार चौठाण, तिट्ठाण, छट्ठाणवड़िया आदि कहना। जिसमें मात्र एक विशेष फर्क है कि **उत्कृष्ट अवगाहना** के बोल में स्थिति चौठाणवड़िया की जगह दुट्ठाणवड़िया कहना। अर्थात् उत्कृष्ट ५०० धनुष की अवगाहना वाले नैरयिकों के स्थिति में दो प्रकार की भिन्नता होती है, यथा- अस ख्यातवें भाग हीनाधिक और स ख्यातवें भाग हीनाधिक। शेष स ख्यातगुण हीनाधिक और अस ख्यगुण हीनाधिक ये दो नहीं होते हैं। क्यों कि उत्कृष्ट ५०० धनुष की अवगाहना वाले नैरयिकों में जघन्य २२ सागरोपम उत्कृष्ट ३३ सागरोपम तक की ही स्थितियाँ हो सकती है जिनमें(२२ और ३३ में)दुगुणा तिगुणा

फर्क भी नहीं हो सकता। अतः स ख्यातगुणा और अस ख्यातगुणा हीनाधिक नहीं बनेगा। इसलिये चौठाणवड़िया फर्क नहीं होकर दुट्ठाणवड़िया होगा। इस प्रकार सब पर्यायों की अपेक्षा कुल मिलाकर अन तगुणा फर्क पर्यायों में हो जाता है। अतः इन जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारकी के भी अन त-अन त पर्याये हैं।

इसी तरह जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिक की भी अन त पर्याय समझनी चाहिये। स्वय के जघन्य उत्कृष्ट बोल में तुल्य होते है और मध्यम में स्थिति चौठाणवड़िया होती है।

इसी प्रकार जघन्य एव उत्कृष्टगुण काला नैरयिक में द्रव्य-प्रदेश तुल्य, अवगाहना, स्थिति चौठाणवड़िया वर्णादि १९ बोल ९ उपयोग छट्ठाण वड़िया, काले वर्ण की अपेक्षा तुल्य होता है। मध्यमगुण काला में वर्णादि २० ही बोल में छट्ठाणवड़िया है।

इसी प्रकार जघन्य उत्कृष्ट मध्यम मतिज्ञानी आदि समझना। विशेष यह है कि ज्ञान अज्ञान में उपयोग ६ कहना, दर्शन में ९ उपयोग कहना है। जघन्य उत्कृष्ट में खुद को छोड़कर शेष को छट्ठाणवड़िया कहना, मध्यम में खुद सहित छट्ठाणवड़िया कहना।

इसी प्रकार २४ ही द ड़क में कहना। शेष विवरण स क्षेप में कोष्ठक से देखें, जिनका खुलासा पहले प्रश्न-२ में कर दिया है उसे ध्यान में रखेंगे।

आगे दिये जाने वाले चार्ट स ब धी सूचनाएँ :- जीव के पर्यव, द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा सर्वत्र तुल्य ही होते हैं। जिस वर्ण आदि की पृच्छा होती उसके जघन्य और उत्कृष्ट में खुद की अपेक्षा तुल्य होते हैं, शेष १९ बोलों की अपेक्षा छट्ठाणवड़िया होते हैं। जघन्य-उत्कृष्ट ज्ञान, अज्ञान, दर्शन में भी जिसकी पृच्छा है उसके स्वय की अपेक्षा तुल्य होता है, शेष ज्ञान, अज्ञान और दर्शन जो भी जहाँ पाये जाते हैं उनमें छट्ठाणवड़िया होता है। मध्यम में स्वय का भी छट्ठाणवड़िया होता है। चार्ट में १.द्रव्य २.प्रदेश, वर्णादि एव ज्ञानादि में तुल्य का कोलम नहीं है उसे स्वतः समझ लेवें।

नारकी जीवों के पर्यव :-

नारकी	अवगाहना से	स्थिति से	वर्णादि से छट्ठाण व.	ज्ञानादि से छट्ठाण व.
जघन्य अवगाहना	तुल्य	चौठाण वड़िया	२० बोल	९ उपयोग
उत्कृष्ट अवगाहना	तुल्य	दुठाणवड़िया[१]	२० बोल	९ उपयोग
मध्यम अवगाहना	चौठाणवड़िया	चौठाणवड़िया	२० बोल	९ उपयोग
जघन्य स्थिति	चौठाणवड़िया	तुल्य	२० बोल	९ उपयोग
उत्कृष्ट स्थिति	चौठाणवड़िया	तुल्य	२० बोल	९ उपयोग
मध्यम स्थिति	चौठाणवड़िया	चौठाणवड़िया	२० बोल	९ उपयोग
जघन्यगुण काला	चौठाणवड़िया	चौठाणवड़िया	१९ बोल	९ उपयोग
उत्कृष्टगुण काला	चौठाणवड़िया	चौठाणवड़िया	१९ बोल	९ उपयोग
मध्यमगुण काला	चौठाणवड़िया	चौठाणवड़िया	२० बोल	९ उपयोग
जघन्य मतिज्ञानी	चौठाणवड़िया	चौठाणवड़िया	२० बोल	२ ज्ञान ३ दर्शन
उत्कृष्ट मतिज्ञानी	चौठाणवड़िया	चौठाणवड़िया	२० बोल	२ ज्ञान ३ दर्शन
मध्यम मतिज्ञानी	चौठाणवड़िया	चौठाणवड़िया	२० बोल	३ ज्ञान ३ दर्शन
जघन्य चक्षुदर्शनी	चौठाणवड़िया	चौठाणवड़िया	२० बोल	८ उपयोग
उत्कृष्ट चक्षुदर्शनी	चौठाणवड़िया	चौठाणवड़िया	२० बोल	८ उपयोग
मध्यम चक्षुदर्शनी	चौठाणवड़िया	चौठाणवड़िया	२० बोल	९ उपयोग

नोट :- *काला वर्ण के समान शेष वर्णादि का वर्णन है। मतिज्ञान के समान शेष ज्ञान, अज्ञान का वर्णन है। अज्ञान में ३ ज्ञान नहीं होते हैं। चक्षुदर्शन के समान शेष दर्शन भी है। नारकी के समान ही १० भवनपति का स पूर्ण वर्णन है किन्तु उत्कृष्ट अवगाहना में नारकी के स्थिति दुट्ठाणवड़िया है, भवनपति में चौठाणवड़िया है।*

पृथ्वी आदि पा च स्थावर के पर्यव :-

पृथ्वीकायादि ५	अवगाहना से	स्थिति से	वर्णादि से छट्ठाण व.	ज्ञानादि से छट्ठाण व.
जघन्य अवगाहना	तुल्य	तिट्ठाणवड़िया	२० बोल	२ अज्ञान १दर्शन
उत्कृष्ट अवगाहना	तुल्य	तिट्ठाणवड़िया	२० बोल	२ अज्ञान १दर्शन
मध्यम अवगाहना	चौठाणवड़िया	तिट्ठाणवड़िया	२० बोल	२ अज्ञान १दर्शन

पृथ्वीकायादि ५	अवगाहना से	स्थिति से	वर्णादि से छट्ठाण व.	ज्ञानादि से छट्ठाण व.
जघन्य स्थिति	चौठाणवड़िया	तुल्य	२० बोल	२अज्ञान १दर्शन
उत्कृष्ट स्थिति	चौठाणवड़िया	तुल्य	२० बोल	२अज्ञान १दर्शन
मध्यम स्थिति	चौठाणवड़िया	तिट्ठाणवड़िया	२० बोल	२अज्ञान १दर्शन
जघन्यगुण काला	चौठाणवड़िया	तिट्ठाणवड़िया	१९ बोल	२अज्ञान १दर्शन
उत्कृष्टगुण काला	चौठाणवड़िया	तिट्ठाणवड़िया	१९ बोल	२अज्ञान १दर्शन
मध्यमगुण काला	चौठाणवड़िया	तिट्ठाणवड़िया	२० बोल	२अज्ञान १दर्शन
जघन्यमति अज्ञानी	चौठाणवड़िया	तिट्ठाणवड़िया	२० बोल	१ ज्ञान १दर्शन
उत्कृष्टमति अज्ञानी	चौठाणवड़िया	तिट्ठाणवड़िया	२० बोल	१अज्ञान १दर्शन
मध्यममति अज्ञानी	चौठाणवड़िया	तिट्ठाणवड़िया	२० बोल	२अज्ञान १दर्शन

बेइन्द्रिय जीवों के पर्यव :-

बेइन्द्रिय	अवगाहना से	स्थिति से	वर्णादि से छट्ठाण व०	ज्ञानादि से छट्ठाण व०
जघन्य अवगाहना	तुल्य	तिट्ठाण व०	२० बोल	५ उपयोग
उत्कृष्ट अवगाहना	तुल्य	तिट्ठाण व०	२० बोल	२अज्ञान १दर्शन[२]
मध्यम अवगाहना	चौठाणवड़िया	तिट्ठाण व०	२० बोल	५ उपयोग
जधन्य स्थिति	चौठाणवड़िया	तुल्य	२० बोल	२ अज्ञान १दर्शन[३]
उत्कृष्ट स्थिति	चौठाणवड़िया	तुल्य	२० बोल	५ उपयोग
मध्यम स्थिति	चौठाणवड़िया	तिट्ठाण व०	२० बोल	५ उपयोग
जघन्यगुण काला	चौठाणवड़िया	तिट्ठाण व०	१९ बोल	५ उपयोग
उत्कृष्टगुण काला	चौठाणवड़िया	तिट्ठाण व०	१९ बोल	५ उपयोग
मध्यमगुण काला	चौठाणवड़िया	तिट्ठाण व०	२० बोल	५ उपयोग
जघन्य मतिज्ञानी	चौठाणवड़िया	तिट्ठाण व०	२० बोल	१ ज्ञान १ दर्शन
उत्कृष्ट मतिज्ञानी	चौठाणवड़िया	तिट्ठाण व०	२० बोल	१ ज्ञान १ दर्शन
मध्यम मतिज्ञानी	चौठाणवड़िया	तिट्ठाण व०	२० बोल	३ उपयोग
जघन्य अचक्षुदर्शनी	चौठाणवड़िया	तिट्ठाण व०	२० बोल	२ ज्ञान २ अज्ञान
उत्कृष्ट अचक्षुदर्शनी	चौठाणवड़िया	तिट्ठाण व०	२० बोल	२ ज्ञान २ अज्ञान
मध्यम अचक्षुदर्शनी	चौठाणवड़िया	तिट्ठाण व०	२० बोल	५ उपयोग

इसी तरह तेइन्द्रिय और चौरेन्द्रिय का वर्णन है कि तु चौरेन्द्रिय में चक्षुदर्शन अधिक होता है। अतः ५ उपयोग के स्थान पर ६ उपयोग समझना एव २, ३, ४ उपयोग के स्थान पर क्रमशः ३, ४, ५ उपयोग समझना।

तिर्यंच प चेन्द्रिय के पर्यव :–

तिर्यंच प चेन्द्रिय	अवगाहना से	स्थिति से	वर्णादि से छट्ठाण व०	ज्ञानादि से छट्ठाण व०
जघन्य अवगाहना	तुल्य	तिट्ठाण वड़िया	२० बोल	२ ज्ञान २ अज्ञान २ दर्शन[६]
उत्कृष्ट अवगाहना	तुल्य	तिट्ठाण वड़िया	२० बोल	३ ज्ञान ३ अज्ञान ३ दर्शन
मध्यम अवगाहना	चौ॰ व॰	चौठाण वड़िया	२० बोल	३ ज्ञान ३ अज्ञान ३ दर्शन
जघन्य स्थिति	चौ॰ व॰	तुल्य	२० बोल	२ अज्ञान २ दर्शन[७]
उत्कृष्ट स्थिति	चौ॰ व॰	तुल्य	२० बोल	२ ज्ञान २ अज्ञान २ दर्शन[८]
मध्यम स्थिति	चौ॰ व॰	चौठाण व०	२० बोल	९ उपयोग
जघन्य गुण काला	चौ॰ व॰	चौठाण व०	१९ बोल	९ उपयोग
उत्कृष्ट गुण काला	चौ॰ व॰	चौठाण व०	१९ बोल	९ उपयोग
मध्यम गुण काला	चौ॰ व॰	चौठाण व०	२० बोल	९ उपयोग
जघन्य मतिज्ञानी	चौ॰ व॰	चौठाण व०	२० बोल	१ ज्ञान २ दर्शन[९]
उत्कृष्ट मतिज्ञानी	चौ॰ व॰	तिट्ठाण व०[४]	२० बोल	२ ज्ञान ३ दर्शन
मध्यम मतिज्ञानी	चौ॰ व॰	चौठाण व०	२० बोल	३ ज्ञान ३ दर्शन
जघन्य अवधिज्ञानी	चौ॰ व॰	तिट्ठाण व०[५]	२० बोल	२ ज्ञान ३ दर्शन
उत्कृष्ट अवधिज्ञानी	चौ॰ व॰	तिट्ठाण व०	२० बोल	२ ज्ञान ३ दर्शन
मध्यम अवधिज्ञानी	चौ॰ व॰	तिट्ठाण व०	२० बोल	३ ज्ञान ३ दर्शन

नोट :– मतिज्ञान के समान श्रुतज्ञान है । तीन ज्ञान के समान तीन अज्ञान का वर्णन है। चक्षु अचक्षुदर्शन मतिज्ञान के समान है। अवधिदर्शन–अवधिज्ञान के समान है किन्तु उपयोग ५ और ६ के स्थान पर ८ और ९ है।

मनुष्य के पर्यव :– [चार्ट में उप०=उपयोग]

मनुष्य	अवगाहना से	स्थिति से	वर्णादि से छट्ठाण व०	ज्ञानादि से छट्ठाण व०
जधन्य अवगाहना	तुल्य	तिट्ठाण वड़िया[१०]	२० बोल	३ ज्ञान २ अज्ञान ३ दर्शन[१४]
उत्कृष्ट अवगाहना	तुल्य	एकठाण वड़िया[११]	२० बोल	२ ज्ञान २ अज्ञान २ दर्शन[१५]
मध्यम अवगाहना	चौठाण व०	चौठाण व०	२० बोल	१० उप०/२ तुल्य
जघन्य स्थिति	चौठाण व०	तुल्य	२० बोल	२ अज्ञान २ दर्शन[१६]
उत्कृष्ट स्थिति	चौठाण व०	तुल्य	२० बोल	२ ज्ञान २ अज्ञान २ दर्शन[१७]
मध्यम स्थिति	चौठाण व०	चौठाण व०	२० बोल	१० उप०/२ तुल्य
जघन्यगुण काला	चौठाण व०	चौठाण व०	१९ बोल	१० उप०/२ तुल्य
उत्कृष्टगुण काला	चौठाण व०	चौठाण व०	१९ बोल	१० उप०/२ तुल्य
मध्यमगुण काला	चौठाण व०	चौठाण व०	२० बोल	१० उप०/२ तुल्य
जघन्य मतिज्ञानी	चौठाण व०	चौठाण व०	२० बोल	१ ज्ञान २ दर्शन[१८]
उत्कृष्ट मतिज्ञानी	चौठाण व०	तिट्ठाण व०[१२]	२० बोल	३ ज्ञान ३ दर्शन
मध्यम मतिज्ञानी	चौठाण व०	चौठाण व०	२० बोल	४ ज्ञान ३ दर्शन
जघन्य अवधिज्ञानी	तिट्ठाण व०	ति० व०[१३]	२० बोल	३ ज्ञान ३ दर्शन
उत्कृष्ट अवधिज्ञानी	ति० व०	तिट्ठाण व०	२० बोल	३ ज्ञान ३ दर्शन
मध्यम अवधिज्ञानी	चौठाण व०	तिट्ठाण व०	२० बोल	४ ज्ञान ३ दर्शन
जघन्य विभ गज्ञानी	ति० व०[१९]	तिट्ठाण व०	२० बोल	२ अज्ञान ३ दर्शन
उत्कृष्ट विभ गज्ञानी	ति० व०	तिट्ठाण व०	२० बोल	२ अज्ञान ३ दर्शन
मध्यम विभ गज्ञानी	ति० व०	तिट्ठाण व०	२० बोल	३ अज्ञान ३ दर्शन
केवल ज्ञान	चौ० व०[२०]	तिट्ठाण व०	२० बोल	दो से तुल्य
जघन्य चक्षुदर्शन	चौ० व०	ति०व०[२१]	२० बोल	२ ज्ञान २ अज्ञान १ दर्शन
उत्कृष्ट चक्षुदर्शन	चौ० व०	तिट्ठाण वड़िया	२० बोल	४ ज्ञान ३ अज्ञान २ दर्शन
मध्यम चक्षुदर्शन	चौ० व०	चौठाण वड़िया	२० बोल	४ ज्ञान ३ अज्ञान ३ दर्शन

मनुष्य	अवगाहना से	स्थिति से	वर्णादि से छट्ठाण व॰	ज्ञानादि से छट्ठाण व॰
जघन्य अवधिदर्शन	चौ॰ व॰	तिट्ठाण वड़िया	२० बोल	४ ज्ञान ३ अज्ञान २ दर्शन
उत्कृष्ट अवधिदर्शन	चौ॰ व॰	तिट्ठाण वड़िया	२० बोल	४ ज्ञान ३ अज्ञान २ दर्शन
मध्यम अवधिदर्शन	चौ॰ व॰	तिट्ठाण व॰	२० बोल	१० उपयोग

नोट :- मतिज्ञान के समान श्रुतज्ञान का वर्णन है, दोनों ज्ञान के समान दोनों अज्ञान का वर्णन है। अवधिज्ञान के समान मनपर्यवज्ञान का वर्णन है, किन्तु अवगाहना, स्थिति दोनों तिट्ठाणवड़िया है चक्षुदर्शन के समान अचक्षुदर्शन का वर्णन है। केवलज्ञान के समान केवलदर्शन का वर्णन है। वाणव्य तर का भवनपति के समान वर्णन है। ज्योतिषी एव वैमानिक का भी इसी तरह वर्णन है किन्तु स्थिति चौठाणवड़िया के स्थान पर तिट्ठाणवड़िया है।

टिप्पण-(१) उत्कृष्ट अवगाहना सातवीं नरक में ५०० धनुष की है वहाँ स्थिति जघन्य २२ सागर उत्कृष्ट तेंतीस सागर है जो कि आपस में दुगुणा भी नहीं है। अतः अस ख्यातवें भाग और स ख्यातवें भाग ये दो स्थान के फर्क होने से दुट्ठाणवड़िया है। स ख्यातगुणा आदि नहीं होते हैं।

(२) उत्कृष्ट अवगाहना वाला बेइन्द्रिय मिथ्यादृष्टि ही होता है। सास्वादन सम्यक्त्व वहाँ केवल अपर्याप्त में अ गुल के अस ख्यातवें भाग की जघन्य एव मध्यम अवगाहना में ही होती है, अतः उत्कृष्ट में ज्ञान नहीं है।

(३) जघन्य स्थिति बेइन्द्रिय में अपर्याप्त मरने वाले की होती है। सास्वादन समकित लेकर आने वाला पर्याप्त होकर ही मरता है। अतः जघन्य स्थिति में ज्ञान नहीं है।

(४) उत्कृष्ट मतिज्ञान तिर्यंच युगलिये में नहीं होता है। अतः स्थिति तिट्ठाणवड़िया है। क्यों कि मनुष्य तिर्यंच में स्थिति चौठाणवड़िया युगलियों के होने पर ही होती है।

(५) इसी कारण अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, विभगज्ञानी, मनुष्य तिर्यंच में स्थिति तिट्ठाणवड़िया ही होती है।

(६) जघन्य अवगाहना का तिर्यंच अपर्याप्त होता है और अपर्याप्त तिर्यंच में अवधिज्ञान, विभ गज्ञान और अवधिदर्शन नहीं होते।

(७) जघन्य स्थिति का तिर्यंच भी अपर्याप्त मरने वाला होता है उसमें समकित और ज्ञान नहीं होते हैं।

(८) उत्कृष्ट स्थिति तिर्यंच में युगलिये की होती है उसमें भी अवधि विभ ग नहीं होते।

(९) जघन्य मतिज्ञान में भी अवधि-विभ ग नहीं होते हैं।

(१०) तिर्यंच मनुष्य में जघन्य अवगाहना युगलिये में नहीं होती है। अतः स्थिति तिट्ठाणवड़िया ही होती है।

(११) उत्कृष्ट अवगाहना का मनुष्य युगलिया ही होता है। युगलियों में आपस में उम्र(स्थिति)का अ तर अत्यल्प अस ख्यातवें भाग मात्र होता है अतः स्थिति एकठाणवड़िया है।

(१२-१३) उत्कृष्ट मतिज्ञान भी युगलिये में नहीं होता है। अवधिज्ञान भी युगलिया में नही होता। अतः दोनों में स्थिति तिट्ठाणवड़िया ही हो सकती है।

(१४) मनुष्य परभव से विभगज्ञान नहीं लाता है। अतः जघन्य अवगाहना में अज्ञान दो ही होते हैं।

(१५) उत्कृष्ट अवगाहना मनुष्य में युगलिये की ही होती है। अतः अवधि-विभ ग नहीं है।

(१६) जघन्य स्थिति मनुष्य में अपर्याप्त मरने वाले की है उसमें समकित और ज्ञान नहीं होते।

(१७) उत्कृष्ट स्थिति मनुष्य में युगलिये की ही होती है। अतः उसमें अवधि-विभ ग नहीं है।

(१८) जघन्य मतिज्ञानी मनुष्य में भी अवधि-विभ ग नहीं होते।

(१९) टिप्पण न॰ ४-५ देखें।

(२०) केवली समुद्घात की अपेक्षा केवलज्ञानी में अवगाहना चौठाण वड़िया होती है। अन्यथा तो सात हाथ और ५०० धनुष में तिट्ठाण वड़िया ही हो सकता है।

(२१) जघन्य चक्षुदर्शन युगलिये में नहीं हो सकता। अतः मनुष्य तिर्यंच के जघन्य चक्षुदर्शन में स्थिति तिट्ठाणवड़िया कहनी चाहिये। मूलपाठ में मतिज्ञान की भलावण होने से यह स्पष्ट नहीं किया जा सका है।

जघन्य मतिज्ञान तो युगलिये में हो सकता है क्यों कि उसका स ब ध शरीर से नहीं है किन्तु चक्षुदर्शन(आ खों) का स ब ध शरीर से है। विशाल शरीर में जघन्य चक्षुदर्शन युगलिया में मानना स गत नहीं है। भलावण में ऐसे सूक्ष्म कई तत्त्व कई जगह स्पष्ट होने से रह जाते हैं।

प्रश्न-६ : अजीव पज्जवा में परमाणु आदि की अन त पर्यायों का कथन उसकी अवगाहना आदि से किस प्रकार है ?

उत्तर- एक परमाणु दूसरे किसी भी परमाणु की अपेक्षा- (१) द्रव्य से तुल्य, एक एक होने से (२) प्रदेश से भी तुल्य (३) अवगाहना से भी तुल्य, परमाणु होने से एक आकाशप्रदेश पर ही रहेगा (४) स्थिति से चौठाण वड़िया, एक समय से लेकर सभी स्थिति होने से। इस प्रकार स्थिति के अस ख्य पर्यव होते हैं। वर्णादि से छट्ठाणवड़िया अर्थात् वर्णादि की अन तपर्याय होती है। इस प्रकार कुल मिलाकर परमाणु में अन त पर्यव-पज्जवे होते हैं। **इसी तरह** द्विप्रदेशी से अन तप्रदेशी तक सभी की कुल मिलाकर अर्थात् प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, वर्णादि की मिलाकर अन त पर्यायें होती है।

द्विप्रदेशी आदि में अवगाहना अपने प्रदेशों की स ख्या से कम हो सकती है। अतः अवगाहना में भिन्नता होती है वह कोष्ठक में दर्शाई गई है। दस प्रदेशी स्क ध भी एक आकाश प्रदेश पर रह सकता है। स ख्यात, अस ख्यात, अन तप्रदेशी स्क धों के प्रदेशों में भी खुद में स ख्याता, अस ख्याता और अन ता विकल्प हो सकते है। अतः उनके बोल में **प्रदेश से** क्रमशः स ख्यातप्रदेशी में दुट्ठाणवड़िया, अस ख्यात प्रदेशी में चौठाणवड़िया और अन तप्रदेशी स्क ध के बोल में प्रदेश से छट्ठाण वड़िया फर्क हो सकता है। इन तीनों के अवगाहना में भी स ख्यात प्रदेशी में स ख्याता विकल्प होने से दुट्ठाणवड़िया कहना और अस ख्य-अन तप्रदेशी में अस ख्याता विकल्प होने से चौठाणवड़िया कहना। अवगाहना में अन त विकल्प नहीं होते क्यों कि लोक में आकाशप्रदेश अस ख्य ही होते है, अन त आकाशप्रदेश नहीं होते। इसी प्रकार की अन्य विशेष विवरण चार्ट से जानना।

चार्टगत सूचनाएँ- द्रव्य की अपेक्षा परमाणु आदि सभी परस्पर समान(एक) होते हैं। अतः वह कोलम कोष्ठक में नहीं दिया है और अजीव में ज्ञानादि

नहीं होने से उपयोग का कोलम भी नहीं किया है तथा वर्णादि के बोल में कुछ कुछ विशेषता-भिन्नता होती है वे भी कोष्ठक में यथास्थान दी गई है। कुछ नवीन विशेषताओं को कोष्ठक के बाद टिप्पण रूप से समझाया है।

नाम	प्रदेश से	अवगाहना से	स्थिति से	वर्णादि से छट्ठाण व॰
परमाणु	तुल्य	तुल्य	चौठाण व॰	१६ बोल[१]
द्विप्रदेशी	तुल्य	१प्रदे॰हीनाधिक	चौठाण व॰	१६ बोल
तीनप्रदेशी	तुल्य	२प्रदे॰हीनाधिक	चौठाण व॰	१६ बोल
चार से दसप्रदेशी	तुल्य	३से९ हीनाधिक	चौठाण व॰	१६ बोल
स ख्यातप्रदेशी	दुट्ठाण व॰	दुट्ठाण व॰ [२]	चौठाण व॰	१६ बोल
अस ख्यातप्रदेशी	चौठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	१६ बोल
अन तप्रदेशी	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	२० बोल
१ प्रदेश अव॰पु॰	छट्ठाण व॰	तुल्य	चौठाण व॰	१६ बोल
२-१०प्रदेश अव॰पु॰	छट्ठाण व॰	तुल्य	चौठाण व॰	१६ बोल
स ख्यात प्रदे॰अव॰पु॰	छट्ठाण व॰	दुट्ठाण व॰	चौठाण व॰	१६ बोल
अस॰ प्रदे॰अव॰पु॰	छट्ठाण व॰	चौठाणव॰	चौठाण व॰	२० बोल
१समय स्थिति का पु॰	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	तुल्य २० बोल
२-१०समय का पु॰	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	तुल्य २० बोल
स ख्यात समय का पु॰	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	दुट्ठाण व॰	२० बोल
अस ॰समय का पु॰	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	२० बोल
१ गुण काला	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	१९ बोल
२ से १० गुण काला	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	१९ बोल
स ख्यातगुण काला	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	१९/१ दु॰व॰
अस ख्यातगणा काला	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	१९/१चौ॰व॰
अन तगुण काला	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	२० बोल
ज॰उ॰अव॰का २प्रदेशी[३]	तुल्य	तुल्य	चौठाण व॰	१६ बोल
ज॰म॰उ॰अव॰का ३प्रदे॰	तुल्य	तुल्य	चौठाण व॰	१६ बोल
ज॰उ॰अव॰का ४प्रदे॰	तुल्य	तुल्य	चौठाण व॰	१६ बोल
म॰अव॰ का ४ प्रदेशी	तुल्य	१प्रदे॰हीनाधिक	चौठाण व॰	१६ बोल
ज॰उ॰अव॰का १०प्रदे॰	तुल्य	तुल्य	चौठाण व॰	१६ बोल

नाम	प्रदेश से	अवगाहना से	स्थिति से	वर्णादि से छट्ठाण व॰
म॰अव॰का १०प्रदेशी	तुल्य	७प्रदे॰हीनाधिक	चौठाण व॰	१६ बोल
ज॰उ॰अव॰का स॰प्रदे॰	दुट्ठाण व॰	तुल्य	चौठाण व॰	१६ बोल
म॰अव॰का स ॰प्रदेशी	दुट्ठाण व॰	दुट्ठाण व॰	चौठाण व॰	१६ बोल
ज॰उ॰अव॰अस ॰प्रदे॰	चौठाण व॰	तुल्य	चौठाण व॰	१६ बोल
म॰अव॰अस ॰प्रदे॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	१६ बोल
ज॰अव॰का अन तप्रदे॰	छट्ठाण व॰	तुल्य	चौठाण व॰	१६ बोल
उ॰अव॰का अन तप्रदे॰	छट्ठाण व॰	तुल्य	तुल्य[९]	१६ बोल
म॰अव॰का अन तप्रदे॰	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	२० बोल
ज॰उ॰स्थि॰ का परमाणु[४]	तुल्य	तुल्य	तुल्य	१६ बोल
म॰स्थिति का परमाणु	तुल्य	तुल्य	चौठाण व॰	१६ बोल
ज॰उ॰स्थि॰का द्विप्रदे॰	तुल्य	१प्रदे॰हीनाधिक	तुल्य	१६ बोल
म॰स्थि॰का द्विप्रदे॰	तुल्य	१प्रदे॰हीनाधिक	चौठाण व॰	१६ बोल
ज॰उ॰स्थि॰का दसप्रदे॰	तुल्य	९प्रदे॰हीनाधिक	तुल्य	१६ बोल
म॰स्थितिका दसप्रदेशी	तुल्य	९प्रदे॰हीनाधिक	चौठाण व॰	१६ बोल
ज॰उ॰स्थि॰स॰प्रदे॰	दुट्ठाण व॰	दुट्ठाण व॰	तुल्य	१६ बोल
म॰स्थि॰ का स ॰ प्रदे॰	दुट्ठाण व॰	दुट्ठाण व॰	चौठाण व॰	१६ बोल
ज॰उ॰स्थि॰अस ॰ प्रदे॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	तुल्य	१६ बोल
म॰स्थि॰का अस ॰ प्रदे॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	१६ बोल
ज॰उ॰स्थि॰का अन त प्र॰	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	तुल्य	२० बोल
म॰स्थि॰का अन त प्र॰	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	२० बोल
ज॰उ॰गुण काला परमाणु[५]	तुल्य	तुल्य	चौठाण व॰	११/१
म॰गुण काला परमाणु	तुल्य	तुल्य	चौठाण व॰	१२ बोल
ज॰उ॰गुण काला द्विप्रदेशी	तुल्य	१प्रदे॰हीनाधिक	चौठाण व॰	१५ बोल
म॰ गुण काला द्विप्रदेशी	तुल्य	१प्रदे॰हीनाधिक	चौठाण व॰	१६ बोल
ज॰उ॰म॰गुण काला१०प्रदे॰	तुल्य	९प्रदे॰हीनाधिक	चौठाण व॰	१५/१६
ज॰उ॰गुण काला स ॰प्र॰	दुट्ठाण व॰	दुट्ठाण व॰	चौठाण व॰	१५/१
म॰गुण काला स ॰प्र॰	दुट्ठाण व॰	दुट्ठाण व॰	चौठाण व॰	१६ बोल
ज॰उ॰गुण काला अस ॰प्र॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	१५/१
म॰गुण काला अस ॰प्रदे॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	१६ बोल

नाम	प्रदेश से	अवगाहना से	स्थिति से	वर्णादि से छट्ठाण व॰
ज॰उ॰गुण काला अन त प्रदे॰	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	१९/१
म॰गुण काला अन त प्र॰	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	२० बोल
ज॰उ॰कर्कश अन तप्र॰	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	१९/१
म॰कर्कश अन तप्रदेशी	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	२०
ज॰उ॰म॰शीत[६] परमाणु	तुल्य	तुल्य	चौठाण व॰	१४/१५
ज॰उ॰म॰शीत द्विप्रदेशी	तुल्य	१ प्रदे॰हीनाधिक	चौठाण व॰	१५/१६
ज॰उ॰म॰शीत दस प्र॰	तुल्य	९ प्रदे॰हीनाधिक	चौठाण व॰	१५/१६
ज॰उ॰म॰शीत स ॰प्र॰	दुट्ठाण व॰	दुट्ठाण व॰	चौठाण व॰	१५/१६
ज॰उ॰म॰शीत अस ॰प्र॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	१५/१६
ज॰उ॰म॰शीत अन तप्र॰	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	१९/२०
ज॰प्रदेशी स्क ध	तुल्य	१ प्रदे॰हीनाधिक	चौठाण व॰	१६ बोल[७]
उ॰प्रदेशी स्क ध	तुल्य	चौठाण व॰	चौठाण व॰	२० बोल
मध्यम प्रदेशी स्क ध	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	२० बोल
ज॰अव॰ का पुद्गल	छट्ठाण व॰	तुल्य	चौठाण व॰	१६ बोल[८]
उ॰अव॰ का पुद्गल	छट्ठाण व॰	तुल्य	तुल्य	१६ बोल
म॰अव॰ का पुद्गल	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	२० बोल
ज॰उ॰स्थि॰ का पुद्गल	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	तुल्य	२० बोल
म॰स्थि॰ का पुद्गल	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	२० बोल
ज॰उ॰गुण काला पुद्गल	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	१९/१
म॰गुण काला पुद्गल	छट्ठाण व॰	चौठाण व॰	चौठाण व॰	२० बोल

स क्षिप्ताक्षरों की विगत : *ज॰ = जघन्य, उ॰ = उत्कृष्ट, म॰ = मध्यम, अव॰ = अवगाहना, स्थि॰ = स्थिति, अन ॰ = अन त, प्र॰ – प्रदे॰ = प्रदेशी, स॰ = स ख्यात, अस ॰ = अस ख्यात, व॰ = वड़िया, पु॰ = पुद्गल ।*

टिप्पण–(१) समुच्चय परमाणु में स्पर्श ४ होते हैं, वर्णादि १६ बोल होते हैं। किसी एक परमाणु में तो १ वर्ण, १ ग ध, १ रस, २ स्पर्श यों कुल ५ वर्णादि ही होते हैं, प्रतिपक्षी वर्णादि नहीं होते। यहाँ तुलना करने में विवक्षित सामान्य परमाणु की पृच्छा है। व्यक्तिगत अकेले परमाणु की नहीं है अर्थात् जीव अजीव पर्यव के इस प्रकरण में सर्वत्र

विवक्षित सामान्य की पृच्छा है, व्यक्तिगत १-२ की पृच्छा नहीं है। इसीलिये समुच्चय परमाणु में वर्णादि १६ कहे है।

(२) स ख्यातप्रदेशी के दुट्ठाणवड़िया में और जीवपर्यव में कहे दुट्ठाणवड़िया में भिन्नता है। जीवपर्यव में अस ख्यातवें भाग और स ख्यातवें भाग ये दो फर्क है और यहाँ अजीव पर्यव में स ख्यातवें भाग और स ख्यातगुण ये दो फर्क है। इसी अपेक्षा से स ख्यातप्रदेशी(११ प्रदेश से लाखों, करोड़ों प्रदेशी) में प्रदेश और अवगाहना दुट्ठाणवड़िया होते है। एकठाणवड़िया और तिट्ठाणवड़िया अजीव पज्जवा में कहीं भी नहीं बनता हैं।

(३) जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना के दो प्रदेशी की ही पृच्छा है, मध्यम अवगाहना की पृच्छा नहीं है। क्यों कि दो प्रदेशी में मध्यम अवगाहना नहीं बनती है। वहीं परमाणु की तो पृच्छा ही नहीं की है क्यों कि जघन्य मध्यम उत्कृष्ट की पृच्छा में उसका विषय नहीं है, यथा-जो एक भाई है उसके लिये छोटे बड़े भाई या छोटे बड़े पुत्र की पृच्छा का विषय नहीं होता है।

(४) जघन्य स्थिति के परमाणु में भी वर्णादि १६ ही स भव है। मूलपाठ में स्पर्श दो ही कहे हैं कि तु वह लिपिदोष, दृष्टिदोष स भव है।

(५) जघन्य काला गुण के परमाणुओं की पृच्छा होने से शेष प्रतिपक्षी चार वर्ण नहीं है और जघन्य काले की पृच्छा होने से काले वर्ण से सभी तुल्य है। अतः वर्णादि १६ में से ५ वर्ण कम होने पर ११ वर्णादि से छट्ठाणवड़िया है। इसी तरह उत्कृष्ट गुण काले में ११ वर्णादि से छट्ठाणवड़िया है किन्तु मध्यम में काले वर्ण को मिलाने से १२ वर्णादि से छट्ठाणवड़िया है।

(६) शीत स्पर्श के परमाणुओं में तीन स्पर्श होते हैं उष्ण नहीं होता है। अतः वर्णादि १५ होते हैं जघन्य उत्कृष्ट में स्वय की अपेक्षा तुल्य होने से १४ वर्णादि छट्ठाणवड़िया और मध्यम में वर्णादि १५ छट्ठाणवड़िया कहे हैं।

(७) जघन्य प्रदेशी स्क ध से द्विप्रदेशी स्क ध ही विवक्षित है, अतः वर्णादि १६ है।

(८) जघन्य अवगाहना के पुद्गल में अन तप्रदेशी भी हो सकते है,

फिर भी वर्णादि १६ ही हो सकते है अर्थात् वे चौफर्सी ही होते है, अठफर्सी नहीं होते।

(९) उत्कृष्ट अवगाहना के पुद्गल में अचित्त महास्क ध अथवा केवली समुद्घात गत शरीर ग्रहित है । जिसकी स्थिति ४-४ समय की होती है(वास्तव में एक समय की होती है)। अतः स्थिति तुल्य है।

❋ पद-६ : व्युक्रा ति ❋

प्रश्न-१ : इस पद में विषयों का किस क्रम से वर्णन किया है ?

उत्तर- व्युक्रा ति का अर्थ है गमनागमन, जन्म मरण। इस पद में चार गति और चौवीस द ड़क के जीवों के जन्म-मरण का विरहकाल, गति-आगति, आयुष्यब ध का समय, जन्ममरण की एक समय की स ख्या, ६ प्रकार का आयुष्य ब ध और आयु ब धने के आकर्ष इत्यादि विषयों का व्युक्रा ति शब्द में समावेश करके ये विषय पूर्ण किये गये है।

प्रश्न-२ : जीवों का उपजने मरने का विरहकाल तथा स ख्या का कथन किस प्रकार होता है ?

उत्तर- विरह=आ तरा, विच्छेद, उपजने मरने का विच्छेदकाल। प्रस्तुत में ४ गति, चौवीस द ड़क के जीवों के (१) उपजने का विरह=अ तरकाल और (२) मरने का विरह=अ तरकाल दर्शाया गया है। यह विरह न्यूनतम एक समय सभी का समान होता है और अधिकतम अनेक तरह का (भिन्न-भिन्न) होता है। उपजने का उत्कृष्ट विरह जितना होता है उतना ही मरने का उत्कृष्ट विरह होता है। अतः एक का कथन करने से दोनों का समझा जा सकता है। इसमें द ड़क क्रम से वर्णन होते हुए भी ७ नरक का, सन्नी-असन्नि मनुष्य तिर्यंच दोनों का एव वैमानिक के भेदों का अलग अलग विरह दर्शाया गया है।

एक समय में उपजने और मरने की स ख्या भी समान होती है तथा वह स ख्या जघन्य उत्कृष्ट दोनों दर्शाई गई है जिसमें जघन्य प्रायः १,२,३ स ख्या कही है और उत्कृष्ट में स ख्याता, अस ख्याता और अन ता भी होते हैं।

यथा-(१) सन्नी मनुष्य में उत्कृष्ट स ख्याता (२) नवमें देवलोक

से सर्वार्थसिद्ध तक में उत्कृष्ट स ख्याता (३) वनस्पति में समय-समय अन ता (४) चार स्थावर में प्रति समय अस ख्याता (५) शेष सभी में उत्कृष्ट अस ख्याता; जघन्य १-२-३ एक समय में उत्पन्न होते एव मरते हैं।

पृथ्वी आदि पा च स्थावर में जन्मने या मरने स ब धी विरह नहीं पड़ता है अर्थात् वहाँ निर तर जीवों का जन्म-मरण दोनों चालू ही रहता है। यहाँ कहा गया उत्कृष्ट विरहकाल कभीक होता है जघन्य मध्यम विरहकाल सा तर होता रहता है।

समुच्चय चार गति में से प्रत्येक गति में विरहकाल उत्कृष्ट १२ मुहूर्त का होता है अर्थात् अन्य गति से आकर उत्पन्न होने का यह विरहकाल है। तिर्यंच गति में अन्य तीन गति से आकर उत्पन्न होने का विरहकाल १२ मुहूर्त हो सकता है कि तु तिर्यंच गति के खुद पृथ्वी आदि जीव खुद में समय-समय निर तर उत्पन्न होते रहते हैं।

विरह एव उत्पात स ख्या :-

क्र म	नाम	विरह		उत्पात स ख्या	
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
१	पहली नरक	१ समय	२४ मुहूर्त	१-२-३	अस ख्यात
२	दूसरी नरक	१ समय	७ दिवस	१-२-३	अस ख्यात
३	तीसरी नरक	१ समय	१५ दिवस	१-२-३	अस ख्यात
४	चौथी नरक	१ समय	१ महिना	१-२-३	अस ख्यात
५	पा चवीं नरक	१ समय	२ महिना	१-२-३	अस ख्यात
६	छट्ठी नरक	१ समय	४ महिना	१-२-३	अस ख्यात
७	सातवीं नरक	१ समय	६ महिना	१-२-३	अस ख्यात
८	भवन॰से २ देवलोक	१ समय	२४ मुहूर्त	१-२-३	अस ख्यात
९	तीसरा देवलोक	१ समय	९ दिवस २० मु॰	१-२-३	अस ख्यात
१०	चौथा देवलोक	१ समय	१२ दिवस १० मु॰	१-२-३	अस ख्यात
११	पा चवाँ देवलोक	१ समय	२२॥ दिवस	१-२-३	अस ख्यात
१२	छट्ठा देवलोक	१ समय	४५ दिवस	१-२-३	अस ख्यात
१३	सातवाँ देवलोक	१ समय	८० दिवस	१-२-३	अस ख्यात
१४	आठवाँ देवलोक	१ समय	१०० दिवस	१-२-३	अस ख्यात
१५	९-१० देवलोक	१ समय	स ख्याता मास	१-२-३	स ख्याता

क्र म	नाम	विरह		उत्पात स ख्या	
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
१६	११-१२ देवलोक	१ समय	स ख्याता वर्ष	१-२-३	स ख्याता
१७	प्रथम त्रिक ग्रैवेयक	१ समय	स॰ सो वर्ष	१-२-३	स ख्याता
१८	दूसरी त्रिक ग्रैवेयक	१ समय	स॰ हजार वर्ष	१-२-३	स ख्याता
१९	तीसरी त्रिक ग्रैवेयक	१ समय	स॰ लाख वर्ष	१-२-३	स ख्याता
२०	४ अनुत्तर विमान	१ समय	अस ख्यात काल	१-२-३	स ख्याता
२१	सर्वार्थसिद्ध	१ समय	पल्य का स ॰भाग	१-२-३	स ख्याता
२२	सिद्ध	१ समय	६ महिना	१-२-३	१०८
२३	चार स्थावर	विरह नहीं	विरह नहीं	निर तर अस ॰	निर तर अस ॰
२४	वनस्पति	विरह नहीं	विरह नहीं	सदा अन त	सदा अन त
२५	तीन विकलेन्द्रिय	१ समय	अ तर्मुहूर्त	१-२-३	अस ख्यात
२६	असन्नि तिर्यंच प चे॰	१ समय	अ तर्मुहूर्त	१-२-३	अस ख्यात
२७	सन्नी तिर्यंच प चे॰	१ समय	१२ मुहूर्त	१-२-३	अस ख्यात
२८	स मूर्च्छिम मनुष्य	१ समय	२४ मुहूर्त	१-२-३	अस ख्यात
२९	स ज्ञी मनुष्य	१ समय	१२ मुहूर्त	१-२-३	स ख्यात

[***स क्षिप्ताक्षर परिज्ञान :*** *भवन॰ = भवनपति, मु॰ = मुर्हूर्त, अस ॰= अस ख्यात, स॰ = स ख्यात, भा॰ = भाग।*]

विशेष :- चार स्थावर में ५ स्थावर की अपेक्षा प्रत्येक समय में बिना विरह के निर तर अस ख्याता उत्पन्न होते हैं, त्रस की अपेक्षा जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट अस ख्याता है। अतः कुल मिलाकर प्रति समय अस ख्याता उत्पन्न होते हैं। वनस्पति में वनस्पति की अपेक्षा प्रति समय बिना विरह के अन ता उत्पन्न होते हैं, चार स्थावर से प्रति समय में अस ख्याता उपजे और त्रसकाय से जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट अस ख्याता उपजे। सब मिलाकर उत्कृष्ट अन त उपजे मरे।

प्रश्न-३ : जीवों की गतागत यहाँ किस प्रकार दर्शाई है ?

उत्तर- थोकड़ों में २४ द ड़क की तथा तीर्थंकर आदि अनेक बोलों की गतागत जीव के ५६३ भेद के आधार से कही जाती है। प्रस्तुत शास्त्र में २४ द ड़क में जीवों के ११० भेदों की अपेक्षा गतागत दर्शाई है। वास्तव में यहाँ शास्त्र में जीवों के भेदों का कथन स कलन करके गति-आगति बताई है कि तु कुल जीवों के भेद की स ख्या गिनती नहीं कही है। वह

तो गणित ज्ञान में सुविधा के लिये थोकड़ों में पूर्वाचार्यो ने आगमाधार से गिनती कर स ख्या स्पष्ट कही है। यह कुल स ख्या ११० हो जाती है। प्रस्तुत में वह गिनती इस प्रकार है-

(१) नारकी के ७ पर्याप्त

(२) तिर्यंच के ४८

पा च स्थावर के सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त	२० भेद
तीन विकलेन्द्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त	६ भेद
पा च तिर्यंच प चेन्द्रिय के सन्नी-असन्नि पर्या.अपर्याप्त	२० भेद
स्थलचर युगलिया + खेचर युगलिया तिर्यंच	२ भेद

कुल ४८ भेद

(३) मनुष्य के-६

समुच्छिर्म मनुष्य+कर्मभूमि का पर्याप्त और अपर्याप्त	३ भेद
अस ख्यात वर्ष का कर्मभूमि, अकर्मभूमि, अ तरद्वीप	३ भेद

कुल ६ भेद

(४) देव के-४९ :- १० भवनपति, ८ व्य तर, ५ ज्योतिषी, १२ देवलोक, ९ ग्रैवेयक, ५ अणुत्तर विमान ये ४९ भेद। **यों चार गति के कुल-७+४८+६+४९=११० भेद।**

गतागत : ११० जीव- भेदों की अपेक्षा से :-

नाम	आगति		गति	
	स ख्या	विवरण	स ख्या	विवरण
पहली नरक	११	५ सन्नी, ५ असन्नि १ मनुष्य	६	५ सन्नी तिर्यंच १ मनुष्य
दूसरी नरक	६	५ सन्नी, १ मनुष्य	६	आगत के समान
तीसरी नरक	५	भूज परिसर्प कम	५	आगत के समान
चौथी नरक	४	खेचर कम	४	आगत के समान
पाँचवीं नरक	३	स्थलचर कम	३	आगत के समान
छट्ठी नरक	२	उरपरिसर्प कम = १ मनुष्य, १ जलचर	२	आगत के समान
सातवीं नरक	२	दोनो की स्त्री कम	१	जलचर

नाम	आगति		गति	
	स ख्या	विवरण	स ख्या	विवरण
भवनपति, व्य तर	१६	५ सन्नी, ५ असन्नि ५ युगलिया, १ मनुष्य	९	५ सन्नी, ३ स्थावर, १ मनुष्य
ज्योतिषी, प्रथम दो देवलोक	९	५ सन्नी, ३ युगलिया १ मनुष्य	९	५ सन्नी, ३ स्थावर, १ मनुष्य
३ से ८ देवलोक	६	५ सन्नी तिर्यंच १ मनुष्य	६	आगति समान
९ से १२ देवलोक	१	मनुष्य	१	मनुष्य
९ ग्रैवेयेक	१	मनुष्य	१	मनुष्य
५ अणुत्तर विमान	१	अप्रमत्त स यत मनुष्य	१	मनुष्य
पृथ्वी, पाणी, वनस्पति	७४	४६ तिर्यंच, ३ मनुष्य, २५ देव क्रम से	४९	४६ तिर्यंच ३ मनुष्य
तेउ, वायु	४९	४६ तिर्यंच ३ मनुष्य	४६	४६ तिर्यंच
तीन विकलेन्द्रिय	४९	४६ तिर्यंच ३ मनुष्य	४९	४६तिर्यंच ३मनुष्य
तिर्यंच प चेन्द्रिय	८७	७४+७ नरक+६ देवलोक	९२	८७ + ५ युगलिया
मनुष्य	९६	३८ तिर्यंच, ३ मनुष्य, ४९ देव, ६ नरक	१११	सिद्ध सहित ११०(सर्वत्र)

नोंध :- सन्नी और असन्नि जहाँ भी चार्ट में हैं उन्हें तिर्यंच समझें।

चार्ट स ब ध ी विशेष ज्ञातव्य- (१) दूसरी नारकी से छट्ठी नारकी तक आगत के समान गत है। पहली नरक में असन्नि छोड़कर गत है सातवीं नरक में मनुष्य छोड़कर गत है। सातवीं में पुरुष और नपु सक दोनों जा सकते है, स्त्री कोई भी नहीं जाती है।

(२) दो तिर्यंच युगलिये- १. खेचर २. स्थलचर(चौपद)। मनुष्य युगलिये तीन- १. अस ख्याता वर्ष का कर्मभूमि २. अकर्मभूमिज ३. अ तर्द्वीपज।

(३) इस गति आगति के प्रकरण में पर्याप्त नामकर्म वालों की अपर्याप्त अवस्था को अलग नहीं गिना गया है इसीलिये नारकी देवता के गति में आगति के समान केवल पर्याप्त ही लिया है। पर्याप्त, अपर्याप्त यों दो भेद नहीं लिये है अर्थात् नारकी देवता में पर्याप्त जीव ही आते है एव नारकी देवता मरकर जहाँ भी जन्मते है वहाँ पर्याप्त ही बनते हैं। पर्याप्त बने बिना अपर्याप्त अवस्था में ये वहाँ नहीं मरते हैं।

(४) तिर्यंच मनुष्य परस्पर अपर्याप्त अवस्था का आयुष्य बा ध सकते हैं और अपर्याप्त अवस्था में मरकर अन्यत्र(मनुष्य तिर्यंच में)जन्म सकते हैं।

(५) अणुत्तर विमान में अप्रमत्त, स यत, स्वलि गी ही जाते है, लब्धिवान और लब्धि रहित दोनों अणुत्तर देव बनते हैं ।

(६) नव ग्रैवेयक में स्वलि गी सम्यग्दृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि जाते हैं ।

(७) १२वें देवलोक तक साधु, श्रावक, स्वलि गी, अन्यलि गी, मिथ्या दृष्टि, सम्यग्दृष्टि आदि मनुष्य जा सकते हैं ।

प्रश्न-४ : जीवन में आयुष्य ब ध का समय, उसके आकर्ष तथा ६ प्रकार के आयुष्य ब ध कौन-कौन से हैं ?

उत्तर- नारकी, देवता, युगलिये छः महीने आयु शेष रहने पर परभव का आयु ब ध करते हैं। दस औदारिक द ड़क में निरूपक्रमी आयु वाले अपनी उम्र का २/३ भाग बीतने पर १/३ भाग शेष रहने पर आयु ब ध करते हैं। **सोपक्रमी** आयु वाले तीसरे, नौवें, सताइसवें भाग में आयु ब ध करते हैं। (अ तिम अ तर्मुहूर्त तक भी करते हैं।)

आकर्ष- २४ ही द ड़क में जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट आठ आकर्ष से आयु ब ध होता हैं अर्थात् उत्कृष्ट ८ बार पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं।

आयु ब ध के ६ प्रकार है- १.जाति ब ध २. गति ब ध ३. स्थिति बध ४. अवगाहना ब ध ५. अनुभाग ब ध ६. प्रदेश ब ध।

२४ ही द ड़क में ६ प्रकार का आयुब ध होता है अर्थात् आयुष्य के साथ इन ६ बोलों का स ब ध निश्चित होता है। इजन के साथ ड़ब्बे जुड़ने के समान १ गति २ जाति ३ अवगाहना-औदारिक शरीर आदि रूपघ ये नाम कर्म की विविध प्रकृतियें स्टोक में रहती हैं। यदि मनुष्यायु का ब ध हो रहा है तो मनुष्य गति प चेन्द्रिय जाति औदारिक शरीर की अवगाहना ये बोल आयु के साथ निश्चित रूप में जुड़ जाते हैं। अन्य अनेक कर्मों की ४ स्थिति ५ प्रदेश ६ अनुभाग आयुष्य ब ध के साथ जुड़ जाते हैं। ये सब आयु ब ध के साथ जुड़ कर ब ध जाते है। इसी अपेक्षा आयु ब ध ६ प्रकार का कहा है।

अल्पाबहुत्व- सबसे थोड़ा आठ आकर्ष से आयु बा धने वाले, सात आकर्ष वाले स ख्यातगुणा यों क्रमशः एक आकर्ष वाले स ख्यातगुणा।

पद-७ : श्वासोश्वास

प्रश्न-१ : चारों गति के जीवों की श्वासोश्वास क्रिया किस प्रकार होती है ?

उत्तर- श्वासोश्वास क्रिया सांसारिक जीवों के शरीर का एक आवश्यक अ ग है, इसके बिना कोई भी प्राणी नहीं जी सकता। यह श्वासोश्वास क्रिया जीवों के भिन्न-भिन्न रूप में मद-तीव्र गति से होती है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है- **(१)** नारकी जीव सदा तीव्र गति से श्वासोश्वास लेते छोड़ते हैं। **(२)** तिर्यंच मनुष्य तीव्रगति मंदगति आदि विभिन्न प्रकार से(बेमात्रा से) श्वासोश्वास लेते छोड़ते हैं। **(३)** असुरकुमार देव को जघन्य सात थोव(स्तोक),उत्कृष्ट साधिक एक पक्ष श्वासोश्वास क्रिया में लगता है। **(४)** नागकुमारादि एव वाणव्य तर देवों का श्वासोश्वास कालमान, जघन्य सात थोव, उत्कृष्ट अनेक मुहूर्त है। **(५)** ज्योतिषी देवों का श्वासोश्वास काल मान जघन्य अनेक मुहूर्त, उत्कृष्ट भी अनेक मुहूर्त का है। जघन्य से उत्कृष्ट में स ख्यातगुणा (दुगुना चौगुणा)अ तर है। **(६)** देवलोक में देवों का श्वासोश्वास कालमान इन प्रकार है-

देवलोक	जघन्य कालमान	उत्कृष्ट कालमान
पहला देवलोक	अनेक मुहूर्त	दो पक्ष
दूसरा देवलोक	साधिक अनेक मुहूर्त	साधिक दो पक्ष
तीसरा देवलोक	दो पक्ष	सात पक्ष
चौथा देवलोक	दो पक्ष साधिक	सात पक्ष साधिक
पा चवाँ देवलोक	७ पक्ष	१० पक्ष
छट्ठा देवलोक	१० पक्ष	१४ पक्ष
सातवाँ देवलोक	१४ पक्ष	१७ पक्ष
आठवाँ देवलोक	१७ पक्ष	१८ पक्ष
नौवाँ देवलोक	१८ पक्ष	१९ पक्ष
दसवाँ देवलोक	१९ पक्ष	२० पक्ष

११वाँ देवलोक	२० पक्ष	२१ पक्ष
१२वाँ देवलोक	२१ पक्ष	२२ पक्ष
९ ग्रैवेयक	२२ पक्ष	३१ पक्ष
५ अणुत्तरविमान	३१ पक्ष	३३ पक्ष

विशेष– नव ग्रैवेयक में प्रत्येक के जघन्य उत्कृष्ट अलग अलग समझ लेने चाहिये। चार्ट में नवों का एक साथ कहा गया है अर्थात् जितने सागरोपम की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति प्रत्येक ग्रैवेयक की है, उतने उतने जघन्य उत्कृष्ट पक्ष समझ लेने चाहिये। इस प्रकार ४ अणुत्तर विमान में जघन्य उत्कृष्ट स्थिति अनुसार जानना। सर्वार्थसिद्ध देवों के जघन्य उत्कृष्ट ३३ पक्ष का एक श्वासोश्वास होता है। इसी विधि में लौका तिक आदि अन्य किसी भी देवों के श्वासोश्वास का कालमान समझ लेना चाहिये ।

प्रश्न–२ : यहाँ जो श्वासोश्वास का उत्कृष्ट काल सूचित किया गया है वह एक श्वासोश्वास का लगातार का समय है या दो श्वासो के बीच का अ तर है ?

उत्तर– स सार का छोटा बड़ा प्रत्येक प्राणी श्वासोश्वास लेता है और इसी के आधार से जीता है। प्रस्तुत पद में नारकी आदि जीव कितने समय का श्वासोश्वास लेते हैं अर्थात् उन उन जीवों को एक बार की श्वासोश्वास क्रिया में कितना समय लगता है, यह बताया गया है ।

इस सूत्र पद का अर्थ यों भी किया जाता है कि कितने समय के विरह से(अ तर से) श्वासोश्वास लिया जाता है। किन्तु आगमकार ने **कितने काल का विरह अथवा कितने काल का अ तर** होता है ? ऐसा नहीं पूछा है और उत्तर में भी अ तर या विरह के भाव का उत्तर नहीं दिया है। यदि अ तर या विरह का आशय होता तो नारकी के लिये **अनुसमय अविरहिय** शब्द का प्रयोग किया जाता और अन्य द ड़को में भी सात थोव या पन्द्रह पक्ष के अ तर से श्वासोश्वास लेते हैं ऐसा स्पष्ट कथन किया जाता। किन्तु पाठ में ऐसा प्रयोग नहीं हैं।

आगम में शब्द प्रयोग इस प्रकार किये हैं– **प्रश्न– केवई कालस्स आणम ति ? उत्तर– जहण्णेण सत्त थोवाणा आणम ति उक्कोसेण साइरेगस्स पक्खस्स आणमति ।** यहाँ पर 'कालस्स' 'थोवाण' 'साइरेगस्स पक्खस्स'

ये श्वासोश्वास के विशेषण हैं इनका अर्थ स्पष्ट है कि कितने काल का श्वासोश्वास लेते हैं ? जघन्य सात थोव का उत्कृष्ट साधिक पक्ष का श्वासोश्वास लेते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उन-उन जीवों को एक बार की श्वासोश्वास क्रिया में थोव, पक्ष आदि समय लगता है।

व्यवहार दृष्टि से सोचा जाय तो कोई भी सुखी या स्वस्थ प्राणी रुक-रुक कर श्वास नहीं लेता है आभ्य तर नाड़ी स्प दन या नाक द्वारा श्वास ग्रहण स्वाभाविक किसी का भी नहीं रुकता है किन्तु मद गति और तीव्र गति, मदतम गति और तीव्रतम गति से श्वास लेने की भिन्नता जरूर देखी जा सकती है और समझी जा सकती है ।

आगम में मनुष्य के श्वासोश्वास के लिये बेमात्रा शब्द का प्रयोग किया गया है। यदि इस प्रकरण में बताये गये काल मान को विरह समझा जायगा तो मनुष्य के लिये अविरह न कह कर 'बेमात्रा' का जो कथन किया गया है उसका अर्थ होगा कि अ तर का निश्चित मान नहीं है किन्तु विभिन्न तरह का अ तर होता है। जब कि प्रत्यक्ष व्यवहार से अनुभव किया जा सकता है कि नाक द्वारा चलने वाला श्वास या नाड़ी स्प दन अथवा धड़कन आदि किसी के मिनट, आधा मिनट, दो मिनट ऐसी किसी भी बेमात्रा तक के लिये रुकते नहीं है, उसमें कुछ भी विरह-अ तर नहीं पड़ता है ।

प्रत्यक्ष में तो यह देखा जाता है कि विभिन्न मात्रा का कालमान अलग-अलग व्यक्तियों के श्वासोश्वास क्रिया का होता है। भगवती सूत्र की टीका में भी सात लव आदि के लिये कालमान शब्द का प्रयोग किया है।

आहार का अ तर जिस प्रकार प्रत्येक प्राणी के जीवन में देखा जाता है वैसे श्वासोश्वास का अ तर नहीं देखा जाता ।

भगवती सूत्र में पा च स्थावर का आहार अणुसमय अविरह कहा है, किन्तु श्वासोश्वास के लिये विमात्रा शब्द का ही प्रयोग किया है । इससे भी स्पष्ट होता है कि आगमकार को श्वासोश्वास का विरह नहीं बताना है किन्तु उसका कालमान बताना है, जो कि औदारिक शरीर वालो में विमात्रा वाला है ।

वहीं पर (श. १ उ. १ में) बेइन्द्रिय से प चेन्द्रिय तक के श्वासोश्वास

के लिये केवल विमात्रा ही कहा है किन्तु आहार के लिये विमात्रा कहने के साथ अस ख्य समय के अ तर्मुहूर्त ***यावत्*** दो-तीन दिन से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है, ऐसा कहा है। इस प्रकार आगम से भी औदारिक द ड़कों के आहार का अ तर स्पष्ट है और व्यवहार में भी आहारेच्छा में अ तर पड़ता देखा जाता है। श्वासोश्वास के लिये ऐसा कुछ भी स्पष्ट अ तर औदारिक द ड़कों का आगम में नहीं बताया गया है और प्रत्यक्ष में भी किसी के श्वासोश्वास में ऐसा अ तर देखा नहीं जाता है ।

अत: प्रत्यक्ष अनुभवानुसार भी श्वास का मद मदतम होना सहज समझ में आ सकता है किन्तु कुछ कुछ समयों के लिये आहारेच्छा के समान श्वास का रुक जाना, अ तर पड़ जाना सहज समझ में नहीं आ सकता है।

समवायाग टीका में एव प्रज्ञापना टीका में किसी भी कारण से अर्थात् भ्रम से या छद्मस्थता के दोष से श्वासोश्वास के इस कालमान को अ तर या विरह कहा गया है जिसका आशय यह है कि "७ लव, १ पक्ष या ३३ पक्ष तक देव बिना श्वास क्रिया के रहते हैं उतने समय के बीतने पर एक बार श्वासोश्वास लेते हैं फिर ३३ पक्ष आदि समय तक रुक जाते हैं।" आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित विवेचन युक्त प्रज्ञापना सूत्र में भी टीका का अनुसरण करते हुए ही अर्थ विवेचन किया गया है । इस तरह श्वास क्रिया को आभोग आहार क्रिया के समान पद्धति वाला टीका आदि में कहा होने से पाठकों में अशुद्ध धारणा एव उससे अनेक श काशीलता की स्थिति बनी है ।

यद्यपि देवों का तो हम अभी कुछ भी अनुभव कर नहीं सकते किन्तु पृथ्वी तल पर रहे तिर्यंच, मनुष्यों का अनुभव तो किया जा सकता है और उस अनुभव से तो यह नि:स कोच कहा जा सकता है कि श्वास क्रिया, आभोग आहार क्रिया के समान अ तर की पद्धति वाली नहीं हो सकती ।

इस व्यवहार अनुभव दृष्टि से एव आगम आशय की ऊपरोक्त अपेक्षा से देव गणों की भी एक श्वासोश्वास की क्रिया ७ थोव, मुहूर्त, पक्ष आदि समय में पूर्ण होती है, इतनी शा त म द म दतम गति

से वे देव श्वास लेते हैं और छोड़ते हैं। नारकी जीव शीघ्र शीघ्रतम गति से श्वास लेते छोड़ते हैं एव तिर्यंच मध्यम गति या विमात्रा से(कोई कभी म द गति से, कोई कभी तीव्र गति से) श्वास लेते-छोड़ते हैं । किन्तु आहार के समान कुछ-कुछ समय का अ तर करके कोई भी श्वास क्रिया नहीं करते हैं ।

पद-८ : स ज्ञा

प्रश्न-१ : स ज्ञा कुल कितनी होती है और उनका स्वरूप क्या है ?

उत्तर- कर्मो के क्षयोपशम या उदय से उत्पन्न आहार आदि की अभिलाषा रुचि या मनोवृति को स ज्ञा कहते हैं और उससे होने वाली कायिक एव मानसिक चेष्टा को स ज्ञा प्रवृति या स ज्ञा क्रिया कहते हैं। ये सज्ञाएँ दस प्रकार की कही गई है -

(१) आहार स ज्ञा- क्षुधा वेदनीय कर्म के उदय से आहार की अभिलाषा रुचि ।

(२) भय स ज्ञा- भय मोहनीय कर्म के उदय से भयजन्य स कल्प ।

(३) मैथुन स ज्ञा- वेद मोहनीय कर्म के उदय से मैथुन स योग की अभिलाषा एव विकार रूप सूक्ष्म स्थूल स कल्प ।

(४) परिग्रह स ज्ञा- लोभ मोहनीय कर्म के उदय से आसक्ति युक्त पदार्थों के ग्रहण की अभिलाषा ।

(५) क्रोध स ज्ञा- क्रोध मोहनीय के उदय से कोप वृत्ति के स कल्प, आत्मपरिणति (परिणाम) ।

(६) मान स ज्ञा- मान मोहनीय के उदय से गर्व, अहकारमय मानस, आत्म परिणति(परिणाम) ।

(७) माया स ज्ञा- माया मोहनीय के उदय से मिथ्या भाषण या छल प्रप च की जनक आत्म परिणति(परिणाम) ।

(८) लोभ स ज्ञा- लोभ मोहनीय के उदय से अनेक प्रकार की लालसाएँ, सुख समृद्धि, यश, सन्मान एव पदार्थों के प्राप्त की आशाएँ, अभिलाषाएँ ।

(९) लोक स ज्ञा- यह ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होती है ।

देखा-देखी पर परा, प्रवाह के अनुसार की जाने वाली प्रवृतियों की मानस वृत्ति रुचि 'लोक स ज्ञा' हैं ।

(१०) ओघ स ज्ञा– यह स ज्ञा दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होती है। इसमें कुछ भी सोचे समझे बिना, स कल्प और विवेक बिना, केवल धुन ही धुन से प्रवृत्ति करने के पीछे रही हुई मानसदशा आत्मपरिणति 'ओघस ज्ञा' है। यथा– बोलते हुए या बैठे हुए, बिना प्रयोजन, बिना स कल्प के, शरीर पाँव हाथ आदि का हिलना, ओघस ज्ञा की प्रवृति है । इसके पीछे जो आत्म परिणति है, वह 'ओघ स ज्ञा' हैं ।

प्रश्न–२ : चार गति में ये स ज्ञाएँ किस तरह पाई जाती है ?

उत्तर– ये दसों स ज्ञाएँ सामान्य रूप से स सार के सभी प्राणियों में पाई जाती है अर्थात् चारगति २४ द ड़क में ये दस ही स ज्ञा है। विशेष रूप से या प्रमुखता अधिकता से ये स ज्ञाएँ इस प्रकार पाई जाती है –

चार गति में स ज्ञाओं की प्रमुखता– आहारादि चार स ज्ञा और क्रोधादि चार स ज्ञाओं की अपेक्षा निम्न विचारणा है लोक स ज्ञा और ओघ स ज्ञा का सामान्य रूप से ही कथन है ।

१. नारकी में – भय स ज्ञा अधिक है एव क्रोध स ज्ञा अधिक है ।
२. तिर्यंच में – आहार स ज्ञा एव माया स ज्ञा अधिक है ।
३. मनुष्य में – मैथुन स ज्ञा और मान स ज्ञा अधिक है ।
४. देवता में – परिग्रह और लोभ स ज्ञा अधिक है ।

चार गति में स ज्ञाओं की अल्पाबहुत्व :-

१. नरक में– सबसे थोड़े मैथुन स ज्ञा वाले, उससे आहार स ज्ञा वाले स ख्यातगुणा, उससे परिग्रह स ज्ञा वाले स ख्यातगुणा, उससे भय स ज्ञा वाले स ख्यातगुणा ।

२. तिर्यंच में– सबसे थोड़े परिग्रह स ज्ञा वाले, उससे मैथुन स ज्ञा वाले स ख्यातगुणे, उससे भय स ज्ञा वाले स ख्यातगुणा, उससे आहार स ज्ञा वाले स ख्यातगुणा ।

३. मनुष्य में– सबसे थोड़े भय स ज्ञा वाले, उससे आहार स ज्ञा वाले स ख्यातगुणे, उससे परिग्रह स ज्ञा वाले स ख्यातगुणा, उससे मैथुन स ज्ञा वाले स ख्यातगुणा ।

४. देव में– सबसे थोड़े आहार स ज्ञा वाले, उससे भय स ज्ञा वाले स ख्यात गुणे, उससे मैथुन स ज्ञा वाले स ख्यातगुणा, उससे परिग्रह स ज्ञा वाले स ख्यात गुणा । शेष ६ स ज्ञाओं की अपेक्षा अल्पाबहुत्व यहाँ नहीं की गई है ।

पद–९ : योनि

प्रश्न–१ : योनि किसे कहा जाता है और इनका कितने प्रकार से वर्णन किया जाता है ?

उत्तर– स सार में जीव जहाँ जन्म लेते हैं, गर्भ रूप में उत्पन्न होते हैं, जहाँ औदारिक आदि शरीर को बनाने हेतु प्रथम आहार ग्रहण करते हैं, उस उत्पत्ति स्थान को **योनि** कहते हैं । वे स ख्या में ८४ लाख योनि कही गई है। विशेष भेदों की अपेक्षा वे योनि स्थान अस ख्य है। प्रस्तुत प्रकरण में उन सभी योनियों को अपेक्षा से तीन-तीन प्रकारों में समाविष्ट कर दिया गया है । यथा–

१. शीत योनि २. उष्ण योनि ३. शीतोष्ण योनि ।
१. सचित्त योनि २. अचित्त योनि ३. मिश्र योनि ।
१. स वृत योनि २. विवृत योनि ३. स वृत विवृत योनि ।

ये ९ योनियाँ समस्त जीवों की अपेक्षा कही गई है। प्रत्येक तीन योनि में सभी जीवों का समावेश हो जाता है। केवल मनुष्यों की अपेक्षा भी अन्य तीन योनि और कही गई है–

१. कूर्मोन्नता योनि– तीर्थंकर आदि उत्तम पुरुष कूर्मोन्नता योनि में उत्पन्न होते हैं। अर्थात् उनकी माताओं के कूर्मोन्नता योनि होती है ।

२. श खावर्ता योनि– चक्रवर्ती के स्त्रीरत्न के श खावर्ता योनि होती है। इस योनि में जीव जन्म लेते हैं, कुछ समय रहते हैं किन्तु पूर्ण विकास होकर गर्भ से बाहर आने के पूर्व ही मर जाते हैं। अर्थात् उस स्त्रीरत्न की कामाग्नि के ताप से वे वहीं नष्ट हो जाते हैं ।

३. व शीपत्रा योनि– सर्व साधारण मनुष्यों के माता की व शीपत्रा योनि होती है।

प्रश्न–२ : ये कही गई योनियाँ जीवों में किस-किस प्रकार पायी जाती है ?

उत्तर- पूर्वोक्त ९ योनियाँ जीवों में इस प्रकार पायी जाती है-

स सारी जीवों में योनियाँ :-

जीवनाम	शीत आदि ३ योनि	सचित्तादि ३ योनि	स वृत्तादि ३ योनि
तीन नरक	शीत	अचित्त	स वृत्त
चौथी नरक	शीत एव उष्ण दो	अचित्त	स वृत्त
पाँचवीं नरक	शीत एव उष्ण दो	अचित्त	स वृत्त
छट्ठी सातवीं नरक	उष्ण	अचित्त	स वृत्त
तेउकाय	उष्ण	तीन	स वृत्त
चार स्थावर	तीन	तीन	स वृत्त
तीन विकलेन्द्रिय	तीन	तीन	विवृत
असन्नि तिर्यंच, मनुष्य	तीन	तीन	विवृत
सन्नी तिर्यंच, मनुष्य	शीतोष्ण	मिश्र	स वृत-विवृत
देव	शीतोष्ण	अचित्त	स वृत्त

प्रश्न-३ : सचित्त अचित्त आदि योनियों का खास तात्पर्यार्थ क्या है ?

उत्तर- जन्म स्थान में प्रथम आहार सचित्त अचित्त या मिश्र जैसा भी होता है उसी के अनुसार योनि होती है अर्थात् वह आहार सचित्त है तो सचित्त योनि समझना। इसी प्रकार सन्नी मनुष्य और सन्नी तिर्यंच के 'रज-वीर्य ' का प्रथम आहार होता है उसमें वीर्य अचित्त एव रज सचित्त होने से मिश्र आहार होता है इसलिये इनकी मिश्र योनि कही गई है ।

उत्पत्ति स्थान का स्वभाव जैसा उष्ण, शीत होता है तदनुसार योनि होती है यथा- अग्निकाय की उष्ण योनि ।

उत्पत्ति स्थान ढ़ँका हुआ हो या गुप्त हो तो स वृत योनि होती है, प्रकट स्थान हो वह विवृत योनि एव कुछ ढ़ँका कुछ खुला स्थान हो तो स वृत-विवृत योनि होती है ।

प्रश्न-४ : इन योनि वाले जीवों का अल्पाबहुत्व तुलना किस प्रकार दर्शाई गई है ?

उत्तर- **(१)** सबसे थोड़ा शीतोष्ण योनिक, उष्ण योनिक अस ख्यातगुणा, उससे शीतयोनिक अन तगुणा। **(२)** सबसे थोड़ा मिश्र योनिक, अचित्त योनिक अस ख्यगुणा, उससे सचित्त योनिक अन तगुणा। **(३)** सबसे थोड़ा स वृत-विवृत, उससे विवृत योनिक अस ख्य गुणा, उससे स वृत्त योनिक अन तगुणा ।

प्रश्न-५ : जीवाभिगम प्रश्नोत्तर पृष्ठ १२१ में जीवों की कुल-कोड़ी का विवरण दिया गया है वह अपूर्ण या अशुद्ध है क्या ?

उत्तर- जीवाभिगम सूत्र में कुछ जीवों की कुलकोड़ी बताई गई है तदनुसार प्रश्नोत्तर में स्पष्टीकरण किया गया है। अन्य पुस्तकों में परिपूर्ण रूप से कुलकोड़ी का विवरण इस प्रकार मिलता है-

पृथ्वीकाय की कुल कोड़ी	१२ लाख
अप्काय की कुल कोड़ी	७ लाख
तेउकाय की कुल कोड़ी	३ लाख
वायुकाय की कुल कोड़ी	७ लाख
वनस्पतिकाय की कुल कोड़ी	२८ लाख
बेइन्द्रिय जीवों की कुलकोड़ी	७ लाख
तेइन्द्रिय जीवों की कुल कोड़ी	८ लाख
चौरेन्द्रिय जीवों की कुल कोड़ी	९ लाख
प चेन्द्रिय जलचर की कुल कोड़ी	१२॥ लाख
खेचर पक्षियों की कुल कोड़ी	१२ लाख
चतुष्पद(भूचर) की कुल कोड़ी	१० लाख
उरपरिसर्प की कुल कोड़ी	१० लाख
भुजपरिसर्प की कुल कोड़ी	९ लाख
देवों की कुल कोड़ी	२६ लाख
नारकी की कुल कोड़ी	२५ लाख
मनुष्यों की कुल कोड़ी	१२ लाख
कुल : १,९७,५०,०००	

इस प्रकार सर्व जीवों की कुलकोड़ी एक करोड़ साढ़े सत्ताणु लाख होती है ।

पद-१० : चरम

प्रश्न-१ : इस पद में चरम-अचरम का निरूपण किस अपेक्षा से किया है ?

उत्तर- रत्नप्रभा आदि पृथ्वीयों के द्रव्य की अपेक्षा एव कल्पित विभागों की अपेक्षा चरम-अचरम का भगो द्वारा वर्णन है। रत्नप्रभा आदि पृथ्वियाँ सात एव सिद्ध शिला ये आठ पृथ्वियाँ कही गई है। इसके अतिरिक्त देवलोक भी अलग-अलग कहे हैं ।

प्रश्न के प्रार भिक उत्तर में द्रव्य की अपेक्षा कथन करके फिर विभाग की अपेक्षा कथन किया गया है ।

द्रव्यापेक्षया- ये रत्नप्रभा नरक आदि सभी एक-एक स्क ध है । अतः इनमें १.चरम २. अनेक चरम ३. अचरम ४. अनेक अचरम ५. चरमात प्रदेश ६. अचरमात प्रदेश; इन ६ में से एक भी विकल्प नहीं हो सकता है क्यों कि जो एक द्रव्य है जिसके साथ कोई नहीं है तब दूसरे किसी भी द्रव्य की विवक्षा वाले ये भ ग नहीं हो सकते अर्थात् ये चरम-अ तिम आदि भ ग **अनेक** की अपेक्षा रखते हैं ।

विभागापेक्षया- ये रत्नप्रभादि अस ख्यप्रदेश अवगाहनात्मक अनेक स्क धों से युक्त है। उनके चरम प्रदेश कोणों के रूप में हैं अर्थात् द ताकार किनारों के रूप में है । उन कोणों को विभाग की अपेक्षा से अनेक चरम स्क ध रूप में विवक्षित करने पर एव मध्य के पूरे एक गोल ख ड़ को एक अचरम विवक्षित करने पर रत्नप्रभा पृथ्वी आदि के चरम आदि हो सकते हैं। इस विभागादेश से रत्नप्रभा पृथ्वी १. अचरम है, २. अनेक चरम है, ३. अचरमात प्रदेश है और ४. चरमात प्रदेश है ।

१. अचरम- बीच का विवक्षित एक द्रव्य स्क ध ।

२. अनेक चरम-कोणों रूप अनेक अस ख्य ख ड़, अनेक चरम द्रव्य है।

३. अचरमात प्रदेश- अचरमद्रव्य, अवगाहित प्रदेशों की अपेक्षा अस ख्य प्रदेशात्मक है, अतः अस ख्य अचरमा त प्रदेश है ।

४. चरमात प्रदेश- कोणों के रूप में रहे अस ख्य ख ड़, अवगाहित प्रदेशों की अपेक्षा अस ख्य प्रदेशात्मक है ।

इसी प्रकार विभागादेश से सभी पृथ्वियाँ और देवलोक, लोक एव अलोक आदि के चार-चार भ ग किये जाते हैं। इनकी अल्पाबहुत्व इस प्रकार हैं-

अल्पाबहुत्व(रत्नप्रभा पृथ्वी से लेकर लोक तक की) :- सबसे थोड़े एक अचरम द्रव्य, उससे अनेक चरमद्रव्य अस ख्यगुणा, उससे चरमांत प्रदेश अस ख्यगुणा, उससे अचरमातप्रदेश अस ख्यगुणा। (यहाँ पर द्रव्य में ख ड़ रूप स्क ध ग्रहित है और प्रदेश में उन ख ड़ों के अवगाहित आकाश प्रदेश विवक्षित किये हैं, इसलिये प्रदेशों को अस ख्यातगुणा कहा है)

लोक अलोक में चार भ ग- लोक के किनारे भी द ताकार विभाग है क्यों कि लोक समचक्रवाल नहीं है, विषम चक्रवाल है। अतः उन द ताकार विभागों को अनेक ख ड़ रूप में विवक्षित करने पर लोक के भी उक्त चार भग स्वीकृत किये हैं, लोक के द ताकार में अलोक के द ताकार ख ड़मिल कर रहे हुए है। तभी लोक अलोक पूर्ण स लग्न होकर रहे हुए होते हैं। इस कारण अलोक के भी उक्त चार भ ग स्वीकृत किये गये हैं। इसलिये इनकी भी अल्पाबहुत्व की गई है। लोक के चारों भ ग की अल्पाबहुत्व रत्नप्रभा के समान ही है कि तु अलोक के चार भगों की अल्पाबहुत्व में अ तर है क्यों कि उसके आकाशप्रदेश अस ख्य नहीं है कि तु अन त है। अतः उसकी अल्पाबहुत्व इस प्रकार है-

अलोक की अल्पाबहुत्व- सबसे थोड़ा अलोक अचरम द्रव्य(एक है), उससे चरम द्रव्य अस ख्यगुणा, उससे चरम द्रव्यों के प्रदेश(आकाशप्रदेश) अस ख्यगुणा, उससे अचरमप्रदेश अन तगुणा ।

लोक अलोक की सम्मिलित अल्पाबहुत्व-१. सबसे थोड़ा लोक अचरम और अलोक अचरम(दोनों) आपस में तुल्य (एक एक) है। २. इससे लोक के चरम द्रव्य अस ख्यगुणे। ३. इससे अलोक के चरम द्रव्य विशेषाधिक। ४.इससे लोक के चरम प्रदेश अस ख्यगुणे। ५. उससे अलोक के चरम प्रदेश विशेषाधिक। (६) उससे लोक के अचरम प्रदेश अस ख्यगुणे। (७) उससे अलोक के अचरम प्रदेश अन तगुणे ।

नोट- यहाँ अल्पाबहुत्व में समुच्चय लोक और समुच्चय अलोक के विशेषाधिक का बोल नहीं किया है, उसे स्वतः समझ लेना चाहिये।

प्रश्न-२ : परमाणु आदि पुद्गलों के चरम अचरम का वर्णन कितने भ गों से(प्रश्नों से) किया जाता है?

उत्तर- प्रस्तुत प्रकरण में पृथ्वियाँ और लोक-अलोक स ब धी स्थूल कथन करने के बाद परमाणु से लेकर अन तप्रदेशी स्क ध तक के चरम-अचरम की सूक्ष्मतम विचारणा की गई है। जो २६ प्रश्नों (विकल्पों) के माध्यम से है । वे २६ प्रश्न, चरम, अचरम, अवक्तव्य इन तीन पदों के अस योगी द्विस योगी और तीन स योगी भ गों के आधार से किये हैं ।

तीन पदों का स्वरूप- (१) चरम- जिस प्रदेश के समकक्ष में एक दिशा में एक या अनेक प्रदेश हो तो वह उनकी अपेक्षा **चरम** होता है ।

(२) अचरम- जिस प्रदेश के समकक्ष में दोनों दिशा में एक या अनेक प्रदेश हो तो वह उनकी अपेक्षा **अचरम**(मध्यम) होता है ।

(३) अवक्तव्य-जिस प्रदेश के समकक्ष में अन्य कोई भी प्रदेश नहीं होता है अर्थात् उस ऊपर या नीचे अपनी प्रतर में वह अकेला ही हो तो वह अवक्तव्य होता है ।

अस योगी ६ भ ग- १. चरम २. अचरम ३. अवक्तव्य ४. अनेक चरम ५. अनेक अचरम ६. अनेक अवक्तव्य ।

द्विस योगी १२ भ ग- १. चरम एक, अचरम एक, २. चरम एक अचरम अनेक, ३. चरम अनेक अचरम एक, ४. चरम अनेक अचरम अनेक। ५. चरम एक अवक्तव्य एक, ६. चरम एक अवक्तव्य अनेक, ७. चरम अनेक अवक्तव्य एक, ८. चरम अनेक अवक्तव्य अनेक। ९. अचरम एक अवक्तव्य एक, १०. अचरम एक अवक्तव्य अनेक, ११. अचरम अनेक अवक्तव्य एक, १२. अचरम अनेक अवक्तव्य अनेक ।

तीन स योगी ८ भ ग- १. चरम एक, अचरम एक, अवक्तव्य एक, २. चरम एक, अचरम एक, अवक्तव्य अनेक, ३.चरम एक, अचरम अनेक, अवक्तव्य एक, ४. चरम एक, अचरम अनेक, अवक्तव्य अनेक। ५. चरम अनेक, अचरम एक, अवक्तव्य एक, ६. चरम अनेक, अचरम एक, अवक्तव्य अनेक, ७. चरम अनेक, अचरम अनेक, अवक्तव्य एक, ८. चरम अनेक, अचरम अनेक, अवक्तव्य अनेक। ये कुल ६+१२+८=२६ भ ग है ।

प्रश्न-३ : इन २६ भ गों के स्वरूप को पुद्गल स्क धों के माध्यम से किस प्रकार समझा जा सकता है ?

उत्तर- भ ग स्वरूप-**(१) चरम**-द्विप्रदेशी स्कध आदि दो आकाश प्रदेश पर समकक्ष में हो तो एक चरम रूप यह भ ग होता है। यदि दो में से किसी एक आकाश प्रदेश पर अनेकों प्रदेश हो तो भी यहाँ आकाश प्रदेश की प्रधानता होने से एक ही चरम कहा जायेगा। इसलिये दो आकाश प्रदेश पर समकक्ष में रहने वाले सभी स्क ध (दो प्रदेशी से अन त प्रदेशी तक के स्क ध) इस भ ग में गिने जाते हैं।

(२) अचरम- अचरम का मतलब है मध्यम, बीच का। अकेला अचरम कोई नहीं हो सकता। अतः यह भ ग शून्य है अर्थात् सभी स्क धों में इस भ ग का निषेध है ।

(३) अवक्तव्य- अपनी श्रेणी, कक्ष, प्रतर में जो अकेला ही हो वह अवक्तव्य है। परमाणु तो स्पष्ट ही अवक्तव्य है। अन्य स्क धों में भी शेष प्रदेश समकक्ष में हो और एक प्रदेश अकेला अन्य प्रतर में ऊपर या नीचे हो तो वह भी अवक्तव्य है। कि तु यह तीसरा भ ग तो केवल परमाणु में ही पाया जायेगा अथवा कोई भी द्विप्रदेशी स्क ध आदि स पूर्णतः एक आकाश प्रदेश पर रहेगा तो वह भी अवक्तव्य नामक इस तीसरे भ ग में ही गिना जायेगा ।

(४) अनेक चरम- बिना अचरम के अनेक चरम होना अस भव है। अतः यह भ ग भी शून्य है। किसी भी स्क ध में नहीं माना गया है।

(५) अनेक अचरम- चरम के बिना एक अचरम भी नहीं होता, तो अनेक अचरम होना स भव ही नहीं है। अतः यह भ ग भी शून्य है।

(६) अनेक अवक्तव्य- बिना चरम, अचरम के अवक्तव्य अनेक नहीं रह सकते। एक अवक्तव्य रूप परमाणु का तीसरा भ ग तो सफल है ही, कि तु अनेक अवक्तव्य रूप यह भ ग स भव नहीं है ।

(७) चरम एक, अचरम एक- यदि समकक्ष एक प्रतर की एक श्रेणी में रहे प्रदेशों में एक अचरम है तो चरम **अनेक** होते हैं। अतः चरम एक का यह भ ग समकक्ष एक श्रेणी में रहे प्रदेशों की अपेक्षा नहीं होता किन्तु समकक्ष चारों दिशा में रहे प्रदेशों की अपेक्षा होता है अर्थात् कम

से कम पा च प्रदेशी स्क ध में यह भ ग हो सकता है। इसमें जो एक प्रदेश बीच में होता है, वह एक अचरम होता है। शेष चार चौतरफ घिरे होने से उन्हें अपेक्षा से एक चरम कहा गया है ।

(८) चरम एक, अचरम अनेक– सातवें भ ग के समान ही यह भ ग भी है, इसमें दो प्रदेश बीच में दो आकाश प्रदेश पर होते है और चार चौतरफ घिरे होते है। अतः यह भ ग कम से कम ६ प्रदेशी स्क ध में होता है ।

(९) चरम अनेक, अचरम एक– यह भ ग समकक्ष में एक श्रेणी में रहे प्रदेशों के होता है। इसमें कम से कम तीन प्रदेश आवश्यक है अर्थात् यह भ ग दो प्रदेशी में नहीं होता है। तीनप्रदेशी में और उससे अधिक प्रदेशी स्क ध में होता है ।

(१०) चरम अनेक, अचरम अनेक– नवमें भ ग के समान यह भ ग भी दो प्रदेश बीच में और दो दोनों किनारे यों चार प्रदेश समकक्ष में एक श्रेणी में रहने पर जघन्य चारप्रदेशी में यह भ ग होता है ।

(११) चरम एक, अवक्तव्य एक– दो प्रदेश एक श्रेणी में हो और एक प्रदेश ऊपर या नीचे अन्य प्रतर में हो समकक्ष में न हो तो यह भ ग होता है, इसमें कम से कम तीनप्रदेशी स्क ध होना आवश्यक होता है ।

(१२) चरम एक, अवक्तव्य अनेक–ग्यारहवें भ ग के समान यह भ ग भी है किन्तु उसमें एकप्रदेश भिन्न प्रतर में होता है, इसमें दो प्रदेश भिन्न प्रतरों में होते है अर्थात् एक ऊपर की प्रतर में अकेला, एक नीचे की प्रतर में अकेला और बीच की प्रतर में समकक्ष में दो प्रदेश होते हैं। वे समकक्ष वाले एक चरम है और ऊपर नीचे वाले दो अवक्तव्य है। इस प्रकार यह भ ग कम से कम चार प्रदेशी स्क ध में होता है ।

(१३) चरम अनेक, अवक्तव्य एक– दो प्रदेश एक प्रतर में समकक्ष हो फिर दो प्रदेश दूसरे प्रतर में समकक्ष और तीसरे प्रतर में एक प्रदेश अकेला हो तब दो प्रतरों में चरम अनेक बने और तीसरे प्रतर में अकेला रहा प्रदेश एक अवक्तव्य है। इस प्रकार यह भ ग कम से कम पा च प्रदेशी स्क ध में होता है।

(१४) चरम अनेक, अवक्तव्य अनेक– यह भ ग तेरहवें भ ग के समान है, फर्क यह है कि उसमें एक तीसरे प्रतर में होता है और इसमें एक अकेला ऊपर के प्रतर में एक अकेला नीचे के प्रतर में होता है बीच

के दो प्रतरों में दो दो प्रदेश होते हैं। इस प्रकार यह भ ग कम से कम ६ प्रदेशी स्क ध में पाया जाता है ।

(१५ से १८)– ये चार भ ग अचरम+अवक्तव्य के है, इनमें चरम नहीं है और चरम के बिना अचरम नहीं होता है। अतः अचरम अवक्तव्य के ये चारों भ ग शून्य है, भ ग मात्र है, यहाँ इनका कोई उपयोग नहीं है ।

(१९) चरम एक, अचरम एक, अवक्तव्य एक– सातवें भ ग के समान यह भ ग है, इसमें विशेषता यह है कि एक प्रदेश ऊपर या नीचे की प्रतर में अधिक होता है, वह अवक्तव्य होता है। तब यह भ ग कम से कम ६ प्रदेशी स्क ध में बनता है ।

(२०) चरम एक, अचरम एक, अवक्तव्य अनेक– १९वें भ ग के समान है किन्तु इसमें अकेला एक प्रदेश ऊपरी प्रतर में, एक नीचली प्रतर में यों दो अवक्तव्य होते है। अतः यह भ ग कम से कम सात प्रदेशी स्क ध में पाया जाता है ।

(२१) चरम एक, अचरम अनेक, अवक्तव्य एक– यह भ ग १९वें भग के समान है कि तु इनमें बीच में दो प्रदेश होते है, चौतरफ चार और एक ऊपर होता है जिससे बीच वाले दो अनेक अचरम होते हैं, चौतरफ वाले चार एक चरम होते है भिन्न प्रतर में ऊपर रहा एक प्रदेश अवक्तव्य होता है। इस प्रकार यह भ ग कम से कम सातप्रदेशी स्क ध में पाया जाता है ।

(२२) चरम एक, अचरम अनेक, अवक्तव्य अनेक– यह भ ग २१वें भ ग के समान है, इसमें विशेषता यह है कि एक ऊपर के प्रतर में और एक नीचे के प्रतर में यों दो अवक्तव्य होते हैं, शेष ६ समकक्ष में २१वें भ ग के समान रहते हैं। इस प्रकार यह भ ग २+४+२=८ प्रदेशों से अर्थात् कम से कम आठ प्रदेशी स्क धों में पाया जाता है ।

(२३) चरम अनेक, अचरम एक, अवक्तव्य एक– एक प्रदेश बीच में दो प्रदेश किनारे यों तीन प्रदेश एक प्रतर में एक श्रेणी में हो और एक प्रदेश भिन्न प्रतर में अकेला हो तब बीच का एक अचरम, किनारे के दो चरम और अकेला एक अवक्तव्य होता है। इस प्रकार कम से कम चार प्रदेशी स्क ध में यह भ ग बनता है ।

(२४) चरम अनेक, अचरम एक, अवक्तव्य अनेक– तेवीसवें भ ग के समान है कि तु भिन्न प्रतर में ऊपर एक प्रदेश एव नीचे भी भिन्न प्रतर में एक प्रदेश हो तो ये दो अवक्तव्य हो जाते है। अतः यह भ ग कम से कम पा च प्रदेशी स्क ध में पाया जाता है ।

(२५) चरम अनेक, अचरम अनेक, अवक्तव्य एक– दो प्रदेश बीच में दो किनारे यों चार प्रदेश समकक्ष में एक श्रेणी में हो तो दो चरम, दो अचरम होते है, एक प्रदेश ऊपर या नीचे के प्रतर में अकेला हो तो एक अवक्तव्य होता है । इस प्रकार यह भ ग कम से कम पा च प्रदेशी स्क ध में पाया जाता है ।

(२६) चरम अनेक, अचरम अनेक, अवक्तव्य अनेक– २५वें भ ग के समान है, फर्क यह है कि उसमें अवक्तव्य एक है इसमें अवक्तव्य दो है। अतः एक ऊपर के प्रतर में एक नीचे प्रतर में अकेला प्रदेश होता है तब अनेक अवक्तव्य होते है। शेष चार प्रदेश एक श्रेणी में २५वें भ ग के समान रहते हैं, तब यह भ ग कम से कम ६ प्रदेशी स्क ध में पाया जाता है ।

२६भ गों की आकृति युक्त स क्षिप्त विवरणः-

क्रम	भ ग का नाम	आकृति	खुलासा
१	चरम एक		दो आकाश प्रदेश पर होवे, दो प्रदेश से अन त प्रदेशी तक सभी में होवे ।
२	अचरम एक	X	कहने मात्र का भ ग है । किसी भी पुद्गल में स भव नहीं ।
३	अवक्तव्य एक		१ आकाशप्रदेश पर होवे,परमाणु से अन तप्रदेशी तक होवे
४	चरम अनेक	X	कहने मात्र का भ ग है ।
५	अचरम अनेक	X	कहने मात्र का भ ग है ।
६	अवक्तव्य अनेक	X	कहने मात्र का भ ग है ।
७	चरम एक अचरम एक		पा च आकाश प्रदेश पर–पा च प्रदेशी से अन त प्रदेशी तक ।

क्रम	भ ग का नाम	आकृति	खुलासा
८	चरम एक अचरम अनेक		छ आकाश प्रदेश पर–छ प्रदेशी से अन त प्रदेशी तक
९	चरम अनेक अचरम एक		तीन आकाश प्रदेश पर–तीन प्रदेशी से अन त प्रदेशी तक
१०	चरम अनेक अचरम अनेक		चार आकाश प्रदेश पर–चार प्रदेशी से अन त प्रदेशी तक
११	चरम एक अवक्तव्य एक		तीन आकाश प्रदेश, दो प्रतर में तीन प्रदेशी से अन त प्रदेशी तक
१२	चरम एक अवक्तव्य अनेक		४ आकाश प्रदेश, ३ प्रतर में चार प्रदेशी से अन त प्रदेशी तक
१३	चरम अनेक अवक्तव्य एक		पा च आकाश प्रदेश,तीन प्रतर में पा च प्रदेश से अन त प्रदेशी तक
१४	चरम अनेक अवक्तव्य अनेक		छ आकाश प्रदेश, चार प्रतर में छ प्रदेशी से अन त प्रदेशी तक
१५	अचरम एक अवक्तव्य एक	X	कहने मात्र का भ ग है ।
१६	अचरम एक अवक्तव्य अनेक	X	कहने मात्र का भ ग है ।
१७	अचरम अनेक अवक्तव्य एक	X	कहने मात्र का भ ग है ।
१८	अचरम अनेक अवक्तव्य अनेक	X	कहने मात्र का भ ग है ।
१९	चरम एक अचरम एक अवक्तव्य एक	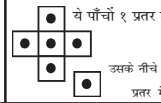	छ आकाश प्रदेश, दो प्रतर में छ प्रदेशी से अन त प्रदेशी तक
२०	चरम एक अचरम एक अवक्तव्य अनेक	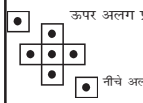	सात आकाश प्रदेश, तीन प्रतरमें सात प्रदेशी से अन त प्रदेशी तक
२१	चरम एक अचरम अनेक अवक्तव्य एक	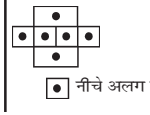	सात आकाश प्रदेश, दो प्रतर में सात प्रदेशी से अन त प्रदेशी तक

क्रम	भ ग का नाम	आकृति	खुलासा
२२	चरम एक अचरम अनेक अवक्तव्य अनेक	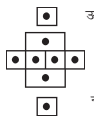	आठ आकाश प्रदेश,३प्रतर में आठ प्रदेशी से अन त प्रदेशीतक
२३	चरम अनेक अचरम एक अवक्तव्य एक	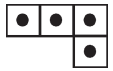	चार आकाश प्रदेश, दो प्रतर में चार प्रदेशी से अन त प्रदेशी तक
२४	चरम अनेक अचरम एक अवक्तव्य अनेक		पा च आकाश प्रदेश, ३ प्रतर में पा च प्रदेशी से अन त प्रदेशी तक
२५	चरम अनेक अचरम अनेक अवक्तव्य एक	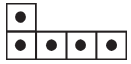	पा च आकाश प्रदेश, दो प्रतर में पा च प्रदेशी से अन त प्रदेशी तक
२६	चरम अनेक अचरम अनेक अवक्तव्य अनेक	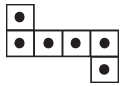	छ आकाशप्रदेश, तीन प्रतर में छ प्रदेशी से अन त प्रदेशी तक

नोट–यह २६ भ गों का स्वरूप एव आकृतिएँ ध्यानपूर्वक समझ लेने पर परमाणु आदि में पाये जाने वाले भ ग सहज समझ में आ जाते हैं ।

प्रश्न–४ : परमाणु से अन तप्रदेशी तक में कितने और कौन कौन से भ ग पाये जाते है ?

उत्तर– इन कहे गये २६ भ गों में से कुल १८ भ ग ही पुद्गलों में पाये जाने वाले है। शेष ८ भ ग किसी पुद्गल स्क ध में नहीं होते हैं। १८ में से भी परमाणु में एक भ ग, यों अन त प्रदेशी तक कुछ कुछ भ ग पाये जाते हैं, वे इस प्रकार है–

परमाणु आदि में भ ग :–

क्रम	नाम	भग	विवरण
१	परमाणु में	१	(१) तीसरा
२	द्विप्रदेशी में	२	(१) पहला (२)तीसरा
३	तीन प्रदेशी में	४	(१) पहला (२) तीसरा (३) नौवाँ (४) ११वाँ
४	चार प्रदेशी में	७	(१) पहला (२) तीसरा (३) नौवाँ (४) दसवाँ(५) ग्यारहवाँ(६) बारहवाँ(७) तेवीसवाँ

क्रम	नाम	भग	विवरण
५	पा च प्रदेशी में	११	उपरोक्त सात और (८) सातवाँ (९) तेरहवाँ (१०) चोवीसवाँ (११) पच्चीसवाँ
६	छ प्रदेशी में	१५	ग्यारह उपरोक्त और (१२) आठवाँ (१३) चौदहवाँ (१४) उन्नीसवाँ (१५) छब्बीसवाँ
७	सात प्रदेशी में	१७	१५ उपरोक्त और (१६) बीसवाँ(१७) इक्कीसवाँ
८	आठ प्रदेशी में	१८	१७ उपरोक्त और (१८) बावीसवाँ
९	स ख्यातप्रदेशी	१८	आठ प्रदेशी के समान
१०	अस ख्यातप्रदेशी	१८	आठ प्रदेशी के समान
११	अन तप्रदेशी	१८	आठ प्रदेशी के समान

टिप्पण– (१) कम प्रदेशी स्क ध में पाया जाने वाला भ ग अधिक प्रदेशी में अवश्य पाया जाता है किन्तु अधिक प्रदेशी में पाये जाने भ ग कम प्रदेशी में कोई होते हैं कोई नहीं होते हैं। यह बात ऊपरोक्त वर्णन एव चार्ट से स्पष्ट होती है।

(२) परमाणु आदि में बताये हुए ये भ ग कोई भी समझ में न आवे तो उस भ ग न . की परिभाषा अच्छी तरह पढ़ लेनी चाहिये।

(३) २६ भ ग में से पाने वाले भ ग १८ ही कहे गये हैं, शेष भ ग किसी भी स्क ध में होना स भव नहीं है। वे भ ग केवल पृच्छा मात्र ही है। नहीं पाये जाने का कारण उसकी परिभाषा में स्पष्ट कर दिया है। वे आठ भ ग ये हैं–१.दूसरा २. चौथा ३. पाँचवाँ ४.छट्ठा ५. प द्रहवाँ ६. सोलहवाँ ७. सतरहवाँ ८. अठारहवाँ।

प्रश्न–५ : पुद्गल स स्थानों में चरमाचरमता किस प्रकार है ?

उत्तर– पुद्गलों के स स्थान पा च है– (१) परिमड़ल (२) वृत्त (३) त्रिकोण (४) चौकोन (५) आयत। इनके भी पुनः पा च प्रकार है– (१) स ख्यात प्रदेशी स ख्यात प्रदेशावगाढ़ (२) अस ख्यातप्रदेशी स ख्यात प्रदेशावगाढ़ (३) अस ख्यातप्रदेशी अस ख्यात प्रदेशावगाढ़ (४) अन त प्रदेशी स ख्यात प्रदेशावगाढ़ (५) अन त प्रदेशी अस ख्यात प्रदेशावगाढ़। ये कुल स स्थान के ५x५=२५ प्रकार है। इन २५ में चरमादि ६ बोल की पृच्छा रत्नप्रभा पृथ्वी के समान स पूर्ण वक्तव्यता है अर्थात् द्रव्यादेश से ६ ही विकल्पों का निषेध है, विभागादेश से चार विकल्प है और उनकी अल्पबहुत्व है। विशेषता यह है कि स ख्यात प्रदेशावगाढ़ में अस ख्यातगुणा के स्थान पर स ख्यातगुणा कहना। अस ख्यात प्रदेशावगाढ़ में पूर्णतया रत्नप्रभा के समान है। अन त

प्रदेशी अस ख्यातप्रदेशी के समान है अर्थात् वह क्षेत्रापेक्षया(अवगाहना की अपेक्षा) समान है द्रव्यापेक्षया द्रव्य अन तगुणे कहना। यथा- सबसे थोड़ा एक अचरम, उससे चरम अस ख्यातगुणे(क्षेत्रापेक्षा) द्रव्यापेक्षा चरम द्रव्य अन तगुणे हैं। उससे अचरम और चरम द्रव्य मिलकर विशेषाधिक है। फिर प्रदेश के दो बोल क्रम से कहना। इस प्रकार सभी स स्थानों के चरमाचरम भ ग और उनकी अल्पाबहुत्व समझना।

प्रश्न-६ : गति आदि के स ब ध में चरमाचरमता किस प्रकार कही है ?

उत्तर- गति आदि में चरम अचरम दो पदों की वक्तव्यता- गति आदि **११** बोल है- १. गति २. स्थिति ३. भव ४. भाषा ५. श्वासोश्वास ६. आहार ७. भाव ८. वर्ण ९.ग ध १०.रस ११.स्पर्श।

इन ११ बोलों की अपेक्षा नरकादि २४ द ड़क के एक जीव चरम या अचरम होते हैं तथा अनेक जीव चरम भी होते है और अचरम भी होते हैं। केवल पाँच स्थावर में भाषा का बोल नहीं होता है। अतः उसकी अपेक्षा १९ द ड़क में चरम अचरम होते हैं।

यथा- नारकी के नैरयिक गति की अपेक्षा चरम भी है अचरम भी है ***यावत्*** स्पर्श की अपेक्षा चरम भी है और अचरम भी है इसी तरह भवनपति देव भी, गति की अपेक्षा चरम भी है और अचरम भी है ***यावत्*** स्पर्श की अपेक्षा चरम भी है, अचरम भी है।

❋ पद-११ : भाषा ❋

प्रश्न-१ : इस पद में भाषा स ब धी सामान्य परिचय-परिज्ञान किस प्रकार है ?

उत्तर- इस पद में प्रार भिक करीब ३० सूत्रों द्वारा भाषा स ब धी सामान्य ज्ञान अनेक प्रकार से प्रश्नोत्तर की भाषा में कराया गया है। जिसे यहाँ पोइ ट रूप में दिया जा रहा है-

(१) भाषा वस्तु तत्व का बोध कराने वाली होती है। किसी भी व्यक्ति के भाव को आशय को जानने समझने में भाषा अत्य त सहयोगकारिणी उपकारिणी होती है।

(२) भाषा जीव के होती है अजीव के नहीं। कभी जीव के भाषाप्रयोग

में अजीव माध्यम बन जाता है। किन्तु स्वय अजीव भाषक नहीं है। उसमें पर प्रयोग से या विकार से ध्वनि शब्द-आवाज हो सकती है **किन्तु क ठ, ओष्ठ आदि अवयवों के स योगजन्य वचन विभक्ति रूप भाषा उनके नहीं होती।**

(३) जीवों में भी एकेन्द्रिय जीव अभाषक है उनके भाषा नहीं होती। क्यों कि बोलने का साधन मुख, जीव्हा, ओष्ठ उनके नहीं होता।

(४) पा च शरीर में औदारिक, वैक्रिय एव आहारक शरीर से भाषा की उत्पत्ति हो सकती है।

(५) भाषा चार प्रकार की होती है- १. सत्य २. असत्य ३. मिश्र ४. व्यवहार। पर्याप्तिनी, अपर्याप्तिनी के भेद से यह दो प्रकार की कही गई है। सत्य भाषा, असत्य भाषा पर्याप्तिनी(परिपूर्ण) है। मिश्र भाषा और व्यवहार भाषा अपर्याप्तिनी(अपरिपूर्ण) भाषा कही गई है।

(६) नारकी, देवता और मनुष्य में चारों प्रकार की भाषा है। एकेन्द्रिय में एक भी नहीं है, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, प चेन्द्रिय तिर्यंच में एक व्यवहार भाषा होती है। पर तु सन्नी तिर्यंच में जो मनुष्यों द्वारा पढ़ाये, अभ्यास कराये हुए, होशियार किये पशु पक्षी होते हैं, उनमें चारों ही भाषा हो सकती है।

(७) इहलोक परलोक की आराधना कराने में सहायक होने से मुक्ति प्राप्त कराने वाली भाषा **सत्य भाषा** है। इसके विपरीत मुक्ति मार्ग की विराधना कराने वाली भाषा **असत्य** है। **मिश्र** भाषा में दोनों अवस्था होती है अतः वह भी अशुद्ध है। आज्ञा देने वाली भाषा व्यवहार भाषा है, यथा-हे पुत्र! उठो, पढ़ो आदि।

(८) **अबोध** बालक **नवजात** बच्चा बोलते हुए भी यह नहीं जानता है कि मैं यह भाषा बोल रहा हूँ। वह यह भी नहीं जानता कि यह माता है पिता है आदि। उसी तरह पशु आदि भी नहीं जानते। यदि किसी को अवधिज्ञान आदि विशेष ज्ञान हो गया हो तो वह बालक, पशु आदि उक्त भाषा बोलने को जान सकते हैं कि यह मैं भाषा बोल रहा हूँ।

(९) स्त्री पुरुष आदि को व्यक्तिगत या जातिगत स बोधन करने वाली भाषा **प्रज्ञापनी** भाषा कही गई है, जो कि अमृषा भाषा है अर्थात् व्यवहार भाषा है।

(१०) स्त्री आदि दो प्रकार के होते हैं- १. वेद मोह के उदय रूप या स्तन आदि अवयव वाली वगैरह । २. भाषा शास्त्र की अपेक्षा स्त्री वचन आदि, यथा- पृथ्वी यह स्त्रीलि ग शब्द है। पानी यह पुल्लि ग शब्द है, धान्य यह नपु सकलि ग शब्द है। **(११)** भाषा के पुद्गल स्क धों का स स्थान आकार वज्र(ड़मरू) के सदृश होता है। **(१२)** प्रयोग विशेष से बोली जाने वाली, एव ग्रहण किये भाषा पुद्गलों को अनेक विभाग करके निकालने वाली भाषा उत्कृष्ट लोका त तक छहों दिशा में जाती है। सामान्य प्रयत्न से बोली जाने वाली भाषा स ख्यात, अस ख्यात योजन तक जाकर नष्ट हो जाती है। प्रयत्न विशेष से एव पुद्गलों को भेदाती हुई छोड़ी जाने वाली भाषा अन्य भाषा के पुद्गलों को भी भावित(वासित) करती है। भाषा रूप में परिणत करती हुई चलती है। **(१३)** काय योग से भाषा के पुद्गल ग्रहण कर, वचन योग से भाषा बोली जाती है। भाषा वर्गणा के पुद्गल लेने-छोड़ने में कुल दो समय लगते हैं। स्थूल दृष्टि से वचनप्रयोग में कम से कम अस ख्य समय लगते हैं। भाषा से बोले गये शब्द एक दूसरे को वासित करते हुए पर परा से उत्कृष्ट अस ख्यात काल तक लोक में रह सकते हैं। जघन्य अ तर्मुहूर्त रह सकते हैं। इस स्थिति के बाद ये पुद्गल पुनः अन्य परिणाम से परिणत हो जाते हैं।

प्रश्न-२ : चार प्रकार की भाषाओं को विस्तार से किस प्रकार समझें ?

उत्तर- यहाँ चारों भाषाओं को अनेक भेदों द्वारा समझाया है, यथा-

सत्य भाषा के १० प्रकार- (१) जनपद सत्य- यथा कोंकण देश में **'पय'** को 'पिच्च' कह दिया तो यह जनपद सत्य है। **(२) सम्मत सत्य-** लोक प्रसिद्ध हो। यथा प कज = कमल, सैवाल, कीड़े आदि भी प कज होते है किन्तु वे लोक सम्मत नहीं है। अतः कमल के लिये **'पकज'** यह लोक सम्मत शब्द है। **(३) स्थापना सत्य-** कोई वस्तु अमुक नाम से पहिचानी जाती हो, यथा- कोई मूर्ति जिस किसी भगवान के नाम से प्रसिद्ध हो वह स्थापना सत्य है । **(४) नाम सत्य-** जो भी नाम रख दिया है वह नाम सत्य। यथा-महावीर, लक्ष्मी आदि। वह अर्थ गुण न भी हो तो वह नाम सत्य है। **(५) रूप सत्य-** बहुरूपिया जिस रूप में हो उसे वह कहना रूप सत्य है। **(६) प्रतीत्य(अपेक्षा)सत्य-** किसी भी पदार्थ को किसी की अपेक्षा छोटा कहना प्रतीत्य सत्य है। वही पदार्थ दूसरे की अपेक्षा से बड़ा

भी हो सकता है। **(७) व्यवहार सत्य-**गाँव आ गया। पहाड़ जल रहा है इत्यादि। वास्तव में गाँव नहीं चलता, जीव चलता है। पहाड़ में रहे घास-फूस आदि जलते हैं। फिर भी यह व्यवहार सत्य भाषा है। **(८) भाव सत्य-**जो भावगुण जिसमें प्रमुखता से पाया जाता है उससे उस पदार्थ को कहना भाव सत्य है। यथा- काली गाय। यह भाव सत्य है। यद्यपि पा चों वर्ण अष्ट स्पर्शी में होते हैं। फिर भी प्रमुख र ग से कहा जाना भाव सत्य है। इसी प्रकार अन्य गुणों की प्रमुखता के शब्द समझ लेना। **(९) योग सत्य-**द ड़ रखने वाले को द ड़ी आदि कहना योग्य सत्य है। **(१०) उपमा सत्य-**उपमा देकर किसी को कहना, यथा- सि ह के समान शौर्य वाले मानव को **केशरी** कहना आदि। मन को घोड़ा कह देना आदि।

असत्य भाषा के १० प्रकार- १. क्रोध २. मान ३.माया ४. लोभ ५. राग ६.द्वेष ७.हास्य ८. भय। इन आठ के वशीभूत होकर अर्थात् इन विभावों के आधीन होकर जो असत्य भाषण किया जाता है वह क्रमशः क्रोध असत्य यावत् भय असत्य है। कथा, घटना आदि वर्णन करते समय बात जमाने के लिये या भाव प्रवाह में अथवा अतिशयोक्ति प्रयोगवश असत्य कथन कर देना "आख्यायिक असत्य" है। दूसरों के हृदय को चोट पहुँचाने के लिये असत्य वचन प्रयोग करना "उपघात असत्य" है।

मिश्र भाषा के १० प्रकार-१. जन्म २. मरण ३.जन्म-मरण की स ख्या के स ब ध से कुछ सत्य कुछ असत्य वचन कहना। ४-५-६. जीव, अजीव और जीवाजीव के स ब धी किसी प्रकार का सत्यासत्य कथन करना। ७-८. अन त और प्रत्येक के स ब धी मिश्रभाषा का प्रयोग करना। ९-१०. काल स ब धी और कालाश अर्थात् सूक्ष्म काल स ब धी सत्यासत्य कथन करना इत्यादि मिश्र भाषा के प्रकार है। अन्य भी अनेकों प्रकार हो सकते हैं, उन सब का अपेक्षा से इन दस भेदों में समावेश कर लेना चाहिये।

व्यवहार भाषा के १२ प्रकार-१. स बोधन सूचक वचन २. आदेश वचन ३. किसी वस्तु के मांगने रूप वचन ४. प्रश्न पूछने के वचनप्रयोग ५. उपदेश रूप वचन या तत्वज्ञान प्रदान करने वाले वचन ६. व्रत प्रत्याख्यान

के प्रेरक वचन ७. दूसरों को सुखप्रद अनुकूल वचन, सन्मान सूचक वचन ८. अनिश्चयकारी भाषा में अर्थात् वैकल्पिक भाषा में, सलाह वचन ९. निश्चयकारी भाषा में सलाह वचन। यथा- १. इन-इन तरीको में से कोई भी तरीका अपना लेना चाहिये, २. यह तरीका अपनाना ही उपयुक्त रहेगा। १०. अनेकार्थक स शयोत्पादक वचनप्रयोग करना ११. स्पष्टार्थक वचन १२. गूढ़ार्थक वचन।

विविध प्रस गोपात ये अनेक प्रकार की भाषाएँ बोली जाती है। गूढ़ार्थक, अनेकार्थक(स शयोत्पादक) वचन भी आवश्यक प्रस ग पर बोले जाते हैं। इसके बोलने में असत्य से बचने का भी कारण निहित होता है। ये वचन असत्य नहीं है एव सत्य के विषय से भी परे हैं अर्थात्- हे शिष्य ! इधर आओ । सदा नवकारसी का प्रत्याख्यान करना चाहिये। ये वचन सत्य एव असत्य के अविषयभूत है किन्तु व्यवहारोपयोगी वचन है।

इसके अतिरिक्त जो पशुपक्षी एव छोटे जीव ज तु अव्यक्त वचन प्रयोग करते हैं, वे भी व्यवहार भाषा के अन्तर्गत समाविष्ट है। क्यों कि उनके उन अव्यक्त वचनों का झूठ, सत्य या मिश्र भाषा से कोई वास्ता नहीं होता है।

इस प्रकार इस व्यवहार भाषा की परिभाषा यह निष्पन्न हुई कि जो वचन अव्यक्त हो, व्यवहारोपयोगी हो और जिनका झूठ, सत्य एव मिश्र से कोई वास्ता न हो वह व्यवहार भाषा है।

प्रश्न-३ : इस भाषाप्रयोग से आराधना-विराधना किस प्रकार स भव होती है ?

उत्तर- दशवैकालिक सूत्र, अध्ययन-४ के अनुसार जीव यतनापूर्वक चलना, बोलना, खाना आदि प्रवृत्तियें करते हुए भी अपेक्षित पापकर्म का ब ध नहीं करता है। भगवतीसूत्र के अनुसार उपयोगपूर्वक ईर्या शोधन करते हुए अणगार के पाँव के नीचे सहसा प चेन्द्रिय प्राणी दब जाय तो भी उस अणगार को उस जीव विराधना स ब धी सावद्य-पाप क्रिया नहीं लगती है।

उसी प्रकार इस भाषा पद में भी यह समझाया गया है कि उपयोग पूर्वक बोलते हुए भी यदि असत्य या मिश्र भाषा का सहसा प्रयोग हो जाय तो भी वह जीव विराधक नहीं होता है किन्तु जो जीव अस यत,

अविरत है; असत्य, मिश्र किसी भी वचन का जिसके न त्याग है और न ही वैसे वचन नहीं बोलने का कोई स कल्प है, वह विवेक और जागरुकता रहित व्यक्ति सत्य एव व्यवहार भाषा बोलता हुआ भी आराधक नहीं है, अपितु विराधक है, एव जागरुकता वाले तथा भाषा के विवेक में उपयोग वाले व्यक्ति के द्वारा कदाचित चारों में कोई भी भाषा का प्रयोग हो जाय तो भी वह आराधक है। लक्ष्य रहित, विवेक एव उपयोग रहित, असत्य के त्याग रूप विरति से रहित, व्यक्ति के द्वारा चारों में से कोई भी भाषा का प्रयोग हो जाय तो भी वह आराधक नहीं गिना जाता अपितु विराधक ही गिना जाता है। ***इसका यह तात्पर्य है कि भूल को क्षम्य माना जा सकता है कि तु अविवेक लापरवाही आदि क्षम्य नहीं गिनी जाती है।***

अतः वचनप्रयोग करने वाले सत्यार्थी व्यक्ति को भाषा स ब धी वचन प्रयोगों का ज्ञान अवश्य रखना चाहिये तथा वक्ता या प्रवचनकार मुमुक्षु आत्माओं को उक्त चार प्रकार की भाषा के भेद प्रभेद और परमार्थ का ज्ञान एव अनुभव भी हासिल करना चाहिये। साथ ही इन आगे कहे जाने वाले १६ प्रकार के वचन प्रयोगों का भी ज्ञान एव अभ्यास करना चाहिये ।

सौलह प्रकार के वचन-१. एकवचन के प्रयोग २. द्विवचन के प्रयोग ३. बहुवचन के प्रयोग ४. स्त्री वचन ५. पुरुष वचन ६.नपुसक वचन ७. आध्यात्म वचन-वास्तविक अ तर गभाव के वचन-सहज स्वाभाविक सरलतापूर्ण वचन। ८. गुण प्रदर्शक वचन ९. अवगुण प्रदर्शक वचन १०. गुण बताकर अवगुण प्रकट करने के वचन ११. अवगुण कह कर फिर गुण प्रकट करने वाले वचन १२. भूतकालिक वचनप्रयोग १३. वर्तमान कालिक वचनप्रयोग १४. भविष्यकालिक वचन प्रयोग १५. प्रत्यक्षीभूत विषय के वचन प्रयोग १६. परोक्षभूत विषय की कथन पद्धति।

इत्यादि प्रकार के वचनों का प्रयोग कब कहाँ किस प्रकार किया जाता है, कब कौन सी क्रिया का, शब्द का, लि ग का, वचन का प्रयोग किया जाता है, तत्स ब धी भाषा ज्ञान करना तथा उसका अभ्यास एव अनुभव करना भी आराधक भाषाप्रयोग के इच्छुक साधक को एव विशेषकर वक्ताओं को अपना आवश्यक कर्तव्य समझना चाहिये।

प्रश्न-४ : भाषा द्रव्यों स ब धी पौद्गलिक-तात्त्विक निरूपण किस प्रकार है ?

उत्तर- प्रस्तुत में भाषा स ब धी सामान्य परिचय एव विवेकज्ञान कराने के बाद तात्विक निरूपण भी विस्तार से एव सूक्ष्मता पूर्वक किया गया है। यथा-

ग्रहण योग्य भाषा द्रव्यों स ब धी तात्त्विक ज्ञान- (१)वचनप्रयोग हेतु भाषा वर्गणा के पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं अन्य वर्गणा के नहीं। (२) स्थान-स्थित पुद्गल ग्रहण किये जाते, चलायमान नहीं (३) अन तप्रदेशी पुद्गल ग्रहण किये जाते, अस ख्यातप्रदेशी नहीं। (४) अस ख्य आकाश प्रदेश की अवगाहना वाले पुद्गल ग्रहण किये जात हैं। (५) उन पुद्गल समूह में कई स्क ध एक समय की स्थिति वाले भी हो सकते हैं, उत्कृष्ट अस ख्य समय की स्थिति वाले भी हो सकते हैं। (६) वे पुद्गल चौफर्शी (चार स्पर्श वाले) होते हैं अर्थात् उनमें वर्णादि १६ बोल (५ वर्ण २ गध ५ रस और ४ स्पर्श) पाये जाते हैं। (७) वे पुद्गल एक गुण काले भी हो सकते हैं यावत् अन तगुण काले भी हो सकते हैं। इसी प्रकार १६ ही बोल एक गुण यावत् अन तगुण समझ लेना। (८) भाषा वर्गणा के पुद्गल जो जीव के स्पर्श में है अर्थात् जिस शरीर में आत्मा रही हुई उस शरीर से स्पर्शित एव अवगाहित है उन्हें ग्रहण किया जाता है अन्य अनवगाढ़ या अस्पर्शित को नहीं। क ठ ओष्ठ के निकटतम अन तर है उन्हें ग्रहण किया जाता है पर पर को नहीं। (९) वे पुद्गल छोटे भी हो सकते हैं और बड़े भी हो सकते हैं। (१०) अवगाढ़ और छहों दिशाओं से ग्रहण किये जाते है। भाषाप्रयोग के प्रार भ में मध्य में और अ त में जब तक बोलना है तब तक सभी समयों में भाषा वर्गणा के पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं। बोलना ब द करना हो तो कभी भी पुद्गल ग्रहण करना रुक सकता है। (११) पहले समय में जो भाषा द्रव्य ग्रहण होते है उनका दूसरे समय में निस्सरण छोड़ना होता है दूसरे समय जिनका ग्रहण होता है तीसरे समय में उनका निस्सरण होता है। (१२) यों लगातार अस ख्य समय तक ग्रहण निस्सरण हुए बिना स्वर अथवा व्य जनों की(अक्षरों की) निष्पत्ति नहीं होती है। (१३) प्रथम समय में केवल ग्रहण ही होता है निस्सरण नहीं होता। अ तिम समय में केवल निस्सरण होता है और बीच के

समयों में ग्रहण निस्सरण दोनों क्रियाएँ होती है। एक समय में योग्य अनेक क्रिया हो सकना जिनानुमत है। एक समय में उपयोग एक ही होता है। मिथ्यात्व और सम्यक्त्व ऐसी विरोधी क्रियाएँ एक साथ नहीं होती है किन्तु कई प्रकृति का ब ध, उदय, उदीरणा, निर्जरा आदि विभिन्न क्रियाएँ एक समय में होती रहती है।

(१४) सत्य असत्य आदि जिस रूप में भाषावर्गणा के पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं उसी रूप में उनका निस्सरण होता है अन्य रूप में नहीं।

(१५) स्वविषय के अर्थात् भाषा के योग्य पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं, अन्य नहीं। वे पुद्गल अनुक्रम प्राप्त ग्रहण किये जाते हैं, व्युत्क्रम से नहीं।

(१६) भाषावर्गणा के पुद्गल भेदाते(भेद होते हुए)निकलते है तो वह पुद्गल भेद पा च प्रकार का हो सकता है- **(१) ख ड़ा भेद**-लोहा, ता बा, चांदी, सोना आदि के ख ड़ होने की तरह। **(२) प्रतर भेद-** बा स, बेंत, कदली, अभरक(भोड़ल)आदि के भेद की तरह। **(३) चूर्ण भेद**-पीसे हुए पदार्थों के समान चूर्ण बन जाना। **(४) अणुतड़िया भेद-** जलस्थानों में पानी के सूख जाने पर मिट्टी में तिराड़े पड़ जाने के समान **(५) उक्करिया भेद**-मसूर, मूँग, उड़द, तिल, चावल आदि फलियों के फटने रूप भेद के समान।

भाषावर्गणा के पुद्गलों में ये पा च प्रकार के भेद हो सकते हैं। इनकी अल्पाबहुत्व इस प्रकार है- १. सबसे थोड़ा उक्करिया (उत्कटिका) भेद वाले २. अनुतटिका भेद वाले अन त गुणे ३. चूर्ण भेद वाले उससे अन त गुणे ४. उससे प्रतर भेद वाले अन त गुणा ५. उससे ख ड़ा भेद वाले अस ख्य गुणे।

(१७) यह समुच्चय जीव की अपेक्षा जो भी कथन किया गया है उसे नरकादि २४ द ड़क में यथायोग्य समझ लेना चाहिये अर्थात् जहाँ जो भाषा होती है उस द ड़क में उस भाषा के आश्रय से कथन कर लेना चाहिये। एकेन्द्रिय अभाषक है। अतः उनका कोई भी कथन नहीं किया जाता है। शेष १९ द ड़क में कथन करना ही यहाँ अपेक्षित है।

पद-१२ : बद्ध-मुक्त शरीर

प्रश्न-१ : पाँच शरीरों का स्पष्ट स्वरूप-परिचय क्या है ? और २४ द ड़क के जीवों में कितने शरीर होते हैं ?

उत्तर- चार गति में भ्रमण करने वाले समस्त जीव सशरीरी होते हैं। शरीर रहित बने हुए जीव निज आत्मस्वरूप को प्राप्त कर सदा के लिये जन्म मरण के इस स सार से मुक्त हो जाते हैं। स सार में रहने वाले जीवों के एक ही शरीर या एक समान शरीर नहीं होता है वे विभिन्न अनेक शरीर वाले होते हैं वे शरीर कुल पा च कहे गये है- (१) औदारिक (२) वैक्रिय (३) आहारक (४) तैजस (५) कार्मण।

औदारिक शरीर-उदार=प्रधान शरीर या स्थूल शरीर अथवा विशाल शरीर। यह शरीर स सार में अधिकतम याने अन तगुणे जीवों के होता है। तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि महापुरुषों के भी यह शरीर होता है। इसलिये भी इस शरीर की प्रमुखता या प्रधानता कही गई है। सबसे बड़ी प्रधानता-महत्ता तो इस शरीर की यह है कि इस शरीर के माध्यम से जीव स सार सागर से तिर कर सदा के लिये मुक्त हो सकता है। अतः देवता भी इस शरीरमय जीवन की चाहना करते है, ऐसा यह प्रथम औदारिक शरीर तिर्यंच, मनुष्य के होता है।

वैक्रिय शरीर-जो शरीर विविध एव विशेष प्रकार की क्रिया कर सकता है अर्थात् नये नये अनेक रूप धारण कर सकता है। यह विशेष क्रिया वाला **वैक्रिय शरीर** है। यह नारक देवों को जन्म से ही प्राप्त होता है। मनुष्य तिर्यंचों में भी किसी किसी को विशिष्ट क्षयोपशम से प्राप्त होता है। वायुकाय के जीवों को भी यह शरीर स्वभाव से प्राप्त होता है।

आहारक शरीर-जिन प्ररूपित किन्हीं स्थलों को प्रत्यक्ष देखने की जिज्ञासा से अथवा किन्हीं तत्त्वों में उत्पन्न शका का समाधान प्राप्त करने के लिये यह शरीर बनाया जाता है। आहारक लब्धिस पन्न अणगार के यह शरीर हो सकता है। १४ पूर्वों के ज्ञान वाले को ही यह आहारक लब्धि होती है और वह लब्धि स पन्न अणगार सुदूर क्षेत्र में रहे सर्वज्ञ वीतराग प्रभू से प्रत्यक्षीकरण कर तत्वों का समाधान प्राप्त करने के लिये लब्धि का प्रयोग

कर आहारक शरीर का एक पुतला बना कर भेजता है। वह पुतला ही आहारक शरीर है। समाधान प्राप्त करके वह पुतला पुनः अपने स्थान पर आ जाता है। इसी प्रकार आगम वर्णित न दीश्वरद्वीप, मेरुपर्वत आदि स्थलों को भी प्रत्यक्ष देख कर वह आहार शरीर का पुतला पुनः आ जाता है। आने, जाने, देखने, पूछने की समस्त क्रिया में उस आहारक शरीर को अ तर्मुहूर्त का समय लगता है। क्यों कि इस आहारक शरीर की उत्कृष्ट स्थिति अ तर्मुहूर्त की ही है। अवगाहना उत्कृष्ट एक हाथ की होती है।

तैजस शरीर- यह औदारिक या वैक्रिय शरीर के साथ में रहता है, आहार के पाचन क्रिया का, रस, रक्त, धातु आदि के निर्माण का एव स चालन का कार्य करता है। औदारिक या वैक्रिय पूरे शरीर में यह व्याप्त रहता है एव स सार के समस्त जीवों को अनादिकाल से होता है। मोक्ष जाने पर ही यह शरीर आत्मा का साथ छोड़ता है। मृत्यु पाकर जीव जब औदारिक या वैक्रिय शरीर को वहीं छोड़कर परभव में जाता है तब भी यह शरीर आत्मा के साथ ही रहता है। इसका शरीर में प्रमुख स्थान और कर्तव्य जठराग्नि का है इसलिये इसका नाम तैजस शरीर है।

कार्मण शरीर-कर्मों के भ ड़ार रूप, स्टोक रूप, पेटी रूप, जो शरीर है अर्थात् जिस शरीर में आत्मा के समस्त कर्मों का सभी प्रकार का विभाग वाइज स ग्रह रहता है वह कार्मण शरीर है। यह शरीर भी तैजस शरीर के समान स सार के समस्त जीवों के साथ अनादि से हैं और मुक्त अवस्था प्राप्त करने के पूर्व तक रहेगा। इस प्रकार यह शरीर कर्मों का स ग्राहक एव आत्मा के स सार भ्रमण स चालन का मुख्य स चालक है।

२४ द ड़क में शरीर-नारकी देवता में तीन शरीर होते हैं-१.वैक्रिय २. तैजस ३. कार्मण। वायुकाय एव तिर्यंच प चेन्द्रिय में चार शरीर होते हैं- १. औदारिक २. वैक्रिय ३. तैजस ४. कार्मण। सन्नी मनुष्य में पा चों ही शरीर होते है। शेष ४ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय आदि में तीन शरीर होते हैं- १. औदारिक २. तैजस ३. कार्मण।

प्रश्न-२ : लोक में पाँचों शरीर की स ख्या रूप परिमाण क्या है?

उत्तर- पा चों शरीर दो दो प्रकार के है- १. बद्ध(जीव के साथ रहे हुए) २. मुक्त(जीव से छूटे हुए)।

औदारिक बद्धमुक्त शरीर-१. औदारिक के बद्ध शरीर(बद्धेलक) सख्या माप से अस ख्याता है। काल माप से अस ख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के समय तुल्य है। क्षेत्र माप की अपेक्षा स पूर्ण लोक का जितना क्षेत्र है वैसे अस ख्य लोक जितने क्षेत्र के आकाश प्रदेशों की स ख्या के तुल्य है।

२. मुक्केलग(जीव से छुटे हुए) औदारिक शरीर अन त है क्यों कि आत्मा से छूटते ही एक शरीर के अन त विभाग हो जाते है। अतः अस ख्य बद्धेलक होते हुए भी मुक्केलग अन त कहे हैं। ये शरीर के मुक्केलग जब तक अन्य परिमाण को प्राप्त नहीं हो जाते तब तक पूर्व शरीर के मुक्केलग ही गिने जाते हैं। ऐसे औदारिक के मुक्केलग स ख्या की अपेक्षा अन त है, कालमाप की अपेक्षा अन त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के समय तुल्य है, क्षेत्र माप की अपेक्षा लोक जितने अन त लोक हो, उनके जितने आकाशप्रदेश होवे, उसके तुल्य है एव द्रव्य की अपेक्षा ये औदारिक मुक्केलग शरीर अभव्यों की स ख्या से अन तगुणे और सिद्धों की स ख्या के अन तवें भाग जितने होते हैं।

वैक्रिय बद्ध मुक्त शरीर- वैक्रिय शरीर स ख्या से- अस ख्य है। काल से- अस ख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के समय तुल्य। क्षेत्र से- १४ राजू ल बा और यत्र-तत्र विभिन्न प्रमाण में चौड़ा यह लोक है। इसे यदि कल्पना से घन कर दिया जाय, एक ठोस पिंड़ बना दिया जाय तो सात राजू ल बा, चौड़ा, जाड़ा घन बन जाता है। जिसका एक प्रतर भी सात राजू का ल बा चौड़ा और एक प्रदेशी जाड़ा होता है। उस प्रतर की एक श्रेणी सात राजू की ल बी एक प्रदेश चौड़ी और एक प्रदेश जाड़ी होती है। एक प्रतर में ऐसी अस ख्य श्रेणियाँ होती है और उस घन में वैसे अस ख्य प्रतर होते हैं। उस सात राजू प्रमाण एक श्रेणी में अस ख्य आकाश प्रदेश होते है। वे भी अस ख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के समय तुल्य होते हैं। वैक्रिय शरीर के बद्धेलक ऐसी अस ख्य श्रेणियों के प्रदेश तुल्य होते है। (वे अस ख्य श्रेणियाँ उस प्रतर की श्रेणियों के अस ख्यातवें भाग जितनी समझना चाहिये।) अर्थात् सूचि(एक प्रदेशी) प्रतर से अस ख्यातवें भाग की अस ख्य श्रेणियाँ के आकाश प्रदेश के तुल्य वैक्रिय शरीर के बद्धेलक होते हैं।

२. मुक्केलग शरीर स ख्या से अन त है जिनका स्वरूप द्रव्य,क्षेत्र,काल के कथन की अपेक्षा औदारिक के मुक्केलग के समान है अर्थात् अन त

का कथन सभी अपेक्षाओं में समान होते हुए भी उस अन त अन त में आपस में अ तर हो सकता है। अतः औदारिक के मुक्केलग से ये कम होते हैं।

आहारकबद्ध मुक्त शरीर-ऊपर बताया गया है कि लब्धिधारी मुनिराज के ही यह शरीर होता है, अतः आहारक के बद्ध शरीर कभी होते हैं, कभी नहीं होते। जब होते हैं तो जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट अनेक हजार हो सकते हैं अर्थात् एक साथ पाँच भरत, पाँच ऐरावत, पाँच महाविदेह में आहारक शरीर बनाने वाले मुनिराजों का स योग मिल जाय तो उत्कृष्ट ५-१० हजार भी हो सकते हैं। २-मुक्केलग अन त होते हैं। क्षेत्र काल आदि की कथन पद्धति औदारिक के समान है, फिर भी औदारिक से बहुत कम होते हैं।

तैजस, कार्मण के बद्ध मुक्त शरीर- तैजस कार्मण शरीर सदा साथ ही रहते हैं और आत्मा के मोक्ष जाते समय ये दोनों साथ में छूट जाते हैं। १. इनके बद्धेलक अन त है, क्षेत्र आदि का कथन औदारिक मुक्केलग के समान है किन्तु द्रव्य माप की अपेक्षा सर्व स सारी जीवों के तुल्य है, सिद्धों से अन तगुणे है और सर्व जीवों के अन तवें भाग(सिद्धों जितने) न्यून है। २. इनके मुक्केलग भी अन त है। अन त का क्षेत्र काल माप इसके ही बद्धेलक के समान है, द्रव्य माप की अपेक्षा सर्व जीवों की स ख्या से अन तगुणा है एव सर्व जीवों की स ख्या का वर्ग किया जाय तो उस वर्गराशि से अन तवें भाग के तुल्य तैजस, कार्मण के मुक्केलगशरीर है।

टिप्पण- ***पुहुत्त शब्द 'अनेक' के अर्थ में है इस स ब धी जानकारी के लिये देखें-जीवाभिगम प्रश्नोत्तर भाग-६, पृष्ठ-१६३.***

प्रश्न-३ : २४ द ड़कों में शरीरों की स ख्या किस प्रकार है ?

उत्तर- नारकी- औदारिक शरीर के बद्धेलक नहीं है और मुक्केलग पूर्व भवों की अपेक्षा अन त है। वे समुच्चय जीव के समान समझना। वैक्रिय शरीर के बद्धेलक अस ख्यात है अर्थात् घनीकृत लोक प्रतर के अस ख्यातवें भाग की अस ख्य श्रेणियों के प्रदेश तुल्य। उन श्रेणियों का माप यह है कि एक अ गुल जितने श्रेणि क्षेत्र में जितने आकाश प्रदेश होते है उनका प्रथम वर्गमूल जो भी हो उसे दूसरे वर्गमूल के साथ गुणा करने से जो गुणनफल आये उतनी(अस ख्य)श्रेणियाँ समझना। इसे कल्पित स ख्या से इस प्रकार

समझाया जाता है, यथा- मान लो कि एक अ गुल क्षेत्र में २५६ श्रेणी है। उसका प्रथम वर्गमूल १६ है, दूसरा वर्गमूल ४ है। १६ को ४ से गुणा करने पर १६x४=६४गुणनफल आता है। इसी प्रकार अस ख्य गुणनफल आयेगा। वैक्रिय के मुक्केलग औदारिक के मुक्केलग के समान है। आहारक शरीर के बद्धेलक मुक्केलग इनके औदारिक समान है। तैजस-कार्मण के बद्धेलक मुक्केलग वैक्रिय के समान है।

भवनपति देवता-औदारिक और आहारक शरीर नारकी के समान है। वैक्रिय शरीर के बद्धेलक नारकी के समान है किन्तु श्रेणियों का माप-प्रथम वर्गमूल का स ख्यातवाँ भाग समझना जैसे २५६ का प्रथम वर्गमूल १६ है इसका स ख्यातवाँ भाग ५-६ आदि हैं इसके समान अस ख्य श्रेणियाँ है। अर्थात् नारकी से असुरकुमार(६४/५)इतने कम है। मुक्केलग नारकी के समान एव तैजसकार्मण के बद्धेलक मुक्केलग वैक्रिय के समान है।

पा च स्थावर-पा चों स्थावर के औदारिक शरीर के बद्धेलक मुक्केलग समुच्चय औदारिक शरीर के समान है। औदारिक के समान ही तैजस कार्मण शरीर के बद्धेलक मुक्केलग शरीर है। वैक्रिय और आहारक के बद्धेलक नहीं होते है। मुक्केलग इनके औदारिक के मुक्केलग के समान।

वायुकाय के वैक्रिय के बद्धेलक क्षेत्र पल्योपम के अस ख्यातवें भाग के समयतुल्य अस ख्य होते हैं। मुक्केलग समुच्चय वैक्रिय के समान है। वनस्पतिकाय के तैजस कार्मण शरीर के बद्धेलक समुच्चय कार्मण शरीर के समान अन त है और मुक्केलग भी अन त है।

तीन विकलेन्द्रिय-औदारिक के बद्धेलक अस ख्य है। घनीकृत लोक प्रतर के अस ख्यातवें भाग की अस ख्य श्रेणी के प्रदेशतुल्य। अस ख्य श्रेणी का माप-१.अस ख्यात क्रोड़ाक्रोड़ योजन में जितनी श्रेणियाँ होवे, उतनी श्रेणियों के प्रदेश तुल्य बेइन्द्रिय है। २. एक श्रेणी(एक प्रदेशी)में जितने आकाश प्रदेश है उनके वर्गमूल के वर्गमूल निकालते जावें अस ख्यबार वर्गमूल निकलेंगे। अस ख्यबार के सभी वर्गमूलों की स ख्या का जो योग आता है उतनी श्रेणियाँ जानना। ३. अ गुल के अस ख्यातवें भाग जितने ल बे चौड़े क्षेत्र में एक-एक बेइन्द्रिय को रखा जाय तो सात राजू ल बा चौड़ा प्रतर भर जाता है।

तैजस, कार्मण औदारिक के समान है। वैक्रिय और आहारक शरीर

के बद्धेलक नहीं होते हैं, मुक्केलग समुच्चय औदारिक के समान है।

तिर्यंच प चेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय के समान ही प चेन्द्रिय के बद्धेलक है। मुक्केलग भी पूर्व की तरह है। आहारक शरीर नहीं है। तैजस कार्मण के बद्धेलक मुक्केलग इसके औदारिक के समान।

एक अ गुल श्रेणी के प्रदेशों के प्रथम वर्गमूल के अस ख्यातवें भाग में जितने आकाश प्रदेश हो उतने वैक्रिय शरीर के बद्धेलक होते हैं। मुक्केलग समुच्चय के समान है।

मनुष्य-औदारिक शरीर के बद्धेलक कदाचित स ख्याता होते हैं कदाचित अस ख्य होते हैं। स ख्याता होवे इसका माप इस प्रकार है-

(१) स ख्याता क्रोड़ाक्रोड़ अर्थात् (२) तीन यमल पद से ऊपर चार यमल पद से नीचे। (३) छट्ठा वर्ग को पाँचवें वर्ग से गुणा करने पर जो राशि आवे (४) दो को दो से ९६ बार गुणा करने पर जो राशि आवे अथवा जिस राशि में ९६बार दो का भाग जावे वह राशि। यह राशि सन्नी मनुष्य की अपेक्षा उत्कृष्ट राशि है। जघन्य इससे कुछ कम मनुष्य सदा मिलते हैं।

असन्नि मनुष्यों की अपेक्षा अस ख्याता बद्धेलक होते हैं। उसका माप इस प्रकार है- अ गुल जितने श्रेणी क्षेत्र में जितने आकाश प्रदेश हो उसके पहले वर्गमूल को तीसरे वर्गमूल से गुणा करने पर जो अस ख्य राशि आवे उतनी ल बाई चौड़ाई के क्षेत्र में एक असन्नि मनुष्य को रखा जाय तो एक प्रदेशी ७ राजू की ल बी श्रेणी स पूर्ण भर जाय, उतनी राशि में एक कम करने से जो राशि आती है, उतने अस ख्यात असन्नि मनुष्य उत्कृष्ट हो सकते हैं अर्थात् एक प्रदेशी श्रेणी के अस ख्यातवें भाग के प्रदेशतुल्य। जघन्य तो एक दो तीन हो सकते हैं और पूर्ण विरह भी पड़ता है।

यमलपद-वर्ग-दो को दो से गुणा करने पर प्रथम वर्ग ४ है। चार को चार गुणा करने पर द्वितीय वर्ग १६ है, इस तरह तीसरा वर्ग २५६ है, चौथा वर्ग ६५५३६ है पा चवाँ वर्ग ४२९४९६७२९६ और छट्ठा वर्ग १८४४६७४४०७३७०९५१६१६ दो वर्ग का एक यमल होता है इन छः वर्गो के तीन यमल पद हुए। अर्थात् छट्ठे वर्ग की स ख्या तीसरा यमल पद है इससे ऊपर और चौथे यमल पद से नीचे मनुष्यों की स ख्या है। जो पा चवें वर्ग को छट्ठे वर्ग से गुणा करने पर प्राप्त होने वाली राशि

है। वह राशि २९ अ कों में इस प्रकार है- ७९२२८१६२५१४२६४३३ ७५९३५४३९५०३३६ ।

इस राशि में ९६ बार दो का भाग देने पर अ त में **एक** प्राप्त होगा। अतः इसे छियानवे छेदनक दाई राशि कहा है।

मनुष्य में वैक्रिय शरीर के बद्धेलक स ख्याता है और मुक्केलग औदारिक के मुक्केलग के समान है। आहारक शरीर के बद्धेलक मुक्केलग शरीर समुच्चय आहारक के समान है। तैजस कार्मण के बद्धेलक मुक्केलग इसके औदारिक शरीर के बद्ध-मुक्त के समान होते हैं।

व्य तरदेव-औदारिक और आहारक के बद्धेलक मुक्केलग नारकी के समान है। वैक्रिय शरीर के बद्धेलक विकलेन्द्रिय के औदारिक बद्धेलक के समान है किन्तु विशेषता यह है कि अ गुल के अस ख्यातवें भाग में एक बेइन्द्रिय को रखने का कहा गया किन्तु व्य तरदेव को स ख्यात सौ योजन ल बे चौड़े क्षेत्र में एक एक को रखा जाय तो ७ राजू ल बा चौड़ा प्रतर क्षेत्र भर जाता है। मुक्केलग समुच्चय वैक्रिय के समान है। तैजस कार्मण के बद्धेलक मुक्केलग शरीर इसके वैक्रिय के समान होते हैं।

ज्योतिषी देव- स पूर्ण कथन व्य तर के समान है विशेषता यह है कि २५६ योजन ल बे चौड़े क्षेत्र प्रतर में एक ज्योतिषी को रखा जाय तो ७ राजू ल बा चौड़ा प्रतर पूर्ण भर जाता है। इतने(अस ख्यात)ज्योतिषी देव के वैक्रिय शरीर के बद्धेलक है।

वैमानिकदेव-वैक्रिय के अस ख्यात बद्धेलक का प्रमाण-अ गुल जितने क्षेत्र की श्रेणी में जितने आकाशप्रदेश है, उसके द्वितीय वर्गमूल को तीसरे वर्गमूल से गुणा करने पर जितनी स ख्या आवे उतनी श्रेणियों के प्रदेश तुल्य। तीसरे वर्ग का घन करने पर भी वही श्रेणी राशि प्राप्त होती है।

वैक्रिय के मुक्केलग औदारिक के समान है। तैजस कार्मण के बद्धेलक मुक्केलग इसके वैक्रिय के बद्धेलक मुक्केलग के समान है। औदारिक और आहारक के बद्धेलक मुक्केलग नारकी के समान है।

ये सभी बद्धेलक मुक्केलग की उत्कृष्ट स ख्या बताई गई है। मुक्केलग शरीर सभी द ड़क में अन त की अपेक्षा प्रायः समान कहे गये हैं फिर भी अपने अपने बद्धेलकों के अनुपात से उनमें अ तर समझ लेना चाहिये।

प्रश्न-४ : स क्षेप में २४ द ड़कों के शरीर की स ख्या किस तरह समझ सकते है ?

उत्तर- प्रार भिक सामान्य स्वाध्यायियों को समझने के लिये प्रश्न-३ में दिया स्पष्टीकरण ध्यान से पढ़ लेना चाहिये। स क्षेप में या तात्कालिक किसी द ड़क की शरीर स ख्या जानना हो तो उसके लिये निम्न कोष्ठक में देखना चाहिये-

२४ द ड़क में शरीर स ख्या(सांकेतिक रूप में) :-

क्रम	जीव-शरीर-बुद्ध-मुक्त	विशिष्ट राशि ज्ञान
१	औदारिक बद्धेलक	अस ख्य लोक के प्रदेश तुल्य
२	औदारिक मुक्केलग	अन त लोक के प्रदेश तुल्य, अभव्यों से अन तगुणा, सिद्धों से अन तवें भाग
३	वैक्रिय बद्धेलक	सूचि प्रतर के अस ख्यातवें भाग की अस ख्य श्रेणियों के प्रदेश तुल्य
४	आहारक बद्धेलक	जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट अनेक हजार
५	तैजस कार्मण बद्धेलक	सर्व स सारी जीवों की स ख्या के समान, सिद्धों से अन तगुणे।
६	तैजस कार्मण मुक्केलग	सर्व जीवों के वर्ग के अन तवें भाग, सर्व जीवों से अन तगुणे।
७	नारकी, वैक्रिय बद्धेलक	अ गुल प्रदेशों का प्रथम वर्गमूल × दूसरा वर्गमूल = प्रतर के अस ख्यातवें भाग की अस ख्य श्रेणियाँ, उनके प्रदेशों के तुल्य।
८	भवनपति वैक्रियबद्ध०	अ गुल प्रथम वर्गमूल का स ख्यातवें भाग जितनी श्रेणियों के प्रदेश तुल्य।
९	पा चस्थावर औदा०बद्ध०	समुच्चयऔदारिक के समान, अस ख्य लोक के प्रदेश तुल्य।
१०	वायुकाय वैक्रिय बद्ध०	क्षेत्र पल्योपम के अस ख्यातवें भाग के समय तुल्य।
११	वनस्पति के कार्मण बद्ध०	समुच्चय कार्मण के समान

क्रम	जीव-शरीर-बुद्ध-मुक्त	विशिष्ट राशि ज्ञान
१२	३ विकले.औदारिक बद्ध	एकश्रेणी के सभी वर्गमूलों के योग की राशि प्रमाण अस ख्यात श्रेणियों के प्रदेश तुल्य। अ गुल के अस ख्यातवें भाग की अवगाहनावाले बेइन्द्रियों से एक प्रतर भर जाय उतने बद्धेलक।
१३	तिर्यंच प चे.वैक्रिय बद्ध.	अ गुल प्रथम वर्गमूल का अस ख्यातवाँ भाग
१४	मनुष्य औदारिक बद्ध.	१. २९ अ क २. पा चवाँ वर्ग × छट्ठावर्ग ३. $(२)^{९६}$ ४. तीसरे चौथे यमल पद के बीच में।
१५	मनुष्य वैक्रिय बद्ध.	१-२-३, उत्कृष्ट स ख्याता।
१६	मनुष्य आहारक बद्ध.	१-२-३, उत्कृष्ट अनेक हजार।
१७	अस ज्ञी मनुष्य औदारिक बद्धेलक	अ गुल प्रथम वर्गमूल × तृतीय वर्गमूल के जो आकाश प्रदेश होते हैं उतनी ल बी चौड़ी अवगाहना से भरने पर सूची श्रेणी भर जाय, एक कम रहे इतने हैं।
१८	व्य तर वैक्रिय बद्धेलक	स ख्यात सो योजन क्षेत्र में एक एक को रखने पर प्रतर(चौतरा) भर जाय।
१९	ज्योतिषी वैक्रिय बद्धेलक	२५६ योजन क्षेत्र में एक एक को रखने पर प्रतर भर जाय।
२०	वैमानिक वैक्रिय बद्धेलक	अ गुल द्वितीय वर्गमूल × तृतीय वर्गमूल प्रमाण अस ख्य श्रेणियों के प्रदेश तुल्य।तीसरे वर्ग के घनरूप।

❋ पद-१३ : परिणाम ❋

प्रश्न-१ : जीव परिणाम किसे कहते है और वे कितने हैं ?

उत्तर- जीव अपने पुरुषार्थकृत कर्मो के फलस्वरूप, उदय एव क्षयोपशम रूप जिन जिन अवस्थाओं को प्राप्त करता है या उपार्जन करता है वे सभी जीव के परिणाम कहलाते हैं। प्रस्तुत में वे परिणाम मूलतः **१०** एव विभागतः **५०** कहे गये हैं। यथा - १. गति चार २. इन्द्रिय पा च ३. कषाय चार ४. लेश्या छः ५. योग तीन ६. उपयोग दो ७. ज्ञान पा च, अज्ञान तीन ८. दर्शन तीन (सम्यक, मिथ्या, मिश्र) ९. चारित्र पा च, १०.

वेद तीन। ये कुल **४३** प्रकार है। इनमें १. अनिन्द्रिय २. अकषायी ३. अलेशी ४. अजोगी ५. अचारित्र ६. चारित्राचरित्र ७. अवेदी ये सात प्रकार और मिलाने से सूत्रोक्त **५०** परिणाम होते हैं।

प्रश्न-२ : २४ द ड़क में ये परिणाम किस प्रकार पाये जाते है ?

उत्तर- चौबीस दण्ड़क में परिणाम स ख्या इस प्रकार है-

(१) नारकी में २९- १ गति, ५ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ लेश्या, ३ योग, २ उपयोग, ३ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन, १ अस यत, १ वेद।

(२) भवन पति व्य तर में ३१- ऊपरोक्त २९ में २ वेद, १ लेश्या यों तीन अधिक होने से ३२ और एक वेद कम होने से ३१।

(३) ज्योतिषी और २ देवलोक में २८-तीन लेश्या कम है।

(४) ३ से १२ देवलोक में २७-स्त्री वेद कम है।

(५) नवग्रैवेयक में २७।

(६) पा च अणुत्तर विमान में २२- मिथ्यादृष्टि और तीन अज्ञान तथा मिश्रदृष्टि, ये ५ कम।

(७) तीन स्थावर में १८-१ गति, १ इन्द्रिय, ४ कषाय, ४ लेश्या, १ योग, २ उपयोग, २ अज्ञान, १ दर्शन, १ अचारित्र (अस यम), १ वेद।

(८) तेउ वायु में १७-एक लेश्या कम है।

(९) तीन विकलेन्द्रिय में २२, २३, २४-ऊपरोक्त १७ में वचन योग, २ ज्ञान, एक दृष्टि, ये २१ हुए। फिर एक-एक इन्द्रिय बढ़ने से २२, २३, २४ हुए।

(१०) तिर्यंच प चेन्द्रिय, में ३५- १ गति, ५ इन्द्रिय, ४ कषाय, ६ लेश्या, ३ योग, २ उपयोग, ३ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन, २ चारित्र, ३ वेद।

(११) मनुष्य में ४७- पचास में तीन गति कम है।

इस प्रकार ये इतने इतने जीव परिणाम नरकादि २४ द ड़क के जीवों में पाये जाते हैं।

प्रश्न-३ : अजीव परिणाम के विषय में यहाँ पर किस प्रकार निरूपण किया गया है ?

उत्तर- जीव की तरह अजीव के परिणमन में कर्मों का कारण नहीं होता

है तथापि वे विश्रसा = स्वाभाविक रूप से बनते रहते है, बदलते रहते है, बिखरते रहते हैं। प्रस्तुत में अजीव रूपी पुदगल के परिणाम की मात्र विचारणा की गई है। क्यों कि शेष धर्मास्तिकाय आदि अरूपी अजीव में विशेष परिणाम-परिवर्तन रूप अवस्थाएँ नहीं होती है। विविध अवस्थाएँ और परिणाम रूपी पुद्गल द्रव्य में ही स भव होते है।

अजीव पुद्गलों के परिणमन के मुख्य १० प्रकार ये हैं- १. ब धन २. गति(गमन) ३. भेदन ४. वर्ण ५. ग ध ६. रस ७. स्पर्श ८. स स्थान ९. अगुरु लघु, १०. शब्द।

(१) ब धन- पुद्गल ब ध के तीन प्रकार है यथा- १. स्निग्ध-स्निग्ध २. रूक्ष-रूक्ष ३. स्निग्ध-रूक्ष। स्निग्ध-स्निग्ध में सम और एकाधिक का ब ध नहीं होता है वैसे ही रूक्ष-रूक्ष का भी समझना। स्निग्ध-रूक्ष पुद्गलों में जघन्य १ गुण का(१ गुण के साथ) ब ध नहीं होता है।

आपस में दो गुण अधिक स्निग्ध-स्निग्ध का ब ध होता है। दो गुण अधिक रूक्ष-रूक्ष का ब ध होता है। एक गुण को छोड़कर फिर रूक्ष स्निग्ध का सम विषम कोई भी ब ध हो सकता है।

यह ब ध पुद्गल स्क धों के परमाणु आदि के जुड़ने की अपेक्षा कहा गया है। अर्थात् वे परमाणु आदि जुड़कर नया पुद्गल स्क ध बनते हैं।

(२) गति- पुद्गलों की गति दो प्रकार की होती है- १. फुसमाण (स्पर्श करते हुए) २. अफुसमाण (बीच के आकाश प्रदेशों को स्पर्श न करते हुए अर्थात् उनके स्पर्श का कोई स्वत त्र समय नहीं होता है।) अस ख्य समय में जो गति होती है वह फुसमाण होती है। फुसमाण गति में अस ख्य समय लगते हैं और अफुसमाण गति एक समय में भी हो जाती है।

अथवा दीर्घ गति परिणाम और ह्रस्व गति परिणाम ये दो भेद होते हैं। इसका अर्थ है कम दूरी पर पुद्गल का जाना और अधिक दूरी पर जाना।

(३)भेदन- पुद्गलों का भेदन परिणाम पा च तरह का होता है- १. ख ड़, २. प्रतर ३. चूर्ण ४. अनुतटिका ५. उत्करिका।

(४-८) वर्णादि- ५ वर्ण, २ ग ध, ५ रस, ८ स्पर्श, ५ स स्थान।

(९) अगुरुलघु- कार्मण वर्गणा, भाषा वर्गणा, मनोवर्गणा और अरुपी आकाश आदि अजीव द्रव्य में अगुरुलघु परिणाम होता है। औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस आदि द्रव्यों का गुरुलघु परिणाम होता है।

(१०) शब्द- मनोज्ञ शब्द और अमनोज्ञ शब्द यों दो प्रकार का शब्द परिणाम होता है। ये कुल- ३+२+५+२५+१+२=३८ और एक गुरुलघु = ३९ पुद्गल परिणाम होते हैं। यों जीव के ५० और अजीव ३९ परिणाम अपेक्षा विशेष से कहे गये हैं। अन्य विस्तृत अपेक्षा से जीव-अजीव के अन त परिणाम कहे जा सकते हैं।

❋ पद-१४ : कषाय ❋

प्रश्न-१ : इस पद में कषायों का स्वरुप किस किस प्रकार से दर्शाया गया है ?

उत्तर- प्रस्तुत में गुण, धर्म, भेद-प्रभेद, कषाय के निमित्त आदि अनेक विध निरूपण द्वारा कषायों के स्वरुप को बुद्धिगम्य कराने का उपक्रम किया गया है। जिन्हें यहाँ स क्षिप्त में दर्शाया जा रहा है। यथा -

(१)कषाय के चार प्रकार- १. क्रोध २. मान ३. माया ४. लोभ।

(२) क्रोधादि के ४ प्रकार- १. अन तानुब धी-क्रोध, मान, माया, लोभ। २. अप्रत्याख्यानी क्रोधादि ३. प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि ४. स ज्वलन क्रोधादि। यों १६ भेद होते हैं।

(३) इन १६ के चार-चार भेद- १. आभोग से २. अनाभोग से ३. उपशांत ४. अनुपशांत। यों १६×४=६४ भेद होते हैं।

(४) इन क्रोधादि की उत्पत्ति के निमित्त चार है- १. क्षेत्र २. मकान ३. शरीर ४. उपकरण। यों निमित्त भेद से इनके ६४×४= २५६ प्रकार होते हैं।

(५) इन कषायो के आधार की अपेक्षा चार प्रकार हैं- १. खुद पर २. दूसरों पर ३. दोनों पर ४. किसी पर भी नहीं (केवल प्रकृति का उदय मात्र होना)। यों आधार भेद से क्रोधादि के २५६×४ =१०२४ प्रकार होते हैं। समुच्च जीव और २४ द ड़क यों २५ के एक वचन और बहुवचन से ५० विकल्प करने पर १०२४x५० = ५१२०० भ ग होते हैं।

(६) इन चार यावत् १०२४ प्रकार के कषाय के कारण जीव ने भूतकाल में **आठ** कर्मो का **चय**(स ग्रह) किया। वर्तमान में करता है, भविष्य में करेगा। चय के समान **उपचय** और **बध** करता है। कषायों से ब धे कर्मों का उदय में आना भी आवश्यक है। अतः **वेदन, उदीरणा तथा निर्जरा** भी तीन काल की अपेक्षा की है, करता है और करेगा। इस तरह ये आठ कर्म, तीन काल, छः चयादि के(८x३x६=१४४) विकल्प होते हैं। इन्हें ऊपरोक्त ५१२०० भ ग से गुणा करने पर=२१,८८,८०० (इक्कीस लाख इठ्यासी हजार आठ सौ) विकल्प कषाय स ब धी पृच्छाओं के होते हैं। यदि केवल चार कषाय से चय आदि के भ ग किये जाय तो- १४४x४ कषाय x २५(जीव+२४ द ड़क)x २(एकवचन, बहुवचन)=२८८०० ये चयादि के स्वत त्र विकल्प होते हैं।

क्रोधादि के द्रव्य निमित्त क्षेत्र आदि चार कहे गये हैं, फिर भी निंदा, प्रश सा, ईर्ष्या, सद्व्यवहार, असद् व्यवहार आदि भाव कारणों से भी क्रोधादि की उत्पत्ति समझ लेना चाहिये।

प्रश्न-२ : अन तानुब धी आदि कषाय के चार प्रकारों का स्वरूप क्या है ?

उत्तर- अन तानुब धी- जो कषाय समकित का घात करे, जिस कषाय का अ त-सीमा न हो, जिस कषाय को समाप्त करने का कोई लक्ष्य या मर्यादा न हो, वह अन तानुब धी गुस्सा, घमड़, कपट, लालच कहा जाता है। अन त स सार बढ़ाने वाले मिथ्यात्व मोह को प्राप्त कराने वाला कषाय अन तानुब धी है।

अप्रत्याख्यानी- जो कषाय प्रत्याख्यान वृत्ति का पूर्णतया नाश करता है। जिसके उदय से त्याग प्रत्याख्यान की रुचि उत्पन्न नहीं होती है। पूर्व में व्रत या व्रत रुचि हो तो उसे यह कषाय नष्ट कर देता है। इस कषाय का सिलसिला अ त रहित नहीं होता है। गुरु सा निध्य आदि किसी निमित्त को पाकर या स्वतः कालक्रम से स वत्सर के भीतर यह सिलसिला परिवर्तित हो जाता है।

प्रत्याख्यानावरण- जो कषाय स यम भाव का बाधक है या नाशक है अर्थात् नये रूप में स यम के भावों को जमने न देवे और पुराने हो तो उन्हें उखेड़ देवे, नष्ट कर देवे। कुछ व्रत प्रत्याख्यान या श्रावक वृत्ति

में यह बाधक नहीं होवे। इस कषाय का शिलशिला ५-१० दिन, उत्कृष्ट १५ दिन से ज्यादा नहीं चले।

स ज्वलन- क्षण भर के लिये आवश्यक प्रस गों, परिस्थितियों से यह कषाय उत्पन्न होता है एव शीघ्र ही ज्ञान, वैराग्य, विवेक अथवा सहज स्वभाव से स्वतः नष्ट हो जाता है। अप्रमत्तावस्था के विकास एव वीतराग अवस्था की प्राप्ति में यह कषाय बाधक होता है। इस कषाय से स यम का सर्वथा नाश नहीं होता। कि चित् स यम की हानि यह अवश्य करता है। इस कारण यह स ज्वलन कषाय चारित्र को कषाय कुशील सज्ञा दिलवाता है। इस कषाय का सिलसिला शीघ्रातिशीघ्र या तत्काल नष्ट हो जाता है। उत्कृष्ट एक दिन से आगे नहीं जा सकता है।

स ज्वलन कषाय का स्वभाव पानी की लकीर के समान शीघ्र (मिनटो, घटों से) मिटने वाला है। प्रत्याख्यानावरण कषाय का स्वभाव बालू रेत की लकीर के समान कुछ समय(दिनों) से मिटने वाला है। अप्रत्याख्यानी कषाय का स्वभाव पानी रहित तालाब की मिट्टी की तिराड़ों के समान कुछ देर(महिनों) से मिटने वाला है। अन तानुब धी कषाय पत्थर या चट्टानों की तिराड़ के समान मिटने का कोई समय ही नहीं होता है।

ये सभी प्रकार के कषाय और उनके भेद-प्रभेद २४ ही द ड़क में सूक्ष्म-बादर किसी न किसी रूप में या अस्तित्व रूप में पाये जाते हैं। अतः सूत्र में सभी द ड़कों में इनकी वक्तव्यता कही गई है।

प्रश्न-३: इस पद में आये चय आदि एव आभोग आदि शब्दों का सरल अर्थ क्या है ?

उत्तर- चय-कर्म योग्य पुद्गलों का ग्रहण करना।

उपचय-अबाधा काल छोड़ कर कर्म निषेक रचना करना।

ब ध- निषिक्त ज्ञानावरणीय आदि को निकाचन-नियत करना।

उदीरणा- कर्मों को उदयावलिका में लाना।

उदय(वेदना)- कर्मों का फल प्राप्त होना, भोगना।

निर्जरा- उपभोग किये कर्मों को आत्मा से अलग कर देना।

आभोग- जानकर, जानकारी में क्रोधादि करना।

अनाभोग- अनजाने में क्रोधादि करना।

उपशा त- वचन काया में बाहर अप्रकट रूप क्रोधादि।

अनुपशा त- वचन काया में प्रकट रूप क्रोधादि।

पद-१५ : इन्द्रिय

प्रश्न-१ : इन्द्रियों का स्वरूप किस-किस प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है ?

उत्तर- स सार के प्राणियों में जहाँ शरीर होते हैं वहाँ उनके शरीर में आत्मा के व्यवहारिक ज्ञान के साधन रूप इन्द्रियाँ होती है जो एकेन्द्रिय जीवों में एक, बेइन्द्रिय में दो यावत् प चेन्द्रिय जीवों में पा चों इन्द्रियाँ होती है, जिसका खुलासा जीवाभिगम प्रतिपत्ति-१ में किया गया है। प्रस्तुत में इन्द्रियों स ब धी पौद्गलिक परिचय स्वरूप दर्शाया गया है। यथा-

(१) स स्थान- १. श्रोतेन्द्रिय का कद ब पुष्प २. चक्षुइन्द्रिय का मसूर दाल ३. घ्राणेन्द्रिय का अतिमुक्त(धमण)४. रसनेन्द्रिय का क्षुरप्र-खुरपा ५.स्पर्शेन्द्रिय का विविध।

(२) ल बाई-चौड़ाई- जिह्वेन्द्रिय की ल बाई अनेक अ गुल है और स्पर्शेन्द्रिय की ल बाई शरीर प्रमाण होती है, शेष सभी की ल बाई-चौड़ाई अ गुल के अस ख्यातवें भाग होती है।

(३) प्रदेश- पा चों इन्द्रियाँ अन तप्रदेशी होती है, अस ख्य आकाशप्रदेश में रहती है।

(४) अल्पाबहुत्व- सबसे छोटी अवगाहना चक्षुइन्द्रिय की है, श्रोतेन्द्रिय की उससे स ख्यातगुणी, घ्राणेन्द्रिय की उससे स ख्यातगुणी, रसनेन्द्रिय की अस ख्यातगुणी और स्पर्शेन्द्रिय की उससे स ख्यातगुणी है। इसी क्रम से प्रदेश भी अल्पाधिक है।

(५) चार स्पर्श- इसके दो विभाग हैं- १. कर्कश और भारी(गुरु) २.मृदु और लघु(हल्का)। ये एक गुण कर्कश यावत् अन तगुण कर्कश आदि पा चों इन्द्रियों में होते हैं।

अल्पाबहुत्व- चक्षुइन्द्रिय में कर्कश गुरु सबसे कम है फिर क्रमशः श्रोतेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय में अन तगुणे है।

स्पर्शेन्द्रिय में मृदु लघु सबसे कम है फिर क्रमशः जिह्वेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, श्रोतेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय में अनतगुणे हैं। स्पर्शेन्द्रिय में कर्कश गुरु से मृदुलघु अन तगुणे होते हैं।

ऊपरोक्त वर्णन २४ द ड़क में भी समझ लेना। विशेष यह है कि १. जिसके जितनी इन्द्रिय है उतनी समझना २. शरीर की अवगाहना स स्थान जो हो वही स्पर्शेन्द्रिय की अवगाहना स स्थान समझना।

स्पृष्ट-प्रविष्ट- चक्षु इन्द्रिय अपने विषय के पदार्थों को दूर रहे हुए ही विषयभूत बना कर उनका ज्ञान कर लेती है अर्थात् उन पदार्थों का चक्षु इन्द्रिय में प्रवेश एव स्पर्श दोनों नहीं होते हैं। शेष इन्द्रियाँ अपने विषयभूत पदार्थों का स्पर्श एव ग्रहण(प्रवेश) होने पर ही उनका बोध करती है।

विषय क्षेत्र- जघन्य विषय चक्षुइन्द्रिय का अ गुल के स ख्यातवें भाग है, शेष चार इन्द्रियों का अ गुल के अस ख्यातवें भाग है। उत्कृष्ट इस प्रकार है-

पाँच इन्द्रियों का उत्कृष्ट विषय :-

जीव	श्रोत्रेन्द्रिय	चक्षुइन्द्रिय	घ्राणेन्द्रिय	रसनेन्द्रिय	स्पर्शेन्द्रिय
एकेन्द्रिय	-	-	-	-	४०० धनुष
बेइन्द्रिय	-	-	-	६४ धनुष	८०० धनुष
तेइन्द्रिय	-	-	१०० धनुष	१२८ धनुष	१६०० धनुष
चौरेन्द्रिय	-	२९५४ योजन	२००धनुष	२५६ धनुष	३२०० धनुष
अस ज्ञी प चे॰	१ योजन	५९०८ योजन	४०० धनुष	५१२ धनुष	६४०० धनुष
स ज्ञी प चे॰	१२ योजन	१लाख यो॰सा॰	९ योजन	९ योजन	९ योजन
औधिक जीव	१२ योजन	१लाख यो॰सा॰	९ योजन	९ योजन	९ योजन

[स क्षिप्ताक्षर सूचि : प चे॰ = प चेन्द्रिय, यो॰ सा॰ = योजन साधिक।]

यह इन्द्रिय विषय उत्सेधागुल से कहा गया है। जघन्य विषय आत्मा गुल से समझना चाहिये।

प्रश्न-२ : अन्य किन किन छुटकर विषयों का निरूपण यहाँ इस उद्देशक में किया है ?

उत्तर- इन्द्रियों से सीधा स ब ध नहीं रखने वाले पर तु इन्द्रिय सापेक्ष कुछ तत्त्वों का निरूपण यहाँ प्रथम उद्देशक में इस प्रकार है-

निर्जरा पुद्गल– मुक्त होने वाली आत्मा के अ तिम निर्जरा पुद्गल सर्व लोक में व्याप्त होते हैं। किन्तु उनको इन्द्रियाँ ग्रहण नहीं कर सकती और जान-देख नहीं सकती है, चाहे देव हो या मनुष्य । क्यों कि वे निर्जरा पुद्गल अति सूक्ष्म होते हैं। विशिष्ट अवधिज्ञानी या केवलज्ञानी ही उन्हें जान देख सकते हैं । तथा ये पुद्गल अमुक-अमुक के हैं, ऐसी भिन्नता से एव अमुक वर्णादि है, ऐसे नाना भेदों को, क्षीणत्व, तुच्छत्व (निःसारत्व), हल्का, भारीपन आदि से भी जान देख सकते हैं ।

नैरयिक आदि इन्हें जान देख नहीं सकते किन्तु ग्रहण कर आहार रूप में परिणमन कर सकते हैं। सम्यग्दृष्टि वैमानिक पर्याप्त उपयोगव त हो तो जाने, देखे, आहार करे। अन्य नहीं जाने, नहीं देखे किन्तु आहार रूप में ग्रहण-परिणमन करते हैं । इसी प्रकार मनुष्य भी जो विशिष्ट ज्ञानी उपयोगव त हो तो वे जाने, देखे, आहार करे। सामान्य मनुष्य नहीं जाने, नहीं देखे किन्तु आहार रूप में ग्रहण-परिणमन करते हैं। केवलज्ञानी मनुष्य सदा जाने, देखे किन्तु आहार रूप में कभी परिणमन करते हैं और जब अणाहारक हो तब नहीं करते हैं। सिद्ध भगवान जानते देखते हैं। तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों के लिये ये पुद्गल अविषयभूत है किन्तु विशिष्ट ज्ञान गोचर है और इन्द्रिय अगोचर है ।

प्रतिबि ब– दर्पण, मणि आदि को देखने वाला दर्पण आदि को देखता है और प्रतिबिंब को देखता है किन्तु स्वय को नहीं देखता है।

अवगाहन– फैलाया हुआ वस्त्र जितने आकाशप्रदेश अवगाहन करता है, समेट कर रख देने पर भी उतने ही आकाशप्रदेश अवगाहन करेगा। स्थूल दृष्टि से क्षेत्र ज्यादा कम अवगाहन करने का आभास होता है ।

स्पर्श– लोक थिग्गल-लोकालोक रूप वस्त्र में 'लोक' थेगले के रूप में हैं। यह लोक थिग्गल- (१) धर्मास्तिकाय (२) धर्मास्तिकाय के प्रदेश (३) अधर्मास्तिकाय (४) अधर्मास्तिकाय के प्रदेश (५) आकाशास्तिकाय का देश (६) आकाशास्तिकाय के प्रदेश (७) पुद्गलास्तिकाय (८) जीवास्तिकाय (९-१३) पृथ्वीकाय आदि ५ से स्पृष्ट है (१४-१५) त्रसकाय और अद्धासमय से स्पृष्ट भी है तथा अस्पृष्ट भी है (कहीं लोक में त्रस एव काल है, कहीं नहीं है)।

जम्बूद्वीप– १. धर्मास्तिकाय के देश २. प्रदेश ३. अधर्मास्तिकाय के देश

४. प्रदेश ५. आकाशास्तिकाय के देश ६. प्रदेश ७-११. पृथ्वी आदि पच से स्पृष्ट है। १२. त्रसकाय से स्पृष्ट भी है अस्पृष्ट भी है १३. काल से स्पृष्ट है। **इसी तरह** अन्य द्वीपसमुद्र भी जानना। ढ़ाईद्वीप के बाहर काल से अस्पृष्ट कहना। **अलोक–** आकाशास्तिकाय के देश से एव प्रदेश से स्पृष्ट है। अन्य कोई भी द्रव्यादि नहीं है। एक अजीव द्रव्य का देश है।

प्रश्न-३ : प्रस्तुत पद के दूसरे उद्देशक में विषय क्रम क्या है ?

उत्तर– इस पद में दो उद्देशक है जिसमें से प्रथम उद्देशक में इन्द्रिय स ब धी पौद्गलिक विषय प्रधान है एव दूसरे उद्देशक में २४ द ड़क के जीवों से स ब धित इन्द्रिय वर्णन मुख्य है। वह इस प्रकार है-

(१) दूसरे उद्देशक के प्रार भ में द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय का स्वरूप स्पष्ट करके पा चों भावेन्द्रिय के उपयोग काल की अल्पाबहुत्व दर्शाई है। (२) पा चों इन्द्रियों से स ब धित अवग्रह ईहा अवाय धारणा का कथन है एव २४ द ड़क में द्रव्येन्द्रिय निष्पत्ति तथा भावेन्द्रिय के उपयोग काल की अल्पा-बहुत्व दर्शाई है। (३) २४ द ड़क के जीवों के एकवचन और बहुवचन से त्रैकालिक इन्द्रियों का स ख्या की दृष्टि से कथन है। (४) २४ द ड़क के जीवो ने एक-एक द ड़क में द्रव्येन्द्रियाँ कितनी करी वगैरह त्रैकालिक वर्णन है। यह भी एक जीव की अपेक्षा और अनेक जीव की अपेक्षा अर्थात् एक वचन बहुवचन से वर्णन है। (५) द्रव्येन्द्रिय के समान ही भावेन्द्रियों का वर्णन एकवचन और बहुवचन से २४ द ड़क में भूतकाल आदि तीनों काल की अपेक्षा किया गया है। इस प्रकार द्रव्येन्द्रिय-८ और भावेन्द्रिय-५ का स ख्यामूलक त्रैकालिक वर्णन ही इस दूसरे उद्देशक में मुख्य है।

प्रश्न-२ : द्रव्येन्द्रिय भावेन्द्रिय का स्वरूप एव उपयोग काल तथा अवग्रह ईहा आदि का वर्णन २४ द ड़क से किस प्रकार किया है ?

उत्तर- (१) इन्द्रियों के योग्य पुद्गलों का पहले उपचय स ग्रह होता है **(२)** फिर उस इन्द्रिय की निष्पत्ति होती है **(३)** प्रत्येक इन्द्रिय के निष्पन्न होने में अस ख्य समय का अ तर्मुहूर्त प्रमाण काल लगता है। ये निष्पन्न होने वाली द्रव्येन्द्रियाँ है। **(४)** तदावरणीय कर्म का क्षयोपशम जो होता है वह **भावेन्द्रिय** है **(५)** उसका उपयोग काल जघन्य और उत्कृष्ट अस ख्य समय के अ तर्मुहूर्त प्रमाण होता है। जघन्य से उत्कृष्ट काल विशेषाधिक होता है। **(६)** अल्पाबहुत्व की अपेक्षा पा चों इन्द्रियों के जघन्य उपयोग

काल में चक्षुइन्द्रिय का कम और शेष का पूर्वोक्त क्रम से विशेषाधिक होता है। उत्कृष्ट में भी इसी क्रम से अल्पाधिक होता है। जघन्य उत्कृष्ट की सम्मिलित अल्पाबहुत्व में स्पर्शेन्द्रिय के जघन्य उपयोग काल से चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोग काल विशेषाधिक है। **(७)** अवग्रह(ग्रहण), ईहा(विचारणा), अवाय(निर्णय), धारणा (स्मृति), पा चो इन्द्रिय का होता है। अर्थावग्रह छः प्रकार का होता है- पा च इन्द्रिय एव मन। व्य जनावग्रह चक्षुइन्द्रिय को छोड़कर चार इन्द्रिय के ही होता है।

ये सभी निष्पत्ति आदि २४ द ड़क में है। जिसके जितनी इन्द्रियाँ होती है उनकी अपेक्षा उक्त विषय इन्द्रिय निष्पत्ति आदि होती है। यावत् उपयोगद्धा काल की अल्पाबहुत्व एव अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा भी २४ ही द ड़क में यथायोग्य इन्द्रिय अनुसार है।

प्रश्न-५ : द्रव्येन्द्रियों का त्रैकालिक वर्णन २४ द ड़क में किस प्रकार है?

उत्तर- द्रव्येन्द्रिय ८ है- २ कान, २ आँख, २ नाक, १ जिह्वा, १ स्पर्शेन्द्रिय। २४ द ड़क में जीव ने कितनी द्रव्येन्द्रियाँ भूतकाल में करी, वर्तमान में कितनी है और भविष्य में कितनी करेगा, यह वर्णन चार्ट से जाने-

२४ द ड़क में त्रैकालिक इन्द्रियाँ (एकवचन) :-

द ड़क जीव(एक)	वर्तमान	भूतकाल	भविष्य में
नारकी १ से ४	८	अन ता	आठ, १६,१७ आदि अन त
नारकी ५ से ७	८	"	१६, १७ आदि अन त
भवनपति से दूसरा देवलोक	८	"	आठ, नव आदि अन त
तीसरे देवलोक से ग्रैवेयक	८	"	आठ,१६,१७ आदि अन त
अणुत्तर देव	८	"	८,१६,२४आदि स ख्याता
पृथ्वी, पाणी, वनस्पति	१	"	८, ९, १० आदि अन त
तेउ, वायु	१	"	९, १० आदि अन त
बेइन्द्रिय	२	"	९, १० आदि अन त
तेइन्द्रिय	४	"	९, १० आदि अन त
चौरेन्द्रिय	६	"	९, १० आदि अन त
तिर्यंच प चेन्द्रिय	८	"	८, ९ आदि अन त
मनुष्य	८	"	०, ८, ९ आदि अनत

(२) २४ द ड़क में त्रैकालिक इन्द्रियाँ(बहुवचन) :-भूतकाल की अपेक्षा सभी द ड़क में अन त, भविष्य की अपेक्षा भी सभी द ड़क में अन त। वर्तमानकाल में वनस्पति में अन त, मनुष्य में कभी स ख्याता कभी अस ख्याता, सर्वार्थसिद्ध में स ख्याता, शेष सभी द ड़क में अस ख्याता इन्द्रियाँ है।

(३) एक एक जीव की प्रत्येक द ड़क में इन्द्रियाँ :- भूतकाल में- एक नारकी ने पा च अणुत्तर विमान छोड़ कर सभी द ड़कों के रूप में भूतकाल में अन त इन्द्रिया की। उसी तरह सभी द ड़कों के जीवों ने भी अन त इन्द्रियाँ की। अणुत्तर देव रूप में २२ द ड़क के जीवों ने एक भी इन्द्रिय नहीं की। मनुष्यों में किसी ने नहीं की और किसी ने की तो आठ अथवा १६। वैमानिक देवों ने अणुत्तर देव रूप में किसी ने नहीं की और किसी ने की तो केवल आठ ही की।

वर्तमान में- स्वय की अपेक्षा जितनी जिसके द्रव्येन्द्रियाँ है उतनी कहना और अन्य की अपेक्षा सर्वत्र नहीं है(नत्थि)कहना।

भविष्य में- प चेन्द्रिय की अपेक्षा ८-१६ यों अष्टाधिक होती है। इसी तरह चौरेन्द्रिय में ६, १२ आदि, तेइन्द्रिय में ४-८ आदि बेइन्द्रिय में २, ४ आदि और एकेन्द्रिय में १, २, ३ आदि। मनुष्य की अपेक्षा सभी को करना जरूरी है। शेष की अपेक्षा कोई करेगा या नहीं करेगा और करेगा तो ८-१६ आदि। उनका विवरण इस प्रकार है-

एक-एक जीव की प्रत्येक द ड़क में भविष्यकालीन इन्द्रियाँ :-

अपेक्षा	नारकी से ग्रैवेयक तक	अणुतर देव	मनुष्य/तिर्यंच
मनुष्य पने	८-१६ व॰ अनत	८-१६ वगेरे स ख्यात	०, ८, १६ व॰अनत/ ८, १६, व॰ अनत
नरक/तिर्यंच पने	०, ८-१६ व॰ अनत	नहीं	०, ८, १६ व॰ अनत
भवनपतिव्य तर ज्योतिषी पने	०, ८, १६ व॰ अनत	नहीं	०, ८, १६ व॰ अनत
ग्रैवेयक तक वैमा॰पने	०, ८, १६ व॰ अनत	०, ८, १६ व॰ स ख्याता	०, ८, १६ व॰ अनत
चार अणुत्तर देवपने	०, ८ उत्कृष्ट-१६	०, ८	०, ८, १६
सर्वार्थसिद्धपने	०, ८	०, ८	०, ८

अपेक्षा	नारकी से ग्रैवेयक तक	अणुत्तर देव	मनुष्य/तिर्यंच
एकेन्द्रियपने	०, १, २ व॰ अनत	नहीं	०, १, २ आ॰ अ॰
बेइन्द्रियपने	०, २, ४ व॰ अनत	नहीं	०, २, ४ आ॰ अ॰
तेइन्द्रियपने	०, ४, ८ व॰ अनत	नहीं	०,४, ८ आ॰ अ॰
चौरेन्द्रियपने	०, ६, १२ व॰ अनत	नहीं	०,६, १२ आ॰ अ॰

स क्षिप्त शब्द नोंध :- पचे = प चेन्द्रिय, व॰ = वगेरे, आदि, वै॰ = वैमानिक, स ॰ = स ख्याता, आ॰ = आदि, अ॰ = अन त, व्य ॰ = व्य तर, ति॰ = तिर्यंच, भव॰ = भवनपति, ज्यो॰ ज्योतिषी। सर्वार्थसिद्ध के देव मनुष्यपने द्रव्येन्द्रिय करेंगे, शेष कहीं पर भी कोई द्रव्येन्द्रिय नहीं करेंगे।

(४) अनेक जीवों की प्रत्येक द ड़क में द्रव्येन्द्रियाँ :- भूतकाल- सभी द ड़क के जीवों ने सभी द ड़कों में भूतकाल में अन त द्रव्येन्द्रियाँ की है। पर तु **पा च अणुत्तर देव पने** २२ द ड़क के जीवों ने नहीं की है। मनुष्यों ने स ख्याता की है और वैमानिक में ग्रैवेयक तक के देवों ने अस ख्य की है। चार अणुत्तर देवो ने अस ख्य की है, सर्वार्थसिद्ध के देवों ने स ख्याता की है।

वर्तमान काल- स्वद ड़क में वनस्पति के अन त द्रव्येन्द्रियाँ है, २२ द ड़क के अस ख्य है। मनुष्य के स ख्याता या अस ख्याता द्रव्येन्द्रियाँ है। सर्वार्थसिद्ध में स ख्याता है। परद ड़क की अपेक्षा वर्तमान में किसी के नहीं है।

भविष्य में- अणुत्तर देव को छोड़कर नारकी आदि सभी जीव, सभी द ड़कों में भविष्य में अन त द्रव्येन्द्रियाँ करेंगे।

वनस्पति के जीव अणुत्तर देव में अन त द्रव्येन्द्रियाँ करेंगे। शेष सभी द ड़क के जीव अणुत्तर देव में अस ख्य द्रव्येन्द्रियाँ करेंगे किन्तु मनुष्य स ख्याता या अस ख्याता करेंगे। ५ अणुत्तर देव २२ द ड़क में द्रव्येन्द्रियाँ नहीं करेंगे। चार अणुत्तर देव मनुष्य में एव वैमानिक देव में अस ख्य द्रव्येन्द्रियाँ करेंगे। चार अणुत्तर देव पा च अणुत्तर देव पने अस ख्य द्रव्येन्द्रियाँ करेंगे। सर्वार्थसिद्ध के देव मनुष्य में स ख्याता द्रव्येन्द्रियाँ करेंगे। वैमानिक में नहीं करेंगे।

प्रश्न-६ : भावेन्द्रिय स ब धी त्रैकालिक वर्णन किस प्रकार है?

उत्तर- क्षयोपशम जन्य भावेन्द्रियाँ ५ है। श्रोतेन्द्रिय ***यावत्*** स्पर्शेन्द्रिय। द्रव्येन्द्रिय के समान इनका भी चार द्वारों से वर्णन है, यथा- (१) एक एक जीव के त्रैकालिक भावेन्द्रियाँ (२) सभी(बहुत)जीवों में त्रैकालिक

भावेन्द्रियाँ (३) एक एक जीव की सभी द ड़कों में त्रैकालिक भावेन्द्रियाँ (४) सभी(बहुत) जीवों की सभी द ड़कों में त्रैकालिक भावेन्द्रियाँ।

भावेन्द्रिय के चारों द्वारों का स पूर्ण वर्णन द्रव्येन्द्रिय के चारों द्वार के वर्णन के समान है। उत्कृष्ट स ख्याओं में अर्थात् स ख्याता, अस ख्याता, अन ता कहने में फर्क नहीं है किन्तु जघन्य स ख्याओं में फर्क है, यथा- ८ के स्थान पर ५ है। ९ के स्थान पर ६ है। १६ के स्थान पर १० है। ६, १२ के स्थान पर ४, ८ है। ४, ८ के स्थान पर ३, ६ है। एक के स्थान पर एक और २ के स्थान पर २ है।

इन जघन्य स ख्याओं के अतिरिक्त कोई फर्क नहीं है।

विशेष- इस प्रकरण में एकेन्द्रिय के द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय एक ही कही गई है। अतः कई चिंतक या व्याख्याकार वनस्पति में पा च भावेन्द्रियाँ कह देवे तो वह कथन आगम सम्मत नहीं है। अतः श्रद्धा प्ररूपणा के योग्य नहीं है।

पद-१६ : प्रयोग

प्रश्न-१ : 'प्रयोग' का क्या आशय है और इसके भेदों का विश्लेषण किस प्रकार है ?

उत्तर- आत्मा के द्वारा विशेष रूप से, प्रकर्ष रूप से किया जाने वाला व्यापार, प्रयोग कहा जाता है। प्रचलन में इन्हें योग कहा जाता है। अन्यत्र आगम में भी इन्हें योग कहा गया है। अतः शब्द प्रयोग के अ तर के अतिरिक्त योग एव प्रयोग के अर्थ और भावार्थ में कोई विशेष अ तर नहीं है। फिर भी इस आगम के प्रस्तुत पद में प्रयोग शब्द से उन्हीं १५ योगों का कथन किया गया है।

प्रयोग प द्रह- ४ मन के, ४ वचन के एव ७ काया के, ये १५ प्रयोग है। ग्यारहवें भाषा पद में सत्य आदि चार प्रकार की भाषा कही गई है, वे ही चार प्रकार वचनयोग के हैं एव मन योग के भी चार प्रकार वे ही है। अतः सत्य-असत्य, मिश्र एव व्यवहार मन और वचन का अर्थ-भावार्थ वही समझना। भाषा में बोलने से प्रयोजन है एव मन से उसी आशय का भाव का चिंतन मनन करना है। काया के सात प्रयोग इस प्रकार हैं-

औदारिक काय प्रयोग–औदारिक शरीर की जो भी बाह्य एव आभ्य तर हलन-चलन स्प दन रूप प्रवृत्तियाँ है, वह औदारिक काय प्रयोग है। मनुष्य, तिर्यंच में सभी जीवों के यह प्रयोग होता है।

औदारिक मिश्र काय प्रयोग– औदारिक शरीर बनने के लिये उसके पूर्व जो आत्मा का व्यापार(प्रवृत्ति रूप) होता है वही औदारिक मिश्र काय प्रयोग है। यह कार्मण के साथ जन्म समय में औदारिक शरीर पूरा न बन जाय तब तक होता है। वैक्रिय और आहारक दोनों लब्धिप्रयोग के बाद जब जीव पुनः औदारिक शरीर में अवस्थित होता है तब उस वैक्रिय या आहारक के साथ औदारिक मिश्रकाय प्रयोग होता है। केवली समुद्घात के प्रार भ में और अ त में कार्मण के साथ औदारिक मिश्रकायप्रयोग होता है।

वैक्रिय काय प्रयोग– वैक्रिय शरीर की जो भी हलन, चलन, स्पदन रूप बाह्य प्रवृत्तियें होती है, वह वैक्रिय कायप्रयोग है। नारकी, देवता में सभी जीवों के यह प्रयोग होता है। कई मनुष्य, तिर्यंचों के भी यदा कदा यह प्रयोग होता है।

वैक्रिय मिश्र काय प्रयोग– वैक्रिय शरीर बनने के पूर्व जो आत्मा का प्रवृत्ति रूप व्यापार होता है वह वैक्रिय मिश्र कायप्रयोग है। नारकी देवताओं के जन्म समय में यह कार्मण के साथ होता है अर्थात् वैक्रिय और कार्मण दोनों शरीर का सहयोगी मिश्रित व्यापार होता है। नारक, देव में उत्तर वैक्रिय करते समय एव मनुष्य, तिर्यंच में वैक्रिय करते समय इच्छित रूप बनने के पूर्व यह प्रयोग होता है।

आहारक काय प्रयोग– १४ पूर्वधारी मुनिवरों के आहारक शरीर की जो बाह्य गमनागमन आदि रूप प्रवृत्ति होती है, वह आहारक काय प्रयोग है। यह भी लब्धि स पन्न मुनिवरों के ही होता है।

आहारक मिश्र काय प्रयोग– आहारक शरीर स पूर्ण बनने के पूर्व जो आत्मा का व्यापार होता है वह आहारक मिश्र काय प्रयोग है। यह भी लब्धि स पन्न मुनियों के होता है।

कार्मण काय प्रयोग– जन्म स्थान में पहुँचने के पूर्व मार्ग में औदारिक वैक्रिय शरीर के अभाव में यह कार्मण काय प्रयोग होता है। उस समय

जीव के साथ तैजस और कार्मण, ये दो शरीर ही होते हैं। दोनों के मिश्र प्रयोग को कार्मण की प्रमुखता मान कर आगम में एक कार्मण कायप्रयोग ही कहा जाता है। इसके अतिरिक्त केवली समुद्घात के आठ समयों के बीच के तीन समय(तीसरा, चौथा,पा चवाँ)में कार्मण काय प्रयोग होता है।

पा चों शरीर का वर्णन स्वरूप बारहवें पद में बताया गया है।

२४ द ड़क में प्रयोग–

नारकी देवता सभी में ११ प्रयोग है– ४ मन के, ४ वचन के, (९) वैक्रिय, (१०) वैक्रिय मिश्र (११) कार्मण।

चार स्थावर में ३ प्रयोग– १. औदारिक २. औदारिक मिश्र ३. कार्मण।

वायुकाय में ५ प्रयोग– १.औदारिक २. औदारिक मिश्र ३.वैक्रिय ४. वैक्रिय मिश्र ५. कार्मण।

तीन विकलेन्द्रिय में ४ प्रयोग– १.औदारिक २. औदारिक मिश्र ३.कार्मण ४. व्यवहार वचन।

तिर्यंच प चेन्द्रिय में १३ प्रयोग– आहारक और आहारक मिश्र इन दो के अतिरिक्त।

मनुष्य में १५ प्रयोग होते हैं।

प्रश्न–२ : २४ द ड़क के जीवों में पाये जाने वाले प्रयोगों में शाश्वत या अशाश्वत प्रयोग कौन से होते हैं तथा तत्स ब धी भ ग कितने बनते हैं?

उत्तर– समुच्चय जीव में आहारक और आहारक मिश्र ये २ अशाश्वत है। नारकी एव देवता में, तीन विकलेन्द्रिय और तिर्यंच प चेन्द्रिय में **एक कार्मण प्रयोग** अशाश्वत होता है। **मनुष्य में**–औदारिक मिश्र, आहारक और आहारक मिश्र तथा कार्मण ये चार प्रयोग अशाश्वत होते हैं।

शाश्वत अशाश्वत तथा कुलप्रयोग :– समुच्चय जीव और २४ द ड़क में पाये जाने वाले प्रयोगो के शाश्वत अशाश्वत होने से उनके एक

वचन और बहु वचन के भ ग बनते हैं। तत्स ब धी स क्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

क्रमा क	जीव	प्रयोग	शाक्तत प्रयोग	अशाक्तत प्रयोग	भग स ख्या
१	समुच्चय जीव	१५	१३	२	९
२	नारकी देवता	११	१०	१	३
३	चार स्थावर	३	३	–	१
४	वायुकाय	५	५	–	१
५	विकलेन्द्रिय	४	३	१	३
६	तिर्यंच प चेन्द्रिय	१३	१२	१	३
७	मनुष्य	१५	११	४	८१

जीवों में शाश्वत अशाश्वत प्रयोग एव उनके विकल्प– शास्वत प्रयोगों का एक विकल्प(भ ग)होता है। एक अशाश्वत प्रयोग के एक वचन बहुवचन से दो भ ग बनते हैं। दो अशाश्वत प्रयोग के एक वचन बहुवचन से अस योगी चार भ ग होते हैं और द्विस योगी भी चार भ ग बन जाते हैं। वे इस प्रकार है– १. दोनों एक वचन २. पहला एक वचन दूसरा बहुवचन ३. पहला बहुवचन दूसरा एकवचन ४. दोनों बहुवचन। यह चौभ गी–चार भ ग बनाने का तरीका है। ये २ अशाश्वत के कुल ८ भ ग होते हैं।

तीन अशाश्वत प्रयोगों के एकवचन बहुवचन से अस योगी ६ भ ग होते है। द्विस योगी १२ भ ग होते हैं। यथा–तीन अशाश्वत के तीन द्विक बनते हैं, यथा– १. पहला दूसरा २. पहला तीसरा ३. दूसरा तीसरा। इन प्रत्येक द्विक की ऊपर बताये अनुसार चौभ गी बनती है। अतः ३×४= १२ भ ग द्विस योगी। तीन स योगी आठ भ ग होते हैं यथा–पहले को एक वचन रखते हुए दूसरे, तीसरे के द्विक से एक चौभ गी, फिर पहले को अनेक रखते हुए दूसरे, तीसरे से पुनः वही चौभ गी, इस तरह दो चौभ गी के आठ भ ग होते है। ये तीन अशास्वत के कुल (६+१२+८)=२६ भ ग होते हैं।

चार अशाश्वत प्रयोग हों तो ८० भ ग बनते हैं। **अस योगी** ८ भ ग होते हैं। **द्विस योगी** ६ द्विक के ६x४=२४ भ ग होते हैं। ६ द्विक

इस प्रकार है–पहला दूसरा (१–२), (१–३), (१–४), (२–३), (२–४), (३–४)। **तीन स योगी** चार त्रिक होते है और एक-एक त्रिक के ऊपर बताये अनुसार आठ भ ग होते हैं। अतः ८ × ४=३२ भ ग तीनस योगी होते हैं। **चार स योगी** १६ भ ग होते हैं, इसमें एक चतुष्क बनता है उसमें प्रथम को एकवचन रखते शेष बचे तीन के त्रिक से ऊपरोक्त विधि अनुसार आठ भ ग होते हैं। फिर प्रथम को बहुवचन करके शेष बचे तीन की त्रिक से पुनः आठ भ ग होते हैं यों ८+८=१६ भ ग चार स योगी के होते हैं। ये चार अशास्वत के कुल (८+२४+३२+१६)=८० भ ग होते हैं।

इस प्रकार शास्वत प्रयोगों का एक और अशास्वत प्रयोगों के अनेक भ ग होते हैं। दोनों को मिलाने से–

(१) शास्वत भ ग १+एक अशास्वत के भ ग २ = ३
(२) शास्वत भ ग १+ दो अशास्वत के भ ग ८ = ९
(३) शास्वत भ ग १+तीन अशास्वत के भ ग २६ = २७
(४) शास्वत भ ग १+चार अशास्वत के भ ग ८० = ८१
(५) सभी शास्वत हो तो उसका १ भ ग(अभ ग) = १

प्रश्न–३ : भ गों का उच्चारण प्रयोगों के साथ किस प्रकार किया जाता है ?

उत्तर– समुच्चय जीव के ९ भ ग– (१) सभी जीव १३ प्रयोग वाले (अन्य कोई भी नहीं हो) (२) अनेक १३ प्रयोग वाले, एक आहारक प्रयोग वाला (३) अनेक १३ प्रयोगी, अनेक आहारक प्रयोगी (४) अनेक १३ प्रयोगी, एक आहारक मिश्र प्रयोगी (५) अनेक १३ प्रयोगी अनेक आहारक मिश्रप्रयोगी। (६) अनेक १३ प्रयोगी एक आहारक प्रयोगी एक आहारक मिश्र प्रयोगी (७) अनेक १३ प्रयोगी एक आहारक प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्रप्रयोगी (८) अनेक १३ प्रयोगी, अनेक आहारक प्रयोगी, एक आहारक मिश्र प्रयोगी (९) अनेक १३ प्रयोगी, अनेक आहारक प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र प्रयोगी।

नारकी देवता के ३ भ ग– (१) सभी १० प्रयोग वाले (२) दस प्रयोग वाले बहुत, कार्मण प्रयोगी एक (३) दसप्रयोगी अनेक और कार्मण प्रयोगी भी अनेक। ये तीन भ ग एक कार्मण अशाश्वत होने के।

स्थावर- (१) चार स्थावर में सभी ३ प्रयोग वाले। एक भ ग(अभ ग)। (२) वायुकाय में सभी ५ प्रयोग वाले। एक भ ग(अभ ग)।

तीन विकलेन्द्रिय में ३ भ ग- (१) सभी तीन प्रयोग वाले (२) तीन प्रयोगी अनेक, कार्मण प्रयोगी एक (३) तीनप्रयोगी अनेक, कार्मण प्रयोगी भी अनेक। ये तीन भ ग एक अशाश्वत के।

तिर्यंच प चेन्द्रिय के ३ भ ग- (१) सभी १२ शाश्वत के (२) १२ शाश्वत के अनेक, कार्मण प्रयोगी एक (३) १२ शाश्वत के अनेक, कार्मणप्रयोगी के भी अनेक।

मनुष्य के ८१ भ ग- मनुष्य में १५ प्रयोग में से ११ प्रयोग शाश्वत मिलते हैं, चार अशाश्वत है अर्थात् कभी होते हैं, कभी नहीं होते हैं। इसलिये ४ अशाश्वत के ८० भ ग और एक भ ग ११ शाश्वत का स्वत त्र होता है।

(१) कोई समय सभी मनुष्य ११ शाश्वत प्रयोगी होते हैं।

(२) कभी ११ शाश्वत प्रयोगी अनेक, औदारिक मिश्र प्रयोगी एक।

(३) कभी ११ शाश्वत प्रयोगी अनेक, औदारिक मिश्रप्रयोगी अनेक।

(४से९) इसी तरह आहारक, आहारक मिश्र और कार्मण प्रयोगी के दो-दो भ ग एक और अनेक से बनते हैं। ये आठ भ ग(२ से ९) एक अशाश्वत प्रयोगी रखने से बनते हैं।

(१०-१३) कभी ११ शाश्वत प्रयोगी अनेक, औदारिक मिश्र और आहारक प्रयोगी के एक-अनेक की चौभ गी। यथा- (१) औदारिक मिश्र एक, आहारक एक (२) औदारिक मिश्र एक, आहारक अनेक (३) औदारिक मिश्र अनेक, आहारक एक (४) औदारिक मिश्र अनेक, आहारक अनेक।

(१४-१७) कभी ११ शाश्वत प्रयोगी अनेक और औदारिक मिश्र और आहारक मिश्र के एक या अनेक की चौभ गी ऊपर प्रमाणे **(१८-२१)** कभी ११ प्रयोगी अनेक और औदारिकमिश्र एव कार्मण की चौभ गी। इसी तरह **(२२-२५)** आहारक और आहारकमिश्र की चौभ गी। **(२६-२९)** आहारक और कार्मण की चौभ गी। **(३०-३३)** आहारकमिश्र और कार्मण की चौभ गी। ये १० से ३३ तक(२४ भ ग) दो अशाश्वत

प्रयोगों की छ द्विक की छ चौभ गी से बने।

(३४) कभी ११ शा॰ प्र॰अनेक और औदा॰मिश्र **एक**, आहा॰एक, आहा॰मि॰एक।

(३५) शाश्वत प्रयोगी अनेक और औदा॰मिश्र **एक**, आहा॰एक, आहा॰मि॰अनेक।

(३६) शाश्वत प्र॰अनेक और औदा॰मिश्र **एक**, आहा॰अनेक, आहा॰मि॰एक।

(३७) शाश्वत प्र॰अनेक और औदा॰मिश्र **एक**, आहा॰अनेक, आहा॰मि॰ अनेक।

(३८) शाश्वत प्र॰अनेक और औदा॰मिश्र **अनेक**, आहा॰एक, आहा॰मि॰एक।

(३९) शाश्वत प्र॰अनेक और औदा॰मिश्र **अनेक**, आहा॰एक, आहा॰मि॰अनेक।

(४०) शाश्वत प॰अनेक और औदा॰मिश्र **अनेक**, आहा॰अनेक, आहा॰मि॰एक।

(४१) शाश्वत प॰अनेक और औदा॰मिश्र **अनेक**, आहा॰अनेक, आहा॰मि॰अनेक।

ये प्रथम त्रिक से कुल ८ भ ग बनते हैं **(४२-४९)** इसी तरह दूसरी त्रिक- औदारिक मिश्र, आहारक और कार्मण प्रयोगी से आठ भग। **(५०-५७)** तीसरी त्रिक- औदारिक मिश्र, आहारकमिश्र और कार्मण प्रयोगी से ८ भ ग। **(५८-६५)** चौथी त्रिक- आहारक, अहारक मिश्र और कार्मणप्रयोगी से आठ भ ग बनते हैं। ये ३४ से ६५ तक (३२ भ ग) तीन अशाश्वत प्रयोगों की ४ त्रिक के आठ-आठ भ ग होने से बनते हैं।

(६६) कभी ११ शाश्वतप्रयोगी के अनेक और चारों अशाश्वत प्रयोगी के एक-एक। **(६७से८१)** चारों अशाश्वत प्रयोगों को एक-अनेक करने से कुल १६ भ ग बनते हैं। इसका कारण यह है कि दो अशाश्वत के एक-अनेक करने से ४ भ ग बनते है। तीसरे अशाश्वत को एक रखने से ये ४ भ ग और उसे अनेक रखने से चार भ ग यों कुल आठ भ ग तीन अशाश्वत के होते हैं, जिसमें चौथे अशाश्वत को एक रखने से ये आठ और उसे अनेक रखने से पुनः ये आठ भ ग होने से चारों को एक अनेक रूप में परिवर्तन करने से १६ भ ग बनते हैं। प्रथम आठ भ ग इस प्रकार है - कभी

(१) ११ प्रयोगी के अनेक औदा॰मि॰**एक**,आहा॰एक, आहा॰मि॰एक, कार्मण एक

(२) ११ प॰के अनेक औदा॰मि॰**एक**,आहा॰एक आहा॰मि॰एक कार्मण अनेक

(३) ११ प्र॰ के अनेक औदा॰मि॰**एक**,आहा॰एक आहा॰मि॰अनेक कार्मण एक

(४) ११ प्र॰ के अनेक औदा॰मि॰**एक**,आहा॰एक आहा॰मि॰अनेक कार्मण अनेक

(५) ११ प्र॰ के अनेक औदा॰मि॰**एक**,आहा॰अनेक आहा॰मि॰एक कार्मण एक
(६) ११ प्र॰ के अनेक औदा॰मि॰**एक**,आहा॰अनेक आहा॰मि॰एक कार्मण अनेक
(७) ११ प्र॰ के अनेक औदा॰मि॰**एक**,आहा॰अनेक आहा॰मि॰अनेक कार्मण एक
(८) ११ प्र॰के अनेक औदा॰मि॰**एक**,आहा॰अनेक आहा॰मि॰अनेक कार्मण अनेक

ये ८ भ ग औदारिकमिश्र के **एक** से बनते हैं। ऐसे ही आठ भ ग औदारिक मिश्र के **अनेक** से बनते हैं।

(१)	इस तरह ११ शाश्वत मात्र का भ ग	१
(२)	११ शाश्वत के साथ एक-एक अशाश्वत के भ ग	८
(३)	११ शाश्वत के साथ दो-दो अशाश्वत के भ ग	२४
(४)	११ शाश्वत के साथ ३-३ अशाश्वत के भ ग	३२
(५)	११ शाश्वत के साथ ४-४ अशाश्वत के भ ग	१६
	मनुष्य में कुल भ ग	**८१**

प्रश्न-४ : 'गतिप्रवाह' का क्या अर्थ है और इसके भेद-प्रभेद किस प्रकार है ?

उत्तर- जीव और पुद्गल के हलन चलन स्प दन रूप प्रवृत्ति 'गतिप्रवाह' है। इसमें सभी प्रकार के जीवा जीव की गतियाँ समाविष्ट हो जाती है। गति प्रवाह के मुख्य पा च भेद है- **(१) प्रयोग गति प्रवाह-** उक्त १५ प्रयोगों(योगों) से प्रवृत्त मन वचन काय के पुद्गलों का हलन चलन स्प दन।

(२) तत गति प्रवाह- रास्ते चलते मजिल पूर्ण होने के पूर्व जो क्रमिक म द गति होती है, वह जीव की सामान्य गति ही तत गति प्रवाह है।

(३) ब धनच्छेद गति प्रवाह- जीव से रहित होने पर शरीर की गति या शरीर से रहित जीव की गति अर्थात् मृत्यु होने पर जीव और शरीर की जो गति(गमन स्प दन क्रिया) होती है वह ब धनच्छेद गति प्रवाह है।

(४) उपपातगति- इसके तीन प्रकार है- क्षेत्रोपपात, भवोपपात और नो भवोपात। १. नरक गति आदि क्षेत्रगत आकाश में जीव आदि का ठहरना, रहना, यह क्षेत्रोपपात गति। २. किसी भी जन्मस्थान में जन्म धारण कर उस पूरे भव में वहाँ क्रिया करते हुए रहना भवोपपात गति है। ३. सिद्ध बनने के पूर्व की गमन क्रिया नोभवोपपात गति है।

(५) विहायोगति- आकाश में होने वाली गति को विहायोगति कहते है। इसके १७ प्रकार है। (१) स्पर्शदगति (२) अस्पर्शदगति (३) उपस पद्यामान (आश्रय युक्त)गति (४) अनुस पद्यमानगति (५) पुद्गल(युक्त)गति (६) म डुकगति(उछलने रूपगति) (७) नावा की गति (८) नयगति(नयों का घटित होना) (९) छाया की गति (१०) छायानुपातगति-छाया के समान अनुगमन रूप गति (११) लेश्या की गति (१२) लेश्या के अनुरूप गति (१३) उद्दिश्यगति(प्रमुखता स्वीकार कर रहना)(१४) चार पुरुषों की सम-विषम गति अर्थात् साथ में रवाना होना, साथ में पहुँचना आदि ४ भग (१५) वक्रगति(टेढ़ी गति) (१६) प क गति (१७) ब धन-विमोचन-गति। आम्र आदि फलों का स्वभाविक टूट कर गिरना।

ये ५ प्रकार की एव विविध प्रकार की गतियाँ जीव की प्रमुखता से कही गई है फिर भी अनेक गतियाँ अजीव में भी पाई जाती है जिसमें जो पावे यथायोग्य समझ लेना चाहिये।

गतिप्रवाह, हलन-चलन प्रवाह, गमनप्रवाह-स्प दनप्रवाह यों विशेष-विशेष गति के लिये प्रवाह शब्द प्रयुक्त एव उपयुक्त है। प्रतियों में **प्रपात** छाया करके अर्थ किया गया है। प्रस्तुत में गति के साथ प्रवाह शब्द ज्यादा उपयुक्त समझ कर स्वीकारा गया है।

❋ पद-१७ : लेश्या ❋

प्रश्न-१ : इस पद में विषय क्रम या विषय विभाजन किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर- प्रस्तुत पद में लेश्या स ब धी अनेकानेक निरूपण है, उन्हें ६ उद्देशकों में विभाजित किया गया है। जिसमें-

प्रथम उद्देशक में- सलेशी जीवों के आहार, श्वास, शरीर, कर्म, वर्ण, लेश्या, वेदना, क्रिया, आयु आदि के समान असमान होने का निरूपण है और फिर कृष्ण आदि ६ लेश्या वाले जीवों में वही कथन किया गया है।

दूसरे उद्देशक में- २४ द ड़कों में पाई जाने वाली लेश्याओं वाले जीवों की अल्पाबहुत्व कही गई है।

तीसरे उद्देशक में- कृष्ण आदि लेश्या युक्त जीवों की उत्पत्ति एव मरण (उद्वर्तना)स ब ध की निरूपण है तथा लेश्या से स ब धित अवधिज्ञान का तुलनात्मक कथन है।

चौथे उद्देशक में- लेश्याओं का परस्पर परिणमन एव वर्ण, ग ध, रस, स्पर्श, परिणाम, प्रदेश आदि का कथन है।

पा चवें उद्देशक में- लेश्याओं के परस्पर अपरिणमन का कथन है।

छट्ठे उद्देशक में- भरत आदि क्षेत्र के मनुष्य-मनुष्याणी की एव माता तथा गर्भगत जीव की लेश्या स ब ध की विचारणा है।

प्रश्न-२ : लेश्या का स्वरूप क्या है और यह कितने प्रकार की कही गई है ?

उत्तर- लेश्या द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार की होती है। जीव के परिणाम **भाव लेश्या** है, अरूपी है। भाव लेश्या के अनुरूप कृष्णादि द्रव्यों का जो ग्रहण होता है वही **द्रव्य लेश्या** है; रूपी है। योग और कषाय से ग्रहण किये जाने वाले कर्मों को आत्मा के साथ चिपकाने का कार्य कृष्णादि द्रव्य लेश्या से होता है। वह कषायानुर जित भी होती है एव योगानुर जित भी। इसके द्रव्य योगा तर्गत है।

द्रव्य और भाव दोनों प्रकार की लेश्याओं के ६-६ प्रकार है- १.कृष्ण २. नील ३. कापोत ४. तेजो ५. पद्म ६. शुक्ल।

भावलेश्या को ही अध्यवसाय एव आत्म परिणाम कहा जाता है। स्थूल दष्टि से इन तीनों को पर्याय शब्द समझना चाहिये। सूक्ष्मदष्टि से तीनों शब्दों का अलग-अलग प्रयोग भी शास्त्र में (केवलज्ञान,अवधिज्ञान एव मनपर्यवज्ञान की उत्पत्ति समय के वर्णन में) देखा जाता हैं।

नरक में- तीन लेश्या क्रमशः। भवनपति व्य तर में- चार क्रमशः। ज्योतिषी में- एक तेजो। वैमानिक में- तीन शुभ। पृथ्वी, पानी, वनस्पति में- चार क्रमशः। तेउ,वायु,तीन विकलेन्द्रिय में- तीन अशुभ। तिर्यंच प चेन्द्रिय और मनुष्य में छ लेश्या होती है।

प्रश्न-३ : जीवों के आहार शरीर आदि की विभिन्नता-असमानता किस प्रकार होती है ?

उत्तर- प्रस्तुत में लेश्या पद होने से आहारादि समस्त प्रकार की तुलना

समुच्चय सलेशी जीवों में कही गई है फिर उसे ही कृष्ण आदि छहों लेश्याओं से स ब धित करके कहा है।

(१) सलेशी नारकी में आहार, शरीर, उच्छवास समान नहीं होते क्यों कि शरीर की अवगाहना छोटी बड़ी होती है। छोटी अवगाहना में ये आहारादि अल्प होते हैं, बड़ी अवगाहना में ये अधिक होते हैं।

इसी तरह भवनपति आदि २३ द ड़क में जानना। किन्तु मनुष्य युगलिया बड़ी अवगाहना होते हुए भी आहार के पुद्गल **अधिक तो ग्रहण करता है** कि तु बार बार नहीं करता है, यह फर्क है। शेष में बड़ी अवगाहना वाले बार बार करते हैं अर्थात् कम समय के अंतर से करते हैं।

(२) सलेशी नारकी में कर्म, वर्ण, लेश्या समान नहीं होते हैं क्यों कि पूर्वोत्पन्न के ये विशुद्ध होते हैं नूतनोत्पन्न के ये अविशुद्ध होते हैं।

देवताओं में पूर्वोत्पन्न में ये अविशुद्ध होते हैं नूतनोत्पन्न में ये विशुद्ध होते हैं। शेष द ड़कों में नरक के समान है।

(३) सलेशी नैरयिक में वेदना समान नहीं होती है। सन्नीभूत में और सम्यग्दृष्टि में ज्यादा वेदना होती है, असन्निभूत में और मिथ्यादृष्टि में अल्प वेदना होती है।

देवताओं में इसी तरह कथन है। पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय में वेदना समान है सभी असन्निभूत होने से। सन्नी तिर्यंच, मनुष्य के वेदना का कथन नरक के समान है।

(४) सलेशी नैरयिकों में 'क्रिया' समान नहीं होती है। क्यों कि सम्यग्दृष्टि में आर भिकी आदि चार क्रिया होती है, मिथ्यादृष्टि में पा चों क्रियाएँ होती है। देवों में और तिर्यंच प चेन्द्रिय में इसी प्रकार है। पा च स्थावर तीन विकलेन्द्रिय में उक्त पा चों क्रिया है अतः स ख्या से समान है। मनुष्य में मिथ्यादृष्टि में पा च क्रिया, सम्यग्दृष्टि में ४ क्रिया, देश विरत में ३ क्रिया, सर्वविरत में दो क्रिया, अप्रमत्त स यत में एक क्रिया वीतराग में अक्रिया।

(५) सलेशी नैरयिकों में आयुष्य सभी का समान नहीं होता है क्यों कि अल्पाधिक आयुष्य वाले होते हैं, पूर्वोत्पन्न नूतनोत्पन्न भी होते हैं। अतः सभी नैरयिकों में आयु के सम-विषम स ब धी चार भ ग होते हैं- **१.** कई समान आयु वाले और साथ में उत्पन्न **२.** कई समान आयु वाले भिन्न

समय में उत्पन्न **३.** कई असमान आयु वाले साथ में उत्पन्न **४.** कई असमान आयु वाले और भिन्न समय में उत्पन्न। इसी तरह सभी द ड़क में नरक के समान आयु कहना।

कृष्णलेश्या वाले नारकों में सन्नी असन्नी का विकल्प नहीं करना। मनुष्य में अप्रमत्त आदि आगे के विकल्प कृष्ण लेश्या में नहीं करना। ज्योतिषी वैमानिक का कथन ही नहीं करना क्यों कि यह लेश्या उनमें नहीं है। **नील लेश्या वाले** कृष्ण के समान कथन है। **कापोत लेश्या वाले** कृष्ण के समान कथन है किन्तु नरक में सन्नी असन्नि का विकल्प कहना। **तेजोलेश्या वाले** नारकी, तेउ, वायु, तीन विकलेन्द्रिय का कथन ही नहीं करना। देवताओं में सन्नीभूत असन्नीभूत का विकल्प नहीं करना। शेष में सलेशी के समान कथन है किन्तु मनुष्य में अप्रमत्त तक कथन करना, आगे का कथन नहीं करना। **पद्म-शुक्ल लेश्या वाले** मनुष्य, तिर्यंच प चेन्द्रिय एव वैमानिक का कथन करना। शेष में दोनों लेश्या नहीं है। शेष स पूर्ण कथन सलेशी के समान है। **॥ उद्देशक-१ समाप्त ॥**

प्रश्न-४ : समुच्चय जीव और नारकी आदि में पाई जाने वाली लेश्याओं की अल्पाबहुत्व किस प्रकार है ?

उत्तर- किसी भी द ड़क में जितनी लेश्याएँ पाई जाती है उनमें से किसी लेश्या में वे जीव कम होते है और किसी में ज्यादा होते हैं, एक समान नहीं होते है अतः प्रत्येक द ड़क में रहे जीवों में कोई लेश्या वाले अधिक होते है और कोई लेश्या वाले कम होते है यह हीनाधिकता स्वाभाविक ही सदा उन जीवों में स ख्या की अपेक्षा रहती है, उसे यहाँ कोष्ठक में स क्षिप्त में देखें-

लेश्याओं की अल्पाबहुत्व :-

जीवनाम	कृष्ण	नील	कापोत	तेजो	पद्म	शुक्ल	अलेशी
समुच्चय जीव	७ विशे॰	६ विशे॰	५ अन॰	३ स॰	२ स॰	१ अल्प	४ अन॰
नारकी	१ अल्प	२ अस॰	३ अस॰	–	–	–	–
तिर्यंच	६ विशे॰	५ विशे॰	४ अन॰	३ स॰	२ स॰	१ अल्प	–
एकेन्द्रिय	४ विशे॰	३ विशे॰	२ अन॰	१ अल्प	–	–	–
पृथ्वी, पानी	४ विशे॰	३ विशे॰	२ अस॰	१ अल्प	–	–	–
वनस्पति	४ विशे॰	३ विशे॰	२ अन॰	१ अल्प	–	–	–

जीवनाम	कृष्ण	नील	कापोत	तेजो	पद्म	शुक्ल	अलेशी
तेउ, वायु	३ विशे॰	२ विशे॰	१ अल्प	–	–	–	–
विकलेन्द्रिय	३ विशे॰	२ विशे॰	१ अल्प	–	–	–	–
अस ज्ञी तिर्यंच	३ विशे॰	२ विशे॰	१ अल्प	–	–	–	–
प चेन्द्रिय तिर्यंच	६ विशे॰	५ विशे॰	४ अस॰	३ स॰	२ स॰	१ अल्प	–
स ज्ञी प चेन्द्रिय	६ विशे॰	५ विशे॰	४ स॰	३ स॰	२ स॰	१ अल्प	–
तिर्यंचाणी	६ विशे॰	५ विशे॰	४ स॰	३ स॰	२ स॰	१ अल्प	–
मनुष्य	७ विशे॰	६ विशे॰	५अस॰	४ स॰	३ स॰	२ स॰	१ अल्प
स ज्ञी मनुष्य	७ विशे॰	६ विशे॰	५ स॰	४ स॰	३ स॰	२ स॰	१ अल्प
देव	५ विशे॰	४ विशे॰	३ अस॰	६ स॰	२ अस॰	१ अल्प	–
देवी	३ विशे॰	२ विशे॰	१ अल्प	४ स॰	–	–	–
भवन॰ देवदेवी	४ विशे॰	३ विशे॰	२ अस॰	१ अल्प	–	–	–
व्य तर देवदेवी	४ विशे॰	३ विशे॰	२ अस॰	१ अल्प	–	–	–
वैमानिक देव	–	–	–	३ अस॰	२ अस॰	१ अल्प	–
ज्योतिषी	–	–	–	सभी	–	–	–

स क्षिप्त शब्दसूचि :- भवन॰ = भवनपति, विशे॰ = विशेषाधिक, अस॰ = अस ख्यातगुणा, स॰ = स ख्यात गुणा, अन॰= अन तगुणा।

कोष्ठक में दिये क्रमा क अनुसार लेश्या की हीनाधिकता समझनाँ। ज्योतिषी देवों में मात्र एक तेजोलेश्या है उसमें अल्पाबहुत्व नहीं होती हैं।

प्रश्न-५ : तिर्यंच-तिर्यंचाणी, देव-देवी वगैरह की लेश्या स ब धी सम्मिलित अल्पाबहुत्व किस प्रकार है ?

उत्तर- गर्भज तिर्यंच तिर्यंचाणी की सम्मिलित अल्पाबहुत्व- (१) सबसे थोड़ा शुक्ललेशी तिर्यंच। (२) शुक्ललेशी तिर्यंचाणी स ख्यातगुणी। (३) पद्मलेशी तिर्यंच स ख्यातगुणा। (४) पद्मलेशी तिर्यंचाणी स ख्यातगुणी। (५) तेजोलेशी तिर्यंच स ख्यातगुणा। (६) तेजोलेशी तिर्यंचाणी स ख्यातगुणी। (७) कापोतलेशी तिर्यंच स ख्यातगुणा। (८) नीललेशी तिर्यंच विशेषाधिक। (९) कृष्णलेशी तिर्यंच विशेषाधिक। (१०) कापोतलेशी तिर्यंचाणी स ख्यातगुणी। (११) नीललेशी तिर्यंचाणी विशेषाधिक। (१२) कृष्णलेशी तिर्यंचाणी विशेषाधिक। मनुष्य मनुष्याणी सभी लेश्या वाले परस्पर स ख्यात गुणे होते हैं।

देव देवी की सम्मिलित अल्पाबहुत्व-(१) सबसे थोड़ा शुक्ललेशी देव (२) पद्मलेशी अस ख्यगुणा (३) कापोतलेशी देव अस ख्यगुणा (४) नीललेशी विशेषाधिक (५) कृष्णलेशी देव विशेषाधिक (६) कापोतलेशी देवियाँ स ख्यातगुणी (७) नीललेशी देवियाँ विशेषाधिक (८) कृष्णलेशी देवियाँ विशेषाधिक (९) तेजोलेशी देव स ख्यातगुणा (१०) तेजोलेशी देवियाँ स ख्यातगुणी।

भवनपति देव-देवी की सम्मिलित अल्पाबहुत्व-(१) सबसे थोड़ा तेजोलेशी देव (२) तेजोलेशी देवियाँ स ख्यातगुणी (३) कापोतलेशी देव अस ख्यातगुणा (४) नीललेशी देव विशेषाधिक (५) कृष्णलेशी देव विशेषाधिक (५) कापोतलेशी देवी स ख्यातगुणी (७) नीललेशी देवी विशेषाधिक (८) कृष्णालेशी देवी विशेषाधिक।

इसी प्रकार व्य तर देव देवी की अल्पाबहुत्व है। ज्योतिषी देव-देवी में और वैमानिक देवी में एक तेजोलेश्या ही होती है अतः अल्पाबहुत्व नहीं है। **अल्पऋद्धि-महाऋद्धि**- जहाँ जितनी लेश्या है उसमें पूर्व की लेश्या कृष्ण आदि अल्प ऋद्धि वाली है बाद की क्रमशः महा ऋद्धि वाली है। **॥ उद्देशक-२ समाप्त ॥**

प्रश्न-६ : जीव के उत्पन्न होने के स ब ध में तथा जन्म-मरण समय की लेश्या के स ब ध में किस प्रकार समझना ?

उत्तर- कौन किस में उत्पन्न होता है इस प्रश्न के उत्तर में यहाँ पूर्व भव का निर्देश नहीं करके अपेक्षा विशेष से कथन किया गया है तदनुसार-

(१) नैरयिक ही नरक में उत्पन्न होता है, अन्य(अनैरयिक) जीव नरक में उत्पन्न नहीं होते। क्यों कि नरक का आयु प्रार भ होने के बाद ही जीव वहाँ आते है। अतः उत्पत्ति स्थान की अपेक्षा यही उत्तर २४ ही द ड़क में समझना अर्थात् मनुष्य ही मनुष्य में या देवता ही देव योनि स्थान में उत्पन्न होता है।

(२) इसी प्रकार कृष्ण आदि लेश्या वाला ही कृष्ण आदि लेश्या में उत्पन्न होता है। जिस लेश्या में जीव उत्पन्न होता है नारकी देवता में उसी लेश्या में मरते है और तिर्यंच मनुष्य में उसी लेश्या में या अन्य किसी भी लेश्या में मरता है। किन्तु जिस लेश्या में जीव मरते हैं उसी

लेश्या में उत्पन्न होते हैं। यह नियम २४ ही द ड़क में है।

(३) जिस द ड़क में जितनी लेश्या है उनकी अपेक्षा उक्त कथन समझ लेना। पृथ्वी पानी वनस्पति तेजोलेश्या में उत्पन्न होने वाले तेजोलेश्या में नहीं मरते अन्य तीन कृष्णादि किसी में भी मरते हैं।

(४) ज्योतिषी वैमानिक में उवट्टण(मरने)के स्थान पर च्यवन कहा जाता है यह सर्वत्र ध्यान रखना अर्थात् जिस लेश्या में जन्मे उसी लेश्या में च्यवे।

नोट :- ***नारकी, देवता प्रत्येक में जीवन भर एक ही लेश्या होती है यह द्रव्यलेश्या की अपेक्षा ही समझना। भाव लेश्या कोई भी हो सकती है।***

प्रश्न-७ : लेश्या से अवधिज्ञान वालों की तुलना किस प्रकार की जाती है तथा ५ ज्ञान का लेश्या से क्या स ब ध है ?

उत्तर- कृष्णलेशी नैरयिकों के अवधिज्ञान में क्षेत्र आदि की अपेक्षा अल्प ही अ तर होता है। कृष्ण और नील लेश्या वालों के अवधिज्ञान के क्षेत्र एव विशुद्धि में कुछ विशेष अ तर होता है और कृष्ण एव कापोत में उससे और कुछ अधिक अ तर होता है। इन तीनों के अ तर के लिये तीन दृष्टात- १. समभूमि पर दो व्यक्ति खड़े होकर देखे तो उनकी दृष्टियों में अत्यल्प अ तर होता है। २. एक व्यक्ति सम भूमि पर दूसरा पहाड़ पर खड़ा रहकर देखे। ३. एक समभूमि पर दूसरा पर्वत के शिखर पर खड़ा रहकर देखे। इस प्रकार का तीनों लेश्या वालों के आपस में अवधिज्ञान का अ तर समझना।

नारकी का अवधिक्षेत्र जघन्य आधाकोस और उत्कृष्ट ४ कोस होता है। अवधि क्षेत्र के अनुपात से द्रव्यकाल एव विशुद्धि अविशुद्धि में अ तर होता है।

पा च लेश्या में चार ज्ञान, तीन अज्ञान हो सकते हैं। शुक्ललेश्या में ५ ज्ञान, तीन अज्ञान हो सकते हैं अर्थात् कृष्णादि पा च लेश्या में २ ज्ञान, ३ ज्ञान या ४ ज्ञान हो सकते हैं एव शुक्ल लेश्या में दो, तीन, चार एव एक ज्ञान(केवलज्ञान) हो सकता है। **॥उद्देशक-३ समाप्त॥**

प्रश्न-८ : लेश्याओं के वर्ण आदि किस प्रकार के होते है ?

उत्तर- द्रव्यलेश्या रूपी पुद्गलमय होने से उसमे वर्ण आदि पाये जाते

हैं। कि तु लेश्या के पुद्गल सामान्यतया चक्षुग्राह्य नहीं होने से छद्मस्थ प्राणी उनके अस्तित्व को आगम प्रमाण से ही समझ सकते हैं। क्यों कि रूपी पदार्थ भी दो प्रकार के होते हैं, छद्मस्थों को दिखने वाले और नहीं दिखने वाले। बादर वायुकाय के जीव तीन शरीर वाले होते हुए भी चर्मचक्षु से नहीं दिखते हैं। अन्य बादर पृथ्वी आदि भी अनेक जीवों के शरीर पि ड़ रूप होने से दिखते हैं तथा त्रस जीव एक-एक भी दिखते हैं। स मुर्च्छिम मनुष्य, प चेन्द्रिय होते हुए भी नहीं दिखते हैं।

इसीलिये लेश्या के विषय में उनके वर्ण ग ध, रस, स्पर्श आदि का अस्तित्व आगम प्रमाण से जानने योग्य है उनका हम प्रत्यक्षीकरण चर्मचक्षु से नहीं कर सकते। आगम कथित लेश्या के वर्णादि इस प्रकार है-

वर्ण- कृष्णलेश्या का वर्ण काला होता है, यथा- अ जन, ख जन, भैंस का सि ग, जामुन,गीला अरीठा, घने बादल, कोयल, कौआ, भँवरों की प क्ति, हाथी का बच्चा, मस्तक के बाल, काला अशोक, काला कनेर आदि।

नीललेश्या का वर्ण नीला होता है यथा- तोता,चास पक्षी, कबूतर की ग्रीवा, मयूर की ग्रीवा, अलसी का फूल, नीलकमल, नीला अशोक, नीला कनेर आदि।

कापोतलेश्या का ताम्र वर्ण होता है यथा-ता बा, खैर सार, अग्नि, बेंगन का फूल, जवासा का फूल।

तेजोलेश्या का वर्ण लाल होता है यथा- खरगोश आदि पशुओं का खून, मनुष्यों का खून, मखमली वर्षाती कीड़ा, बाल सूर्य, लाल दिशा, चिरमी, हिंगलू, मूँगा, लाक्षारस, लोहिताक्षमणि, किरमची र ग का क बल, हाथी का तालुआ, जपाकुसुम, कि शुक(टेसु) का फूल, लाल अशोक, लाल कनेर, लाल ब धुजीवक।

पद्मलेश्या का वर्ण पीला होता है यथा- हल्दी, चम्पक छाल, हरताल, स्वर्ण शुक्ति, स्वर्णरेखा, पीताम्बर, चम्पा फूल, कनेर फूल, कुष्माड़ लता, जूही, कोर ट फूल, पीला अशोक, पीला कनेर, पीला ब धुजीवक।

शुक्ललेश्या का वर्ण सफेद होता है यथा- अ करत्न, श ख, च द्रमा,

स्वच्छ जल, फेन, दूध, दही, चांदी, शरद ऋतु के बादल, पु ड़रीक कमल, चावलों का आटा, सफेद अशोक, कनेर ब धुजीवक।

इन छ लेश्या में कापोतलेश्या का वर्ण मिक्स वर्ण है, जिसमें लाल+हरा एव लाल+नीला है । शेष के पा च वर्ण स्वत त्र है।

रस-कृष्णलेश्या का रस कड़वा होता है यथा-नीम, तुम्बा, रोहिणी, कुटज, कड़वी ककड़ी आदि। **नील** लेश्या का तिक्त रस होता है यथा- सू ठ, लालमिर्ची, कालीमिर्ची, पीपर, पीपरामूल, चित्रमूलक, पाठा वनस्पति आदि। **कापोत** लेश्या का रस पके फलों के समान कम खट्टा होता है- आम, बैर, कवीठ, बिजोरा, दाड़िम, फनस आदि।

तेजोलेश्या का रस पके फलों के समान कम खट्टा अधिक मीठा होता है। **पद्म**लेश्या का रस आसव, अरिष्ट, अवलेह, मद्य के समान होता है। **शुक्ल** लेश्या का रस मीठा होता है यथा- गुड़, शक्कर, मिश्री, मिष्टान आदि।

उक्त पदार्थों से कई गुणा अधिक रस इन लेश्याओं का होता है।

ग ध- कृष्णादि तीन लेश्याएँ दुर्गंधमय होती है और तेजो आदि तीन लेश्याएँ सुग धमय होती है अर्थात् मृत कलेवरों सी दुर्गंध वाली एव फूलों की खूशबू सदृश सुग ध वाली होती है।

स्पर्श-कृष्णादि तीन लेश्या का स्पर्श खरदरा होता है, तेजो लेश्या आदि तीन का स्पर्श सुहाना(मृदु) होता है।

३ लेश्याएँ प्रशस्त है, ३ अप्रशस्त है। ३ स क्लिष्ट परिणामी है, ३ अस क्लिष्ट परिणामी है। ३ दुर्गति गामी है, ३ सद्गति गामी है। ३ शीत रुक्ष है, ३ उष्ण स्निग्ध है।

परिणाम- जघन्य मध्यम उत्कृष्ट के भेद से लेश्याओं के परिणाम तीन तरह के होते हैं। इनके भी पुनः जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट तीन भेद होते हैं ये क्रमशः पुनः पुनः तीन-तीन भेद होने से लेश्याओं के परिणाम ३-९- २७-८१-२४३ प्रकार के होते हैं।

प्रदेश आदि- लेश्याओं के अन त प्रदेशी स्क ध है। अस ख्य आकाशप्रदेश की अवगाहना होती है। प्रत्येक लेश्या की अन त वर्गणाएँ होती है।

प्रत्येक लेश्या के अस ख्य स्थान अस ख्य दर्जे होते हैं।

अल्पाबहुत्व-सबसे कम कापोतलेश्या के स्थान द्रव्य से एव प्रदेश से है। उससे नील, कृष्ण, तेजो, पद्म एव शुक्ल लेश्या के स्थान उत्तरोत्तर अस ख्यगुण है। द्रव्य से प्रदेश अन तगुणे है। **॥उद्देशक-४ समाप्त॥**

प्रश्न-९ : लेश्या का परस्पर परिणमन होना और नहीं होना दोनों प्रकार के निरूपण क्यों है ?

उत्तर- उद्देशक-४ में मनुष्य तिर्यंच की द्रव्यलेश्याओं में परिणामा तर होना दृष्टांत सहित बताया है और उद्देशक-५ में नारकी देवों की द्रव्य लेश्याओं में परिणामा तर नहीं होना समझाया गया है।

तिर्यंच मनुष्य में- जैसे दूध, छाछ के स योग से परिणामातरित होता है वैसे ही तिर्यंच मनुष्य की द्रव्यलेश्या स योगवशात् पूर्णतः बदल जाती है।

देव-नरक में- जिस तरह वैडूर्यमणि में जैसे र ग का धागा पिरोया जाय वैसे ही र ग की वह मणि दिखने लगती है पर तु धागा निकालते ही वह मणि पुनः पूर्वावस्था में आ जाती है। उसी प्रकार देवों की मूल लेश्या में अन्य लेश्या का सामान्य विशेष प्रभाव क्षणिक होता है जिससे उस मूल लेश्या में उत्कर्ष या अपकर्ष होता है अर्थात् अपने से हीन लेश्या द्वारा अपकर्ष और उच्च लेश्या द्वारा उत्कर्ष रूप कुछ क्षणिक परिणमन होता है कि तु आमूलचूल परिवर्तन नहीं होता है जिससे नारकी देवों की मूल लेश्या एक ही एक रहती है। भावलेश्या के परिवर्तन से उन लेश्या के पुद्गल आने से मूल लेश्या पर उत्कर्ष अपकर्ष रूप प्रभाव होता है जो क्षणिक होकर पुनः नष्ट हो जाता है। स्थाई रूप में मूल एक ही द्रव्यलेश्या नारकी देवों के रहती है और भावलेश्याएँ परिवर्तित हो सकती है तभी नारकी जीव शुभ गति का आयुष्य ब ध कर सकते और वैमानिक देवता अशुभ गति का आयुष्य ब ध कर सकते हैं।

इस प्रकार लेश्या परिणमन स ब धी अ तर स्पष्ट है कि तिर्यंच मनुष्य में पूर्ण परिणामा तर हो जाता है और देव नरक में छायामात्र, आकारमात्र, प्रतिबि ब मात्र जैसा परिणमन होता है कि तु वास्तव में स्वरूप की अपेक्षा वह लेश्या दूसरी लेश्या नहीं बन जाती है। ऐसा

छहों लेश्या में समझ लेना। नारकी में तीन लेश्या और देवो में ६ लेश्या है। उन सभी में अपेक्षा का परिणमन क्षणिक होता है मौलिक एक लेश्या वहीं रहते हुए।

इस कारण चौथे उद्देशक और पा चवें उद्देशक के निरूपण में भिन्नता दिखती है। **॥ उद्देशक-५ समाप्त ॥**

प्रश्न-१० : मनुष्यों में और माता-पुत्र में लेश्याओं का क्या स ब ध होता है ?

उत्तर- (१) प द्रह कर्मभूमि मनुष्य में छः लेश्या होती है। अकर्म भूमिज एव अ तरद्वीपज मनुष्य मनुष्याणी में चार लेश्या होती है। पद्म और शुक्ल लेश्या नहीं होती है। (२) कोई भी लेश्या वाला मनुष्य हो या मनुष्याणी वह छहों लेश्या वाले पुत्र-पुत्री के जनक या जननी हो सकते हैं। कर्मभूमि, अकर्मभूमि दोनों में ही इसी तरह समझना अर्थात् लेश्या स ब धी प्रतिब ध माता-पिता, पुत्र-पुत्री में नहीं होता है। **नोट**- लेश्याओं के लक्षण उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन ३४ में कहे हैं इसकी जानकारी के लिये प्रश्नोत्तर भाग-९ देखें। **॥उद्देशक-६ समाप्त॥**

❋ पद-१८ : कायस्थिति ❋

प्रश्न-१ : कायस्थिति किसे कहते है और इस पद में किनकी कायस्थिति कही है ?

उत्तर- सामान्य रूप अथवा विशेष रूप पर्याय में जीव के निर तर रहने का काल **कायस्थिति** है। स्थिति एक भव की उम्र को कहा जाता है। कायस्थिति में अनेकों अन ता भव भी गिने जा सकते है और पूरा एक भव भी नहीं होता है। द ड़क, गति आदि की एव जीव के भाव पर्याय, ज्ञान, दर्शन योग, उपयोग, कषाय, लेश्या आदि की कायस्थिति होती है। ऐसे यहाँ मुख्य २२ द्वारों से कायस्थिति कही गई है। प्रत्येक द्वार में अनेकानेक प्रकार है। यथा-

क्रम	द्वार	भेद
१	जीव	१. समुच्चयजीव
२	गति	१. नरक २. तिर्यंच ३. तिर्यंचाणी ४. मनुष्य ५. मनुष्याणी ६. देव ७. देवी + ७ अपर्याप्त + ७ पर्याप्त=२१, २२वाँ सिद्ध
३	इन्द्रिय	१ सइन्द्रिय, ५ एकेन्द्रियादि+६ अपर्याप्त+६ पर्याप्त=१८, १९ अनिंद्रिय
४	काय	१ सकाय ६ पृथ्वी आदि + ७ अपर्याप्त + ७ पर्याप्त = २१, २२वाँ अकाय । सूक्ष्म के २१ बादर के ३० कुल २२+२१+३० = ७३
५	योग	१ सयोगी ३ योग १ अयोगी = ५
६	वेद	१ सवेदी ३ वेद १ अवेदी = ५
७	कषाय	१ सकषायी ४ कषाय १ अकषायी = ६
८	लेश्या	१ सलेशी ६ लेश्या १ अलेशी = ८
९	सम्यक्त्व	३ दृष्टि
१०	ज्ञान	१ सज्ञानी ५ ज्ञान, १ अज्ञानी ३ अज्ञान = १०
११	दर्शन	४ दर्शन
१२	सयत	१ स यत २ अस यत ३ स यतास यत ४ नोस यत नोअस यत।
१३	उपयोग	१ साकारोपयोग २ अनाकारोपयोग
१४	आहार	१ छद्मस्थ आहारक २ केवली आहारक ३ छद्मस्थ अनाहारक ४ सिद्ध केवली अणाहारक ५ सजोगी भवस्थ केवली अणाहारक ६ अजोगी भवस्थ केवली अणाहारक
१५	भाषक	१ भाषक २ अभाषक
१६	परित्त	१ स सार परित्त २ स सार अपरित्त ३ कायपरित्त ४ काय अपरित्त ५ नोपरित्त नोअपरित्त
१७	पर्याप्त	१ पर्याप्त २ अपर्याप्त ३ नोपर्याप्त नोअपर्याप्त
१८	सूक्ष्म	१ सूक्ष्म २ बादर ३ नोसूक्ष्म नोबादर
१९	सन्नी	१ सन्नी २ असन्नि ३ नोसन्नी नोअसन्नि
२०	भवी	१ भवी २ अभवी ३ नोभवी नोअभवी
२१	अस्तिकाय	धर्मास्तिकाय आदि ६ द्रव्य
२२	चरिम	१ चरिम २ अचरिम
इस प्रकार ये २२ द्वार हैं । इन के १९५ भेदों की कायस्थिति यहाँ कही गई है।		

प्रश्न-२ : जीवाभिगम सूत्र में भी कायस्थिति कही गई है तो यहाँ क्या विशेषता है ?

उत्तर- जीवाभिगम सूत्र प्रश्नोत्तर भाग-६ में यहाँ कहे गये १९५ बोलों में से अधिका श की(१९३ बोलों की) कायस्थिति किसी न किसी रूप में कह दी गई है। प्रस्तुत में १९५ बोलों की कायस्थिति एक साथ एक ही पद में है जब कि जीवाभिगम सूत्र में अलग-अलग अध्यायों में स ख्या के मेल अनुसार कहीं गति, कहीं जाति, कहीं योग, कहीं उपयोग, कहीं ६ काया, कहीं आहारक आदि, यों बिखरे-बिखरे रूप में कायस्थिति और अ तर दोनों कहे गये हैं। लेकिन यहाँ अ तर किसी का नहीं बताया गया है।

प्रस्तुत शास्त्र की यह विशेषता है कि एक ही विषय प्रायः प्रत्येक पद में पूर्णतया कहने की पद्धति अपनाई गई है । इसलिये इस पद में भी समस्त १९५ बोलों की जघन्य और उत्कृष्ट कायस्थिति २२ द्वार के क्रम से व्यवस्थित कह दी गई है । पाठकों को कायस्थिति स ब धी समस्त जानकारी जीवाभिगम सूत्र में मिल जाती है फिर भी स क्षिप्त रूप में यहाँ कोष्ठक द्वारा पाठकों की सुविधा एव स तोष के लिये पुनः दी जाती है ।पर परा में इसे 'कायस्थिति का थोकड़ा' कहा जाता है ।

२२ द्वार के १९५ बोलों की कायस्थिति :-

क्रम	द्वार के बोल	जघन्य	उत्कृष्ट कायस्थिति
१	समुच्चय जीव	×	शाश्वत
गति			
२-३	नारकी-देव	१००००वर्ष	३३ सागरोपम
४	देवी	१००००वर्ष	५५ पल्योपम
५	तिर्यंच	अ तर्मुहूर्त	अन तकाल(वनस्पितकाल)
६ से ८	तिर्यंचाणी मनुष्य-मनुष्याणी	अ तर्मुहूर्त	७ क्रोड़पूर्व अधिक तीन पल्योपम
९ से १५	७ बोल अपर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	अ तर्मुहूर्त
१६-१७	पर्याप्ता नारकी-देव	अ तर्मुहूर्त न्यून १००००वर्ष	अ तर्मुहूर्त न्यून ३३ सागरोपम

क्रम	द्वार बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
१८	पर्याप्ता देवी	अ तर्मुहूर्त न्यून १०००० वर्ष	अ तर्मुहूर्त न्यून ५५ पल्योपम
१९ से २२	पर्या॰ तिर्यंच-तिर्यंचाणी पर्या॰ मनुष्य-मनुष्याणी	अ तर्मुहूर्त	अ तर्मुहूर्त न्यून ३ पल्योपम
२३	सिद्ध	१ भ ग	सादि अन त
इन्द्रिय			
२४	सइन्द्रिय	२ भ ग	अनादि अन त, अनादि सा त
२५	एकेन्द्रिय	अ तर्मुहूर्त	वनस्पतिकाल
२६ से २८	तीन विकलेन्द्रिय	अ तर्मुहूर्त	स ख्यातकाल
२९	प चेन्द्रिय	अ तर्मुहूर्त	साधिक हजार सागरोपम
३० से ३५	ये ६ के अपर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	अ तर्मुहूर्त
३६	सइन्द्रिय पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	अनेक सो सागरोपम
३७	एकेन्द्रिय पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	स ख्याता हजारवर्ष
३८	बेइन्द्रिय पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	स ख्याता वर्ष
३९	तेइन्द्रिय पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	स ख्याता अहोरात्र
४०	चौरेन्द्रिय पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	स ख्यात मास
४१	प चेन्द्रिय पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	अनेक सो सागरोपम
४२	अनिन्द्रिय	१ भ ग	सादि अन त
काया			
४३	सकायिक	२ भ ग	अनादि अन त, अनादि सा त
४४ से ४७	पृथ्वीकायिक आदि-४	अ तर्मुहूर्त	पुढ़वीकाल(पृथ्वीकाल)
४८	वनस्पतिकायिक	अ तर्मुहूर्त	वनस्पति काल
४९	त्रसकाय	अ तर्मुहूर्त	साधिक २ हजार सागरो॰
५० से ५६	ये सात के अपर्याप्त	अ तर्मुहूर्त	अ तर्मुहूर्त
५७	सकायिक पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	अधिक अनेक सो सागरो॰
५८ से ६१	चार स्थावर पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	स ख्याता हजार वर्ष
६२	तेउकाय पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	स ख्याता अहोरात्र
६३	त्रसकाय पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	साधिक अनेक सो सागरो॰
६४	अकायिक	१ भ ग	सादि अन त

क्रम	द्वार बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
६५ से ७१	सात सूक्ष्म	अ तर्मुहूर्त	पुढ़वीकाल(पृथ्वीकाल)
७२ से ७८	सात सूक्ष्म के अपर्या॰	अ तर्मुहूर्त	अ तर्मुहूर्त
७९ से ८५	सात सूक्ष्म पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	अ तर्मुहूर्त
८६	समुच्चय बादर	अ तर्मुहूर्त	बादरकाल
८७ से ९०	पृथ्वी आदि-४ बादर	अ तर्मुहूर्त	७० क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम
९१	बादर वनस्पति	अ तर्मुहूर्त	बादरकाल
९२	प्रत्येक शरीरी बा॰वन॰	अ तर्मुहूर्त	७० क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम
९३	समुच्चय निगोद	अ तर्मुहूर्त	ढ़ाई पुद्गल परावर्तन
९४	बादर निगोद	अ तर्मुहूर्त	७० क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम
९५	त्रसकाय	अ तर्मुहूर्त	साधिक २००० सागरोपम
९६-१०५	१०बादर के अपर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	अ तर्मुहूर्त
१०६	समुच्चय बादर पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	साधिक अनेक सो सागरो॰
१०७-१०९	पृथ्वी आदि ३ पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	स ख्याता हजार वर्ष
११०	बादर तेउकाय पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	स ख्याता अहोरात्रि
१११	बादर वनस्पति पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	स ख्याता हजार वर्ष
११२	प्रत्येक वन॰ के पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	स ख्याता हजार वर्ष
११३	समु॰निगोद पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	अ तर्मुहूर्त
११४	बादरनिगोद पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	अ तर्मुहूर्त
११५	त्रस पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	साधिक अनेक सो सागरो॰
योग			
११६	सयोगी	२ भ ग	अनादि अन त-अनादि सा त
११७	मनयोगी	एकसमय	अ तर्मुहूर्त
११८	वचनयोगी	एकसमय	अ तर्मुहूर्त
११९	काययोगी	अ तर्मुहूर्त	वनस्पतिकाल
१२०	अयोगी	१ भ ग	सादि अन त
वेद			
१२१	सवेदी सादि सा त(३)	३ भ ग अ तर्मुहूर्त	अनादि अन त, अनादि सा त देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन
१२२	स्त्रीवेदी	एकसमय	११० पल्योपम साधिक

क्रम	द्वार बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
१२३	पुरुषवेदी	अ तर्मुहूर्त	साधिक अनेक सो सागरो॰
१२४	नपु सकवेदी	एक समय	वनस्पतिकाल
१२५	अवेदी (२)सादि सा त(उपशा त)	२ भ ग एकसमय	सादि अन त, सादि सा त अ तर्मुहूर्त
कषाय			
१२६	सकषायी (३)सादि सा त	३ भ ग अ तर्मुहूर्त	अनादि अन त, अनादि सा त अर्धपुद्गल परावर्तन
१२७ से २९	३ कषायी	अ तर्मुहूर्त	अ तर्मुहूर्त
१३०	लोभकषायी	एक समय	अ तर्मुहूर्त
१३१	अकषायी(क्षीण)	१ भ ग	सादि अन त
	अकषायी(उपशा त)	एक समय	अ तर्मुहूर्त
लेश्या			
१३२	सलेशी	२ भ ग	अनादि अन त-अनादि सा त
१३३	कृष्णलेशी	अ तर्मुहूर्त	अ तर्मुहूर्तअधिक ३३ सागरो॰
१३४	नीललेशी	अ तर्मुहूर्त	साधिक १० सागरोपम
१३५	कापोतलेशी	अ तर्मुहूर्त	साधिक ३ सागरोपम
१३६	तेजोलेशी	अ तर्मुहूर्त	साधिक २ सागरोपम
१३७	पद्मलेशी	अ तर्मुहूर्त	साधिक १० सागरोपम
१३८	शुक्ललेशी	अ तर्मुहूर्त	साधिक ३३ सागरोपम
१३९	अलेशी	१ भ ग	सादि अन त
दृष्टि			
१४०	सम्यग्दृष्टि	अ तर्मुहूर्त	साधिक ६६ सागरोपम
१४१	मिथ्यादृष्टि (३) सादि सा त	३ भ ग अ तर्मुहूर्त	अनादि अन त, अनादि सा त देशोन अर्धपुद्गल परा॰
१४२	मिश्रदृष्टि	अ तर्मुहूर्त	अ तर्मुहूर्त
ज्ञान			
१४३-४५	समुच्चय ज्ञानी सादिसा त व मति-श्रुतज्ञानी	२ भ ग अ तर्मुहुर्त	सादि अन त, सादि सा त साधिक ६६ सागरोपम
१४६	अवधिज्ञानी	एक समय	साधिक ६६ सागरोपम
१४७	मनःपर्यवज्ञानी	अ तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वक्रोड़ वर्ष

क्रम	द्वार बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
१४८	केवलज्ञानी	१ भ ग	सादि अन त
१४९-५१	समुच्चय अज्ञानी मतिश्रुत-अज्ञानी	३ भ ग सादिसा त(३)	अनादि अन त-अनादिसा त देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन
१५२	विभ ग ज्ञान	एक समय	साधिक ३३ सागरोपम
दर्शन			
१५३	चक्षुदर्शनी	अ तर्मुहुर्त	साधिक १००० सागरोपम
१५४	अचक्षुदर्शनी	२ भग	अनादि अन त, अनादिसा त
१५५	अवधिदर्शनी	एकसमय	साधिक १३२ सागरोपम
१५६	केवलदर्शनी	१ भ ग	सादि अन तभग
स यत			
१५७	स यत	एक समय	देशोन क्रोड़पूर्व वर्ष
१५८	अस यत सादिसा त(३)	३ भ ग अ तर्मुहूर्त	अनादि अन त,अनादिसा त देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन
१५९	स यतास यत	अ तर्मुहुर्त	देशोन क्रोड़पूर्व
१६०	नोस यत नोअस यत॰	१ भ ग	सादिअन त
उपयोग			
१६१-६२	२ उपयोग(छद्मस्थ) केवली	अ तर्मुहूर्त एक समय	अ तर्मुहूर्त एक समय
आहार			
१६३	छद्मस्थ आहारक	२ समय न्यून क्षुल्लकभव	बादरकाल
१६४	केवली आहारक	अ तर्मुहूर्त	देशोन क्रोड़पूर्व
१६५	छद्मस्थ अनाहारक	एक समय	दो समय
१६६	सिद्धकेवली अनाहारक	१ भ ग	सादि अन त
१६७	भवस्थ सयोगी अना॰	तीन समय	तीन समय
१६८	भवस्थ अयोगी अना॰	अ तर्मुहूर्त	अ तर्मुहूर्त
भाषा			
१६९	भाषक	एक समय	अ तर्मुहूर्त
१७०	अभाषक(सिद्ध) अभाषक(स सारी)	१ भ ग अ तर्मुहूर्त	सादि अन त वनस्पतिकाल

क्रम	द्वार बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
परित्त			
१७१	कायपरित्त	अ तर्मुहूर्त	पृथ्वीकाल
१७२	स सारपरित्त	अ तर्मुहूर्त	देशोन अर्धपुद्गल परा०
१७३	काय अपरित्त	अ तर्मुहूर्त	अन तकाल
१७४	स सार अपरित्त	२ भ ग	अनादि अन त,अनादिसा त
१७५	नोपरित्त०	१ भ ग	सादिअन त
पर्याप्त			
१७६	पर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	साधिक अनेक सो सागर०
१७७	अपर्याप्ता	अ तर्मुहूर्त	अ तर्मुहूर्त
१७८	नोपर्याप्त०	१ भ ग	सादि अन त
सूक्ष्म			
१७९	सूक्ष्म	अ तर्मुहूर्त	पुढ़वीकाल
१८०	बादर	अ तर्मुहूर्त	बादरकाल
१८१	नोसूक्ष्म०	१ भ ग	सादि अन त
सन्नी			
१८२	सन्नी	अ तर्मुहूर्त	साधिक अनेक सो सागर०
१८३	असन्नि	अ तर्मुहूर्त	वनस्पतिकाल
१८४	नोसन्नी नोअसन्नि	१ भ ग	सादिअन त
भवी			
१८५	भवी	१ भ ग	अनादि सा त
१८६	अभवी	१ भ ग	अनादि अन त
१८७	नोभवी०	१ भ ग	सादि अन त
चरम			
१८८	चरम जीव	१ भ ग	अनादि सा त
१८९	अचरम जीव	२ भ ग	अनादि अन त, सादि अन त
१९०-९५	छ द्रव्य	-	सर्व अद्धाकाल

प्रश्न-३ : प्रचलित थोकड़े में १९५ बोलो के अतिरिक्त की भी कायस्थिति है क्या ?

उत्तर- प्रचलित थोकड़े में ५ समकित और ५ चारित्र की कायस्थिति

विशेष है, वह इस प्रकार है-

समकित और चारित्र की कायस्थिति :-

नाम	जघन्य	उत्कृष्ट
क्षायिक समकित	१ भ ग	सादि अन त
क्षयोपशम समकित	अ तर्मुहूर्त	६६ सागर साधिक
सास्वादन समकित	१ समय	६ आवलिका
उपशम समकित	१ समय	अ तर्मुहूर्त
क्षयोपशम वेदक समकित	१ समय	अ तर्मुहूर्त
क्षायक वेदक समकित	१ समय	१ समय
सामायिक चारित्र	१ समय	देशोन क्रोड़पूर्व
छेदोपस्थापनीय चारित्र	अ तर्मुहूर्त	देशोन क्रोड़पूर्व
परिहार विशुद्ध चारित्र	अ तर्मुहूर्त(१८ मास)	देशोन क्रोड़पूर्व
सूक्ष्म स पराय चारित्र	१ समय	अ तर्मुहूर्त
यथाख्यात चारित्र	१ समय	देशोन क्रोड़पूर्व

नोट :- क्षयोपशम समकित की स्थिति ६६ सागर की कही है फिर भी चौथे गुणस्थान की कायस्थिति साधिक ३३ सागर की उत्कृष्ट होती है। गुणस्थान-४ से ६ तक मिलकर क्षयोपशम समकित की स्थिति बनती है। अकेले चौथे गुणस्थान से नहीं होती।

प्रश्न-४ : ऊपरोक्त कोष्ठक में "वनस्पतिकाल" आदि अनेक सैद्धा तिक कठिन शब्द हैं, उनके अर्थ, तात्पर्यार्थ क्या हैं ?

उत्तर : यहा कोष्ठक में प्रयुक्त कठिन पारिभाषिक शब्दों के अर्थ इस प्रकार हैं -

(१) वनस्पतिकाल :- यह एक उत्कृष्ट अन तकाल की स ज्ञा है। जो वनस्पतिकाय में ही व्यतीत होता है। इसलिए इसे वनस्पतिकाल कहा गया है । इस काल में अन त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी का समावेश होता है। लोक जितने अन त लोक कल्पित करें तो उनके जितने अन त आकाश प्रदेश हों उतने समय प्रमाण वनस्पति काल समझना। इस काल में पुद्गल परावर्तन की अपेक्षा अस ख्य पुद्गल परावर्तन होते हैं क्यों कि अन त

कालचक्र का एक पुद्गल परावर्तन होता हैं। आवलिका के अस ख्यातवें भाग में जितने अस ख्य समय होते है उतने पुद्गल परावर्तन समझना। पुद्गल परावर्तन भी सात प्रकार के होते है उनमें सबसे बड़ा वैक्रिय पुद्गल परावर्तन होता है। काल माप की इस उपमाओं में वही गिना जाता है। अन्य ६ पुद्गल परावर्तन का, काल माप में उपयोग नहीं होता हैं । सात पुद्गल परावर्तन काल का वर्णन भगवती सूत्र में हैं ।

(२) पुढ़वीकाल (पृथ्वीकाल) :– यह उत्कृष्ट अस ख्यकाल की उपमा है। इसमें अस ख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी जितना काल होता है। क्षेत्र माप से इसे अस ख्य लोक के आकाश प्रदेश जितने समय वाला समझना।

(३) बादरकाल :– यह काल पृथ्वीकाल से छोटा और अस ख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण होता है। क्षेत्र माप से अंगुल के अस ख्यातवें भाग में आने वाले आकाश प्रदेश जितने समय समझना।

(४) ढ़ाई पुद्गल परावर्तन :– इसमें अन तकाल होता है। वनस्पति-काल से यह छोटा होता है क्यों कि उसमें अस ख्य पुद्गल परावर्तन होते हैं और इसमें ढ़ाई पुद्गल परावर्तन होते हैं।

(५) देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन :– आधा वैक्रिय पुद्गल परावर्तन में कुछ कम अर्थात् शुक्लपक्षी होने के बाद जितने भव हो गये हो उतना समय कम समझना।

(६) देशोन-साधिक :– इन शब्दों का अर्थ है कुछ कम या कुछ अधिक। नील, कापोत और तेजोलेश्या की कायस्थिति के साधिक में पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग अधिक होता है। कृष्ण, पद्म, शुक्ल लेश्या में अतर्मुहूर्त अधिक होता है। त्रस जीवों की कायस्थिति के साधिक में स ख्याता वर्ष अधिक होते हैं। इस तरह साधिक में अतर्मुहूर्त से लेकर स ख्याता वर्ष और पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग भी यथायोग्य समझ लेना चाहिये।

(७) ७० क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम :– १ क्रोड़ सागरोपम × १ क्रोड़ सागरोपम × ७० = ७० क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम।

(८) भ ग २, ३, ४ :– अनादि अन त, अनादि सा त, सादि अन त, सादि सा त। इनमें तीन भ ग की कायस्थिति नहीं होती हैं। एक मात्र सादि सा त की कायस्थिति होती है। तीन भ ग- भवी, अभवी और सिद्ध की अपेक्षा से बनते हैं।

(९) स ख्याता-अनेक :– स ख्याता हजार वर्ष, स ख्याता अहोरात्रि, स ख्याता मास आदि में आठ भव की उत्कृष्ट स्थितिएँ जोड़ी जाती है। **अनेक** शब्द में प्रसगानुसार दो से अधिक अनेक स ख्याओं का समावेश होता हैं।

(१०) सात सूक्ष्म :– समुच्चय सूक्ष्म, ५ स्थावर सूक्ष्म, सूक्ष्म निगोद।

(११) पर्याप्त-अपर्याप्त :– नारकी और देवता में कोई भी अपर्याप्त अवस्था में मरते नहीं हैं तो भी यहाँ करण अपर्याप्त की अपेक्षा अतर्मुहूर्त की कायस्थिति कही है और पर्याप्त की कायस्थिति में करण अपर्याप्त का अतर्मुहूर्त घटा कर करण पर्याप्त की कायस्थिति कही गई है। तिर्यंच मनुष्य के अपर्याप्त में लब्धि अपर्याप्त और करण अपर्याप्त दोनों की अपेक्षा अतर्मुहूर्त की कायस्थिति होती है और इनके पर्याप्त की कायस्थिति में सन्नी तिर्यंच और मनुष्य में देवों के समान अतर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट ३ पल्य की स्थिति कही है शेष सभी में(पृथ्वी आदि में) अनेक भवों की उत्कृष्ट कायस्थिति(लब्धि पर्याप्त की अपेक्षा) कही है यथा- पृथ्वीकाय में अनेक हजारों वर्ष, तेउकाय में अनेक अहोरात्रि आदि। **करण पर्याप्त =** अपने भव योग्य पर्याप्ति पूर्ण हो जाने के बाद से मृत्यु पर्यंत। **करण अपर्याप्त=** योग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण न हो तब तक। **लब्धि पर्याप्त =** पर्याप्तावस्था का आयुष्य लेकर आने वाला। **लब्धि अपर्याप्त =** अपर्याप्तावस्था में मरने रूप आयुष्य वाला ।

(१२) अपर्याप्ता के उत्कृष्ट भव :– अकेले अपर्याप्त के ६५५३६ भव भी एक साथ हो जाय तो भी अतर्मुहूर्त काल ही होता है। अतर्मुहूर्त की जघन्य स्थिति के पर्याप्त जीव के भव साथ में मिलने पर ही अस ख्य काल या अन तकाल की कायस्थिति होती है। इसी तरह अकेले सूक्ष्म की भी कायस्थिति अन तकाल नहीं होती है और अकेले बादर की भी कायस्थिति अन तकाल नहीं होती है। दोनों के भव स युक्त होवे तभी अन तकाल होता है। **सार**- अकेले अपर्याप्त की कायस्थिति अंतर्मुहूर्त से ज्यादा नहीं होती और अकेले सूक्ष्म की अस ख्याताकाल की कायस्थिति होती है, अन त काल की नहीं हो सकती है। सूक्ष्म और बादर तथा अपर्याप्त-पर्याप्त दोनों के भव मिले तभी अन तकाल होता है।

(१३) पल्योपम-सागरोपम :– प्रश्नोत्तर भाग-६, पृष्ठ-१९४ प्रश्न-५ देखें तथा इसी पुष्तक में पद-४, प्रश्न-३ देखें।

(१४) क्रोड़ पूर्व :– ८४ लाख वर्ष × ८४ लाख वर्ष × १ क्रोड़ = १ क्रोड़ पूर्व वर्ष। कर्मभूमि सन्नी तिर्यंच और मनुष्य की उत्कृष्ट उम्र १ क्रोड़ पूर्व की होती हैं। ऐसे ७ या ८ भव लगातार हो सकते हैं।

(१५) हजार सागरोपम :– अकेले प चेन्द्रिय(४ गति) में साधिक एक हजार सागरोपम की उत्कृष्ट कायस्थिति हो सकती हैं। त्रस में दो हजार सागरोपम साधिक हो सकती हैं। प चेन्द्रिय पर्याप्त में कायस्थिति अनेक सौ सागर की एव त्रस के पर्याप्त में कायस्थिति साधिक अनेक सौ सागर की उत्कृष्ट हो सकती हैं। यहा अपर्याप्त नहीं होने से कायस्थिति कम कही गई हैं ।

(१६) पल-सागर :– पल, पल्य = पल्योपम, सागर = सागरोपम। ये दोनों स क्षिप्त शब्द प्रचलित हैं।

❋ पद-१९ : सम्यक्त्व ❋

प्रश्न-१ : इस सम्यक्त्व पद में दृष्टि स ब धी विचारणा किस प्रकार की गई है ?

उत्तर– जिनेश्वर प्रणीत जीवादि स पूर्ण तत्त्वों के विषय में जिसकी दृष्टि अविपरीत हो सम्यग् हो, वह **सम्यग्दृष्टि** है।

जिनेश्वर प्रज्ञप्त तत्वों के विषय में जरा सी भी विपरीत दृष्टि, समझ, श्रद्धा हो वह **मिथ्यादृष्टि** है। जिन प्रज्ञप्त तत्वों के विषय में विपरीत एव अविपरीत यों अस्थिर दृष्टि, बुद्धि, समझ, श्रद्धा हो अथवा विपरीत-अविपरीत दोनों तरह की बुद्धि वालों का अनुसरण करने वाला तथा दोनों को सत्य समझने वाला हो वह **मिश्रदृष्टि** वाला होता है।

इस प्रकार ये तीन दृष्टियाँ-१.सम्यक्दृष्टि २. मिथ्यादृष्टि ३. मिश्रदृष्टि ।

२४ द ड़क में दृष्टि विचार–नारकी और देवता में नव ग्रैवेयक तक तीन दृष्टि, लोका तिक में सम्यग्दृष्टि, अणुत्तरविमान में सम्यग्दृष्टि। प द्रह परमाधामी एव तीन किल्विषी में एक मिथ्यादृष्टि।

पा च स्थावर में मिथ्यादृष्टि, तीन विकलेन्द्रिय और असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय में दो दृष्टि, सन्नी तिर्यंच प चेन्द्रिय में तीन दृष्टि, खेचर युगलिया तिर्यंच में एक मिथ्यादृष्टि और स्थलचर युगलिया तिर्यंच में दो दृष्टि।

१५ कर्मभूमि में तीन दृष्टि, ३० अकर्मभूमि में दो दृष्टि, अ तर्द्वीपों में एक मिथ्यादृष्टि, स मुर्च्छिम मनुष्य में एक मिथ्यादृष्टि ।

सिद्धों में एक(क्षायिक)सम्यग्दृष्टि।

नोट– एक समय में एक जीव में एक ही दृष्टि होती है।

❋ पद-२० : अ तक्रिया ❋

प्रश्न-१ : अ तक्रिया का यहाँ क्या तात्पर्यार्थ है ? और यहाँ उनका किस क्रम से विषय वर्णन किया गया है ?

उत्तर– अत=स सार का अ त, मोक्ष। मोक्ष होने स ब धी और मोक्ष जाने वालों स ब धी, अनेक विध वर्णन होने से इस पद का सार्थक नाम **अ तक्रिया** रखा गया है। इसमें (१) अन तर या पर पर मनुष्य बनकर मोक्ष जाने की योग्यता वालों का (२) मोक्षमूलक धर्म-ज्ञानादि की प्राप्ति का (३) शीघ्र मोक्षगामी पदवी वालों का (४) चक्रवर्ती के १४ रत्नों का (४) देवों में उत्पन्न होने वालों का एव अ त में असन्नि से सन्नी होने वालों का विश्लेषण किया है।

प्रश्न-२ : अन तर पर पर मोक्षगामी स ब धी निरूपण किस प्रकार है ?

उत्तर– चौवीस द ड़कों में से एक मनुष्य में ही मोक्ष जाने की योग्यता है अन्य कोई भी भव से जीव मुक्त नहीं हो सकता है। भविष्यकाल में मुक्त होने की योग्यता सभी द ड़क के जीवों की होती है। तेउकाय, वायुकाय, तीन विकलेन्द्रिय, पा चवीं, छट्ठी, सातवीं नरक के जीव सीधे मनुष्य बनकर मोक्ष नहीं जा सकते हैं। पर परा से अर्थात् एक, दो भव कहीं करके मनुष्य बनकर मोक्ष जा सकते हैं इन्हें **पर पर अ तक्रिया** कहते हैं।

१ से ४ नरक, पृथ्वी, पानी, वनस्पति, तिर्यंच प चेन्द्रिय, मनुष्य, भवनपति आदि १३ द ड़कों के जीव अन तर मनुष्य भव से मुक्त हो सकते हैं।

अन तरागतों की मुक्त स ख्या- जघन्य स ख्या १-२-३ है उत्कृष्ट इस प्रकार है-

एक समय में **दस**	तीन नारकी, भवनपति-व्य तर-ज्योतिषीदेव, तिर्यंच(प चेन्द्रिय)तिर्यंचाणी, मनुष्य।
एक समय में **वीस**	मनुष्याणी, वैमानिक देवी, ज्योतिषी देवी।
एक समय में **१०८**	वैमानिक देव।
एक समय में **पाँच**	भवनपति देवी, व्य तर देवी।
एक समय में **छः**	वनस्पति।
एक समय में **चार**	चौथी नारकी, पृथ्वी, पानी।

प्रश्न-३ : धर्म आदि की प्राप्ति कौन जीव किस प्रमाण में करता है ?

उत्तर- (१) कई नैरयिक जीव तिर्यंच प चेन्द्रिय में उत्पन्न होते है और वहाँ किसी को धर्म श्रवण, बोधि, श्रद्धा, मति-श्रुत ज्ञान, व्रत प्रत्याख्यान, अवधिज्ञान की प्राप्ति होती है। स यम और मनःपर्यव ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है। कई नैरयिक जीव मनुष्य में उत्पन्न होते हैं वहाँ उनमें से किसी को उक्त धर्मश्रवण आदि एव स यम, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान की प्राप्ति होती है एव अ त में मुक्ति की प्राप्ति होती है।

(२) नरक के समान पृथ्वी, पानी, वनस्पति एव सभी देवों का तिर्यंच में अवधिज्ञान तक एव मनुष्य में मुक्ति प्राप्ति तक वर्णन है।

(३) तेउ वायु के जीव तिर्यंच प चेन्द्रिय में उत्पन्न होते हैं, धर्म श्रवण की प्राप्ति उन्हें होती है किन्तु बोधि आदि की प्राप्ति नहीं होती।

(४) तीन विकलेन्द्रिय मनुष्य में उत्पन्न होते है धर्मश्रवण आदि मनःपर्यव ज्ञान तक की उपलब्धि उन्हें हो सकती है, केवलज्ञान नहीं होता है।

(५) तिर्यंच प चेन्द्रिय जीव नारकी देवता में उत्पन्न होता है वहाँ भी धर्म श्रवण, बोधि, श्रद्धा, मति आदि ३ ज्ञान प्राप्त करता है। व्रत प्रत्याख्यान नहीं करता है। तिर्यंच प चेन्द्रिय तिर्यंच प चेन्द्रिय में उत्पन्न होता है तो

वहाँ नारकी जीव के समान तिर्यंच में अवधिज्ञान तक एव मनुष्य में मोक्ष तक उपलब्धि करता है।

(६) मनुष्य का कथन भी तिर्यंच के समान कहना ***यावत्*** कई जीव मुक्ति प्राप्त करते हैं।

प्रश्न-४ : तीर्थंकर आदि विशिष्ट पुरुषों स ब धी एव रत्नों स ब धी यहाँ क्या कथन है ?

उत्तर- तीर्थंकर आदि की उपलब्धि-(१) पहली दूसरी तीसरी नरक एव वैमानिक देव, मनुष्य भव में उत्पन्न होकर तीर्थंकर बन सकते हैं। इसके अतिरिक्त कोई भी जीव तीर्थंकर नहीं बनते है, किन्तु धर्मश्रवणादि उपलब्धि ऊपर कहे अनुसार प्राप्त करते हैं।

चक्रवर्ती-(२) पहली नरक एव भवनपति, व्य तर, ज्योतिषी, वैमानिक देव मनुष्य भव में आकर चक्रवर्ती बन सकते हैं।

बलदेव-(३) पहली दूसरी नरक और सभी देवों से आकर मनुष्य बनने वाले जीव बलदेव बन सकते हैं।

वासुदेव-(४) देवो में अणुत्तर विमान के देवों को छोड़कर शेष **वैमानिक** देव तथा **पहली नरक** के जीव, मनुष्य भव में आकर वासुदेव बन सकते हैं अर्थात् भवनपति व्य तर ज्योतिषी देव वासुदेव नहीं बनते।

माड़लिक राजा-(५) सातवीं नरक और तेउकाय, वायुकाय को छोड़कर शेष समस्त स्थानों से मनुष्य भव में आने वाला जीव मा ड़लिक राजा बन सकता है।

सेनापति, गाथापति, बढ़ई, पुरोहित एव स्त्री रत्न ये पा च चक्रवर्ती के प चेन्द्रिय रत्न-(६) तेउ-वायु सातवीं नरक, पा च अणुत्तर देव को छोड़कर शेष समस्त स्थानों से आकर मनुष्य बनने वाले जीव सेनापति आदि पा चों बन सकते हैं।

हस्तिरत्न एव अश्वरत्न-(७) नवमे देवलोक से ऊपर के देवों के सिवाय शेष समस्त स्थानों से आकर तिर्यंच बनने वाले हस्तिरत्न एव अश्वरत्न बन सकते हैं।

सात एकेन्द्रिय रत्न-(८) सात नरक एव तीसरे देवलोक से ऊपर के देवों को छोड़कर समस्त स्थानों से आकर पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने वाले

जीव सातों एकेन्द्रिय रत्न बन सकते हैं। सात रत्न ये हैं-१.चक्ररत्न २. छत्ररत्न ३. चर्मरत्न ४. द ड़रत्न ५. असिरत्न ६. मणिरत्न ७. का गिणी रत्न। ये सात प चेन्द्रिय और सात एकेन्द्रिय रत्न चक्रवर्ती के अधिनस्थ होते हैं।

प्रश्न-५ : देवों में उत्पन्न होने स ब धी किन-किन का वर्णन है ?

उत्तर- स यम के आराधक, विराधक, स यमास यम के आराधक, विराधक, अस यत, अकाम निर्जरा वाले, तापस, का दर्पिक, परिव्राजक एव समकित का वमन कर देने वाले भी देवगति में जा सकते हैं। इसका फलितार्थ यह है कि आ तरिक योग्यता शुद्धि से तो देवत्व एव मुक्ति की प्राप्ति होती ही है कि तु केवल बाह्य आचरणों से भी(यदि स क्लिष्ट परिणाम न हो तो) देवत्व की प्राप्ति हो सकती है।

देवोत्पत्ति के १४ बोल :-

क्रमांक	नाम	जघन्य गति	उत्कृष्ट गति
१	अस यत भव्य द्रव्य देव	भवनपति	ग्रैवेयक देव
२	स यम आराधक	पहला देवलोक	अनुत्तर विमान
३	स यम विराधक	भवनपति	पहला देवलोक
४	देशविरत आराधक	पहला देवलोक	बारहवाँ देवलोक
५	देशविरत विराधक	भवनपति	ज्योतिषी
६	अकाम निर्जरा वाला तथा असन्नि तिर्यंच	भवनपति	वाणव्य तर
७	तापस	भवनपति	ज्योतिषी
८	कान्दर्पिक	भवनपति	पहला देवलोक
९	परिव्राजक	भवनपति	पा चवाँ देवलोक
१०	किल्विषी	पहला देवलोक	छट्ठा देवलोक
११	सन्नी तिर्यंच	भवनपति	आठवाँ देवलोक
१२	गोशालाप थी(आजीविक)	भवनपति	बारहवाँ देवलोक
१३	आभियोगिक	भवनपति	बारहवाँ देवलोक
१४	स्वलि गी समकित रहित	भवनपति	ग्रैवेयक देव

इन साधकों का विस्तृत परिचय औपपातिक सूत्र में है, जिसकी जानकारी के लिये प्रश्नोत्तर भाग-६ देखें तथा भगवतीसूत्र शतक-१, उद्देशक-२ में भी स क्षिप्त कथन है। ऊपरोक्त १४ बोल के जीवों में से पहला दूसरा चौथा नियमा देवगति में ही जाते हैं। शेष बोल देवगति में ही जावे ऐसा नहीं है अर्थात् वे चारों गति में जा सकते हैं। देवगति में जावे तो उक्त देवलोकों में जा सकते हैं, ऐसा समझना चाहिये।

भव्य द्रव्य देव के बोल में देव का आयुष्य बा धे हुए सभी प्रकार के जीवों का समावेश हो जाता है किन्तु यहाँ प्रथम बोल में **अस यत** विशेषण लगा है, इसलिए देशविरति और सर्वविरति के सिवाय अन्य देवायु बा धे हुओं का समावेश इसमें समझना चाहिये अर्थात् दूसरे, चौथे बोल को छोड़कर शेष ११ बोलों का समावेश अस यत भव्यद्रव्य देव में होता है। इससे यह निष्कर्ष आता है कि पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान तक के जीव जो भी देवायु ब ध किये हुए हैं वे अस यत भव्य द्रव्य देव है।

प्रश्न-६ : असन्नि जीवों की आयुष्यब ध स ब धी योग्यता क्या है ?

उत्तर- असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय चारों गति का आयुष्य बा धते हैं। **नरक में**- प्रथम नरक का, **देव में**- भवनपति व्य तर का एव **तिर्यंच में**- युगलिया तिर्यंच तक का एव **मनुष्य में**- अ तर्द्वीपज युगलिक मनुष्य का आयुष्य ब ध करते हैं।

चारों गति के पल्योपम के अस ख्यातवें भाग का उत्कृष्ट आयुष्य ब ध करते हैं। पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग सर्वत्र समान नहीं है उसमें अ तर है उसकी अल्पाबहुत्व इस प्रकार है-

सबसे थोड़ा देव असन्नि आयुष्य, उससे मनुष्य असन्नि आयुष्य अस ख्यगुणा, उससे तिर्यंच असन्नि आयुष्य अस ख्यगुणा, उससे नैरयिक असन्नि आयुष्य अस ख्यगुणा।

तात्पर्य यह है कि असन्नि तिर्यंच देवता का आयुष्य अत्यल्प उपार्जन करता है और नरक का आयु सर्वाधिक उपार्जन करता है।

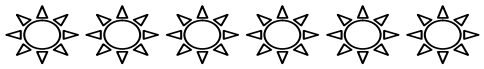

पद-२१ : अवगाहना-स स्थान

प्रश्न-१ : इस पद का विषय परिचय क्या है ?

उत्तर- बद्धेलक-मुक्केलग पा च शरीरों की स ख्या स ब धी निरूपण बारहवें पद में किया गया है। (१) यहाँ भी उन पा च शरीरों से स ब धित अवगाहना-ल बाई और स स्थान(आकारों) का वर्णन है साथ में उनके शरीरों के जीवों की अपेक्षा भेद भी दर्शाये है। (२) इस वर्णन में तैजस-कार्मण के शरीर की अवगाहना स ब धी महत्वपूर्ण विश्लेषण है। (३) शरीरों के पुद्गलों के चय उपचय का कथन दिशाओं के साथ किया गया है। (४) पा च शरीर की परस्पर साहचर्यता दर्शाई है। (५) विविध अपेक्षाओं से शरीरों की अल्पाबहुत्व की गई है।

प्रश्न-२ : किन जीवों के औदारिक शरीर आदि होते हैं और उनकी अवगाहना-ल बाई कितनी होती है ?

उत्तर- मनुष्य एव तिर्यंच में औदारिक शरीर होता है। अतः तिर्यंच की अपेक्षा ४६ भेद एव मनुष्य के तीन भेद यों औदारिक शरीर के कुल ४९ प्रकार कहे गये हैं।

इन ४९ प्रकार के औदारिक शरीर की अवगाहना और उनके स स्थान (आकार) भिन्न-भिन्न है इनका वर्णन जीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति, प्रश्नोत्तर भाग-६ में कर दिया गया है।

वैक्रिय शरीर- एकेन्द्रिय एव प चेन्द्रिय यों वैक्रिय शरीर के मूल भेद दो हैं। वायुकाय में केवल बादर के पर्याप्त का एक ही प्रकार है। देवता नारकी के जितने प्रकार है उतने ही वैक्रिय शरीर के भेद है। मनुष्य का एक पर्याप्त और सन्नी तिर्यंच का एक पर्याप्त यों कुल ११९ प्रकार होते हैं। यथा- नारकी का १४, देवता का ९८, सन्नी तिर्यंच का ५, मनुष्य का १, वायुकाय का १ ।

इन ११९ के विभिन्न स स्थान एव अवगाहनाएँ यहाँ सूत्र में वर्णित है जिन्हें जीवाभिगम सूत्र, प्रथम प्रतिपत्ति के वर्णन में देखें।

आहारक शरीर- इसका केवल एक ही प्रकार है-सन्नी मनुष्य पर्याप्त अर्थात् कर्मभूमि, ऋद्धिप्राप्त, प्रमत्त स यत।

तैजस-कार्मण शरीर- चार गति के जीवों के जितने भेद होते हैं उतने ही तैजस कार्मण शरीर के प्रकार होते हैं। अतः इनके ५६३ भेद होते हैं। प्रस्तुत प्रकरण के अनुसार इनके १६७-१६७ भेद होते हैं। मनुष्य के ९ भेद मुख्य हैं। समस्त स सारी जीवों के ये दोनों शरीर होते हैं। अतः इन दोनों के स स्थान एव अवगाहना एक समान होती है। ये औदारिक वैक्रिय आहारक तीनों शरीरों के साथ में अवश्य होते हैं मारणा तिक समुद्घात मे एव भवाँतर में जाते समय मार्ग में उन तीनों शरीर के अभाव में स्वत त्र भी रहते हैं। अतः इनकी अवगाहना दोनों अपेक्षा से है- (१) तीनों शरीरों की अवगाहना जितनी (२) तीनों शरीर से स्वत त्र मारणा तिक समुद्घात में।

औदारिक आदि तीनों शरीरों की अवगाहना उनके वर्णन में कहे अनुसार है। इन दोनों की स्वत त्र अवगाहना-ल बाई निम्न कोष्ठक में है और चौडाई-जाडाई वर्तमान भव के औदारिक, वैक्रिय शरीर प्रमाण है ।

तैजस कार्मण शरीर	जघन्य उत्कृष्ट अवगाहना
समुच्चय जीव	जघन्य अ गुल के अस ख्यातवें भाग, उत्कृष्ट सभी(६) दिशाओं में लोकान्त से लोकान्त तक।
एकेन्द्रिय	जघन्य अ गुल का अस ख्यातवाँ भाग, उत्कृष्ट सभी(६) दिशाओं में लोकान्त से लोकान्त तक।
विकलेन्द्रिय[१]	जघन्य अ गुल का अस ख्यातवाँ भाग, उत्कृष्ट तिर्च्छालोक से लोकान्त तक छ दिशाओं में ।
नारकी[२]	जघन्य १००० यो॰ साधिक, उत्कृष्ट नीचे सातवीं नरक तक, ऊपर प ड़क वन की बावड़ीयों तक, तिर्च्छा स्वय भूरमण समुद्र की वेदिका तक।
तिर्यंच प चेन्द्रिय	जघन्य अ गुल के अस ख्यातवें भाग, उत्कृष्ट तिर्च्छालोक से लोकान्त तक छ दिशाओं में ।
मनुष्य	जघन्य अ गुल के अस ख्यातवें भाग, उत्कृष्ट मनुष्य क्षेत्र से लोकान्त तक छ दिशाओं में ।
भवनपति से[३] दूसरा देवलोक	जघन्य अ गुल के अस ख्यातवें भाग, उत्कृष्ट नीचे तीसरी नरक के चरमा त तक, ऊपर सिद्ध शिला तक, तिरछा स्वय भूरमण समुद्र की वेदिका तक।

तैजस कार्मण शरीर	जघन्य उत्कृष्ट अवगाहना
३ से ८ देवलोक[४]	जघन्य अ गुल का अस ख्यातवाँ भाग, उत्कृष्ट नीचे महापाताल कलश के २/३ तक, ऊपर १२वाँ देवलोक तक, तिर्च्छा स्वय भूरमण समुद्र वेदिका तक।
९ से १२ देवलोक[५]	जघन्य अ गुल का अस ख्यातवाँ भाग, उत्कृष्ट तिर्च्छा मनुष्य क्षेत्र, नीचे वप्रा-सलिलावती विजय, ऊपर १२वाँ देवलोक तक।
ग्रैवेयक, अनुत्तर देव[६]	जघन्य विद्याधर की श्रेणी तक, उत्कृष्ट नीचे सलिलावती-वप्रा विजय तक, ऊपर स्वय के विमान तक, तिरछा मनुष्य क्षेत्र तक।

टिप्पण– **(१)** विकलेन्द्रिय तिरछा लोक में रहे १००० योजन ऊँड़े समुद्रों में एव मेरुपर्वत आदि की बावड़ियों में होते हैं; तिरछे स्वय भूरमण समुद्र की वेदिका तक होते हैं। इन तिरछे लोक के स्थानों से लोका त तक छः दिशाओं में बेइन्द्रियादि के तैजस कार्मण शरीर की अवगाहना मारणा तिक समुद्घात के समय होती है।

(२) पाताल कलशों में भित्ति १००० यो॰ की है उसके निकट रहे नैरयिक उसके भीतर रहे जल में प चेन्द्रिय रूप उत्पन्न होवे तब जघन्य तैजस कार्मण की अवगाहना होती है।

(३) भवनपति आदि की जघन्य एव उत्कृष्ट अवगाहना पृथ्वी पानी में उत्पन्न होने की अपेक्षा बनती है। देवताओं के उत्कृष्ट अवगाहना नीचे, ऊपर, तिरछे स्वस्थान से समझना।

(४) अपने मित्र देवों के साथ ऊपर बारहवें देवलोक तक जा सकते हैं। वहाँ से मारणा तिक समुद्घात करे तो उस अपेक्षा से ऊपर १२वाँ देवलोक कहा गया है।

(५) ये देव मनुष्य में ही उत्पन्न होते हैं। वप्रा, सलिलावती विजय अधोलोक में है, उसमें मनुष्य रूप में उत्पन्न होते हैं। वहाँ तक मारणा तिक समुद्घात करने पर यह नीचे की अवगाहना होती है। इन देवों की जघन्य अ गुल के अस ख्यातवें भाग की अवगाहना मनुष्याणी की योनि के अति निकट होने पर ही हो सकती है वह किसी कारणवश वहाँ प्रविष्ट हुए देव के आयुष्य समाप्त होने की अपेक्षा समझना चहिये। ध्यान रहे कि इन देवों के काय प्रविचारणा

नहीं है। अतः क्षेत्र शुद्धि करने आदि के कारण ही समझने चाहिये। ये देव केवल मनुष्य में ही उत्पन्न होते हैं, तिर्यंच या एकेन्द्रिय में नहीं होते।

(६) ग्रैवेयक एव अणुत्तर देव उत्तर वैक्रिय नहीं करते अतः इनकी जघन्य अवगाहना भी स्वस्थान से ही है, मनुष्य में ही उत्पन्न होते हैं, स्वस्थान से निकटतम मनुष्य क्षेत्र विद्याधरों की श्रेणी होती है, अतः उसे जघन्य में कहा है।

प्रश्न-३ : शरीरों में पुद्गल चय आदि कितनी दिशाओं से होते हैं ?

उत्तर– औदारिक आदि पा चों शरीर में पुद्गलों की आवश्यकता होती है। उनके निर्माण में पुद्गलों का **चय** होता है। वृद्धि गत होने में पुद्गलों का उपचय होता है और क्षीण होने में पुद्गलों का ह्रास-अपचय होता है।

यह चय उपचय और अपचय रूप पुद्गलों का आगमन और निगमन छहों दिशाओं से होता है। लोका त में रहे हुए जीवों के एक तरफ, दो तरफ या तीन तरफ लोका त हो सकता है, अलोक में पुद्गल नहीं है। अतः वहाँ से पुद्गलों का आगमन निगमन नहीं होता है। इस अपेक्षा औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर में अलोक के व्याघात (रुकावट) के कारण कभी तीन, चार या पाँच दिशा से पुद्गलों का चय आदि होता है। लोका त के अतिरिक्त कहीं भी रहे हुए जीव के औदारिक तैजस कार्मण शरीर में नियमा छहों दिशा के पुद्गलों का आगमन-निगमन होता है।

प्रश्न-४ : किस शरीर के साथ कितने शरीर होते हैं ?

उत्तर– एक शरीर के साथ दूसरे शरीर कोई नियमा होते ही हैं और कोई भजना से होते हैं। इस प्रकार दो तरह अर्थात् नियमा-भजना से शरीरों में शरीर की उपलब्धि इस प्रकार होती है–

शरीर में शरीर की नियमा-भजना :–

शरीर	नियमा	भजना	नास्ति
औदारिक में	तैजस, कार्मण	वैक्रिय, आहारक	–
वैक्रिय में	तैजस, कार्मण	औदारिक	आहारक
आहारक में	औदा॰,तैजस,कार्मण	–	वैक्रिय
तैजस में	कार्मण	औदा॰,वैक्रिय,आहारक	–
कार्मण में	तैजस	औदा॰, वैक्रिय,आहारक	–

प्रश्न-५ : शरीरों से स ब धित कौन कौन सी अल्पाबहुत्व बनती है ?

उत्तर- प्रस्तुत में शरीरों के द्रव्यों की, प्रदेशों की, अवगाहना की अपेक्षा तुलना दर्शाई गई है।

द्रव्य की अपेक्षा- (१) सबसे अल्प आहारक शरीर (२) वैक्रिय अस ख्य गुणा (३) औदारिक अस ख्यगुणा (४) तैजस कार्मण(दोनों परस्पर तुल्य) अन तगुणा।

प्रदेश की अपेक्षा- १ से ३ ऊपरोक्त, ४. तैजस प्रदेश अन तगुणा ५. कार्मण प्रदेश अन तगुणा।

द्रव्य प्रदेश की अपेक्षा- १ से ३ ऊपरोक्त, ४. आहारक प्रदेश अन तगुणा ५. वैक्रियप्रदेश अस ख्यगुणा ६. औदारिक प्रदेश अस ख्यगुणा ७.तैजस कार्मण द्रव्य अन तगुणा ८. तैजस प्रदेश अन तगुणा ९. कार्मणप्रदेश अन तगुणा।

जघन्य अवगाहना की अपेक्षा- (१) सबसे अल्प औदारिक की (२) तैजस कार्मण की विशेषाधिक (३) वैक्रिय की अस ख्यगुणी (४) आहारक की अस ख्यगुणी(देशोन एक हाथ)।

उत्कृष्ट अवगाहना की अपेक्षा- (१) सबसे अल्प आहारक की (१ हाथ) (२) औदारिक की स ख्यातगुणी(साधिक १००० योजन) (३) वैक्रिय की स ख्यातगुणी (४) तैजस कार्मण की अस ख्यगुणी।

सम्मिलित अपेक्षा-आहार की जघन्य से आहारक की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, शेष क्रम पूर्ववत्।

❋ पद-२२ : क्रिया ❋

प्रश्न-१ : क्रिया से यहाँ क्या आशय है और किन-किन शास्त्रों में तत्स ब धी निरूपण है ?

उत्तर- कषाय एव योग जन्य पाप प्रवृत्तियों से क्रिया लगती है और क्रियाओं से कर्मों का ब ध होता है, कर्म ही स सार है एव स सार है तो मुक्ति नहीं है। आत्मसुख आत्म आन द भी नहीं है। अतः आत्मविकास के लिये अवरोधक इन क्रियाओं का ज्ञान एव त्याग करना आवश्यक है, तभी आत्मा मुक्त एव स्वत त्र हो सकती है।

सर्व त्यागी श्रमण को भी जब तक प्रमाद और योग है तब तक क्रिया लगती है और जब तक क्रिया है वहाँ तक कर्मब ध भी होता रहता है।

आगमों में क्रियाएँ- क्रियाओं के प्रकार विविध रूप से आगमों में उपलब्ध है। अधिकतम २५ क्रियाएँ ठाणा गसूत्र के पा चवें ठाणे में वर्णित है। सूयगड़ांग सूत्र में अपेक्षा से १३ क्रियाएँ वर्णित है। भगवती सूत्र में स क्षिप्तीकरण करके समस्त क्रियाओं को दो प्रकार में समाविष्ट कर दिया है, यथा- (१) सा परायिक (२) इरियावहि।

प्रस्तुत प्रकरण में ५-५ करके कुल १० क्रियाओं का वर्णन है। ये पा च-पा च क्रियाएँ अन्य आगमों में भी यत्र तत्र वर्णित है जिनका समावेश ठाणा ग कथित २५ में है।

भगवती सूत्र में बताया गया है कि कायिकी आदि पा च क्रियाएँ ऐसी है कि मरण प्राप्त जीव के शरीर से भी होने वाली क्रिया उसे परभव में भी पहुंच जाती है। साथ ही उसके नहीं लगने का उपाय भी यह बताया गया है कि मरण समय निकट जानकर इस शरीर का त्याग कर देना चाहिये इस पर से ममत्व हटाकर इसे वोसिरा देना चाहिये।

प्रश्न-२ : कायिकी आदि ५ क्रियाओं का क्या स्वरूप है, तत्स ब धी सूक्ष्मतम ज्ञान क्या है ?

उत्तर- (१) कायिकी- शरीर की सूक्ष्म बादर प्रवृत्तियों से होने वाली क्रिया। इसके दो प्रकार है, यथा- १.अनुपरत-(प्रवृत्ति का अत्याग) २. दुष्प्रवृत्त।

(२) अधिकरिणिकी- दूषित अनुष्ठान से, जीवों के शस्त्रभूत अनुष्ठान से होने वाली क्रिया। यह दो प्रकार की है- १.शस्त्रभूत मन या पदार्थों का स योजन रूप २. शस्त्रभूत मन या पदार्थों की निष्पत्ति रूप।

(३) प्रद्वेषिकी-अकुशल(कषाय युक्त)परिणाम से होने वाली क्रिया। इसके तीन प्रकार है- १. अपने पर २. दूसरों पर ३.दोनों पर।

(४) परितापनिकी-कष्ट पहुँचाने, अशाता उत्पन्न करने से होने वाली क्रिया। यह भी स्व, पर, उभय की अपेक्षा तीन प्रकार की होती है।

(५) प्राणातिपातिकी- कष्ट पहुँचाने की सीमा का अतिक्रमण होकर

जीवों के प्राणों का नाश हो जाने से अर्थात् उनकी मृत्यु हो जाने से लगने वाली क्रिया। यह भी स्व, पर, उभय की अपेक्षा तीन प्रकार की है।

क्रियाओं पर अनुप्रेक्षा–प्रथम की तीन क्रियाएँ स्वरूप में इतनी सूक्ष्मतम है कि स सार के समस्त जीवों को प्रतिसमय निर तर लगती रहती है। अप्रमत्तावस्था के बाद दसवें गुणस्थान तक भी इन तीनों क्रियाओं का अस्तित्व माना गया है।

पिछली दो क्रियाएँ तदर्थक प्रवृत्ति होने पर या करने पर ही लगती है। अन्य समय में या अन्य जीवों से दोनों क्रियाएँ नहीं लगती है।

स्वय को मारने पीटने या शस्त्र प्रहार आदि करने से स्व निमित्तक परितापनिकी क्रिया लगती है एव आत्मघात करने से स्व निमित्तक प्राणातिपातिकी क्रिया लगती है।

पिछली दोनों क्रिया छद्मस्थों को आभोग(मन सहित) एव अनाभोग (मन बिना भी) दोनों प्रकार से लग जाती है अर्थात् बिना स कल्प किसी जीव को कष्ट हो जाय या वह मर जाय तो भी चौथी पा चवीं क्रिया लगती है।

वीतराग अवस्था में ये पा चों क्रियाएँ नहीं कही गई है किन्तु एक इरियावहि क्रिया कही है। जिसे प्रथम कायिकी क्रिया में एक अपेक्षा से लक्षित किया जा सकता है। क्यों कि इरियावहि क्रिया भी काया की सूक्ष्म बादर प्रवृत्तियों से स ब धित है। फिर भी इसका अलगाव इसलिये आवश्यक है कि इरियावही क्रिया में कायिकी क्रिया के समान अनुपरत और दुष्प्रवृत्त यों दो विभाग नहीं हो सकते। इन दोनों से स्वत त्र ही अवस्था इरियावहि क्रिया की वीतराग आत्माओं के होती है।

वीतराग छद्मस्थ आत्माओं के अवश्य भावी प चेन्द्रिय प्राणी पा व के नीचे सहसा दब जाय तो भी परितापनिकी या प्राणातिपातिकी क्रिया नहीं लग कर केवल इरियावहि क्रिया ही लगती है। एव परिताप या हिंसाजन्य कर्म ब ध भी न होकर केवल इरियावहि क्रिया निमित्तक अत्यल्प दो समय का ब ध होता है।

प्रश्न–३ : अठारह पापों में और क्रियाओं में स ब ध किस प्रकार होता है ?

उत्तर– पाप १८ है, यथा– १.प्राणातिपात ***यावत्*** १८ मिथ्यादर्शन शल्य।

छः जीवनिकाय के जीव प्राणातिपात के विषय है। ग्रहण-धारण द्रव्य अदत्तादान के विषय रूप है। रूप और रूप सहगत द्रव्य मैथुन–कुशील के विषयभूत है अर्थात् मैथुन क्रिया के कारण भूत अध्यवसाय चित्र, काष्ठ, मूर्ति, पूतला आदि रूपों में या साक्षात स्त्री आदि के विषय में होते हैं। शेष १५ पाप सर्व द्रव्य(६ द्रव्यों) को विषय करते हैं।

२४ द ड़क में क्रिया– इन १८ पाप स्थानों से २४ द ड़क के जीवों को क्रियाएँ लगती है। यहाँ भलावण पाठ है जिससे एकेन्द्रिय आदि में भी १८ पाप गिनाये गये हैं। यह अव्यक्त भाव की अपेक्षा एव अविरत भाव की अपेक्षा समझ सकते हैं। व्यक्त भाव की अपेक्षा तो जिनके मन एव वचन का योग नहीं है, चक्षु एव चक्षु विषय नहीं है उनके मृषावाद मैथुन आदि पाप दृष्टिगत नहीं होते।

सक्रिय अक्रिय–जीव और मनुष्य सक्रिय भी होते हैं एव अक्रिय भी। शेष २३ द ड़क के जीव सक्रिय ही होते हैं अक्रिय नहीं होते। जीव भी मनुष्य की अपेक्षा और मनुष्य भी १४ वें गुणस्थान की अपेक्षा अक्रिय होते हैं। सिद्ध सभी अक्रिय है।

प्रश्न–४ : २४ द ड़क में तथा परस्पर जीवों में क्रियाएँ कितनी होती है ?

उत्तर– २४ ही द ड़क में कायिकी आदि पा चों क्रियाएँ होती है। एक जीव में एक समय में कभी तीन, कभी चार एव कभी पा च क्रिया होती है। मनुष्य में कभी तीन, कभी चार, कभी पा च एव कभी अक्रिय भी होते हैं।

नारकी, देवता से किसी को भी प्राणातिपातिकी क्रिया नहीं लगती है। अतः इनकी अपेक्षा २३ द ड़क के जीवों के कभी तीन क्रिया और कभी चार क्रिया लगती है। मनुष्य में कभी तीन क्रिया, कभी चार क्रिया लगती है एव अक्रिय भी होता है।

औदारिक के दस द ड़कों की अपेक्षा २३ द ड़क के जीवों को कभी तीन क्रिया, कभी चार क्रिया, कभी पा च क्रिया लगती है। मनुष्य में अक्रिय का विकल्प अधिक होता है।

एक जीव को एक जीव की अपेक्षा, एक जीव को अनेक जीव की अपेक्षा, अनेक जीव को एक जीव की अपेक्षा और अनेक जीव को अनेक जीव की अपेक्षा भी ३-४-५ क्रिया का कथन समझ लेना। अनेक जीव के चौथे विकल्प में कभी तीन, कभी चार, ऐसा नहीं कह कर **तीन भी**, **चार भी**, ऐसा कथन करना चाहिये।

क्रिया में क्रिया की नियमा भजना :-

क्रम	क्रिया	नियमा	भजना
१	कायिकी	दूसरी,तीसरी	चौथी, पा चवीं
२	अधिकरणिकी	पहली,तीसरी	चौथी, पा चवीं
३	प्राद्वेषिकी	पहली, दूसरी	चौथी, पा चवीं
४	परितापनिकी	प्रथम तीन	पा चवीं
५	प्राणातिपातिकी	प्रथम चारों	×
६	अक्रिया	नहीं	नहीं

इन क्रियाओं की नियमा भजना से स ब धित स पूर्ण जीवों के चार विभाग होते हैं- क्रमशः तीन क्रिया वाले २, क्रम से चार क्रिया वाले ३, पा चों क्रिया वाले ४, पाँचों क्रिया रहित।

१. जिस जीव के २. जिस समय में ३.जिस देश में एव ४. जिस प्रदेश में यों चारों अपेक्षा से भी इन पाँचों क्रियाओं में उक्त प्रकार से नियमा भजना होती है।

प्रश्न-५ : आयोजित क्रिया का क्या अर्थ है और पापक्रिया तथा कर्म ब ध का स ब ध किस प्रकार है ?

उत्तर- आयोजिता-इन पा चों क्रियाओं को आयोजिता क्रिया भी कहा गया है अर्थात् जीवों को स सार में जोड़ने वाली, लगाने वाली ये क्रियाएँ है।

क्रिया और कर्मब ध-प्रत्येक जीव प्राणातिपात आदि पाप क्रिया करते हुए सात या आठ कर्मों का ब ध करता है।

अनेक जीवों की अपेक्षा तीन भ ग-१. सभी सात कर्म बा धने वाले २. सात कर्म बा धने वाले अधिक और आठ कर्म बा धने वाला एक,

३. सात कर्म बा धने वाले भी बहुत और आठ कर्म बा धने वाले भी बहुत।

आयुष्य कर्म जीव एक भव में एक बार बा धता है शेष सात कर्म सदा ब धते रहते हैं इसलिये उक्त विकल्प बनते हैं।

द ड़क की अपेक्षा १९ द ड़क में तीन विकल्प होते हैं समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय में तीन विकल्प नहीं होते क्यों कि उनमें जीवों की स ख्या अधिक होने से आयुष्य के ब धक सदा मिलते हैं।

अठारह पाप सेवन से ज्ञानावरणीय आदि ब ध करते हुए जीवों के कायिकी आदि क्रियाएँ ३-४ या ५ होती है अक्रिय नहीं होते।

अठारह पाप से विरत जीव को ज्ञानावरणीय आदि सात कर्म ब ध करते हुए ३-४ या ५ क्रिया लगती है और वेदनीय कर्म ब ध करते ३-४-५ क्रिया लगती है अथवा अक्रिय होता है।

प्रश्न-६ : आर भिकी आदि ५ क्रियाओं का स्वरूप क्या है और वे जीवों में किस तरह पाई जाती है ?

उत्तर- पा च क्रियाएँ इस प्रकार है, यथा- १. आर भिकी २. परिग्रहिकी ३. मायाप्रत्ययिकी ४.अप्रत्याख्यानप्रत्ययिकी ५.मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी।

(१) आर भिकी- जीव हिंसा के स कल्प एव प्रवृत्ति से तथा अहिंसा में अनुद्यम अनुपयोग से यह क्रिया लगती है। स सारस्थ जीवों को एव प्रमत्त स यत तक के मनुष्यों को यह क्रिया लगती है। अप्रमत्त स यत के यह क्रिया नहीं होती है।

(२) परिग्रहिकी- पदार्थों में ममत्व-मूर्च्छाभाव हो, उन्हें ग्रहण-धारण में आसक्ति भाव हो, तो यह क्रिया लगती है अथवा धार्मिक आवश्यक उपकरणों के अतिरिक्त पदार्थ का स ग्रह करने वाले एव गाँवों घरों एव भक्तों में अथवा शिष्यों में ममत्व भाव, मेरा-मेरापन की आसक्ति के परिणाम रखने वाले को परिग्रहिकी क्रिया लगती है। पाँचवें देशविरत गुणस्थान पर्यंत यह क्रिया लगती है।

(३) माया प्रत्ययिकी-सूक्ष्म या स्थूल कषाय के अस्तित्व सद्भाव में यह क्रिया लगती है। प्रथम गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक यह क्रिया लगती है। माया शब्द से यहाँ चारों कषायों का ग्रहण समझना चाहिये।

(४) अप्रत्याख्यान प्रत्ययिकी क्रिया- प्रत्याख्यान नहीं करने वाले

समस्त अविरत जीवों को यह क्रिया लगती है। अप्रत्याख्यान ही इसका निमित्त कारण है। प्रथम गुणस्थान से चतुर्थ गुणस्थान तक यह क्रिया है। देशविरत श्रावक में यह क्रिया नहीं होती है।

(५) मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी–प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती मिथ्यादृष्टि जीवों को यह क्रिया लगती है। उनका मिथ्यात्व या असम्यक्त्व ही इस क्रिया का कारण है। सन्नी जीवों की अपेक्षा मिथ्या समझ, मिथ्या मान्यता, विपरीत तत्वों की श्रद्धान, इसका कारण होता है। जिनेश्वर कथित तत्त्वों में अश्रद्धान भी इस क्रिया का कारण होता है, मिश्रदृष्टि को भी यह क्रिया लगती है।

२४ द ड़क में आर भिकी आदि क्रिया– सभी द ड़कों में उक्त पा चों क्रियाएँ होती है।

नियमा भजना की अपेक्षा– नारकी देवताओं में प्रार भ की चार क्रिया नियमा होती है पा चवीं मिथ्या दर्शन प्रत्ययिकी क्रिया मिथ्यादृष्टि के होती है एव सम्यग् दृष्टि के नहीं होती है। पा च स्थावर तीन विकलेन्द्रिय में पा चों नियमा होती है।

तिर्यंच प चेन्द्रिय में प्रार भ की तीन क्रिया नियमा होती है चौथी पा चवीं क्रिया भजना से होती है अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीवों के पा चवीं क्रिया नहीं होती है चार नियमा होती है। देशविरति श्रावक को अर्थात् कुछ भी व्रतप्रत्याख्यान करने वालों को चौथी, पा चवीं क्रिया नहीं होती है, तीन क्रिया ही होती है। मनुष्य और समुच्चय जीव में पा चों क्रिया भजना से होती है अर्थात् १-२-३-४ या ५ अथवा अक्रिय भी होते हैं।

क्रिया में क्रिया की नियमा भजना :-

क्रम	क्रिया	नियमा	भजना
१	आर भिकी	तीसरी	दूसरी,चौथी,पा चवीं
२	परिग्रहिकी	पहली,तीसरी	चौथी, पा चवीं
३	मायाप्रत्ययिकी	–	चारों
४	अप्रत्याख्यान	पहली दूसरी,तीसरी	पा चवीं
५	मिथ्यादर्शन	चारों	–
६	अक्रिया	नहीं	नहीं

प्रश्न-७ : पापस्थान, कर्म और क्रिया स ब धी निरूपण किस प्रकार है ?

उत्तर- विरति–छ(षड़) जीवनिकाय आदि जिन द्रव्यों में पाप किये जाते हैं, पाप की विरति भी उन्हीं की अपेक्षा होती है अर्थात् १५ पाप की विरति सर्वद्रव्यों की अपेक्षा होती है और हिंसा, अदत्त और मैथुन की विरति क्रमशः ६ काया, ग्रहण धारण योग्य द्रव्य एव रूप और रूप सहगत द्रव्यों की अपेक्षा होती है।

यहाँ विरति भाव सर्व विरति की अपेक्षा है। अतः मनुष्य के अतिरिक्त २३ द ड़क में १७ पाप से विरति नहीं है। १८वें मिथ्यात्व पाप से विरति पा च स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय में नहीं है शेष १६ द ड़क में हैं अर्थात् नारकी देवता मनुष्य और तिर्यंच प चेन्द्रिय में मिथ्यात्व से विरति सम्यग्दृष्टि जीवों को होती है। १७ पाप से विरति स यत मनुष्य के ही होती है।

कर्मब ध– मिथ्यादर्शन से विरत तेवीस द ड़क के जीव आठ कर्म बा धने वाले होते हैं, कोई सात कर्म बा धने वाले होते हैं।

१८ पाप त्याग वाले मनुष्य १. सात कर्म बा धने वाले २. आठ कर्म बा धने वाले ३. छ कर्म बा धने वाले ४. एक कर्म बा धनेवाले ५. अब धक भी होते हैं।

सात कर्म ब धक– एक आयुष्य कर्म नहीं बा धते हैं। **आठ कर्म ब धक**– सभी कर्म बा धते हैं। **छ कर्म ब धक**– आयुष्य कर्म और मोह कर्म नहीं बा धते हैं(१०वाँ गुणस्थान वाले)। **एक कर्म ब धक**–वेदनीय कर्म बा धते हैं। (११वाँ १२वाँ १३ वाँ गुणस्थान वाले)। **अब धक**–कोई भी कर्म नहीं बा धते (१४वाँ गुणस्थान वाले)।

इनमें सात के ब धक और एक के ब धक दो बोल शाश्वत है, शेष तीन अशाश्वत है अर्थात् कभी होते हैं कभी नहीं होते हैं।

(१) दोनों शाश्वत का एक भ ग (२) तीन अशाश्वत के एक और अनेक की अपेक्षा अस योगी ६ भ ग। (३) तीन अशाश्वत के तीन द्विक की तीन चौभ गी होने से द्विस योगी १२ भ ग। (४) तीन अशाश्वत की एक त्रिक के तीन स योगी आठ भ ग। ये कुल (१+६+१२+८)२७ भ ग होते हैं। भ ग विधि **१६ वें प्रयोगपद** में समझाई गई है।

पापस्थानों की विरति एव क्रिया- १७ पाप की विरति में जीव और मनुष्य में दो क्रिया-आर भिकी एव मायाप्रत्यायिकी इन दो की भजना। परिग्रहिकी आदि तीन क्रिया नहीं होती है।

१८ वें मिथ्यात्व पाप से विरत जीव मनुष्य में चार क्रिया की भजना एव मिथ्यात्व की क्रिया नहीं होती है। शेष १५ द ड़क के जीवों में ४ क्रिया की नियमा होती है, मिथ्यात्व की क्रिया नहीं होती है। आठ द ड़क में एक भी पाप की विरति नहीं है।

अल्पाबहुत्व-(१) सबसे थोड़ा मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया वाले (२) उससे अप्रत्याख्यान क्रिया वाले विशेषाधिक (३) उससे परिग्रहिकी क्रिया वाले विशेषाधिक (४) उससे आर भिकी क्रिया वाले विशेषाधिक (५) उससे माया प्रत्ययिकी क्रिया वाले विशेषाधिक।

पद-२३ : कर्मप्रकृति

प्रश्न-१ : कर्मों के स ब ध में यहाँ किन-किन विषयों का निरूपण है ?

उत्तर- कर्मों स ब धी विविध निरूपण यहाँ दो उद्देशकों में किया गया है। जिसमें से- **प्रथम उद्देशक में-** कर्मब ध का स्वरूप, कर्मब ध के चार प्रकार, आठ कर्म प्रकृति, कर्मों की पर परा एव उससे मुक्ति, आठों कर्म प्रकृतियों का विपाक अर्थात् फल देने का प्रकार स ख्या युक्त दर्शाया गया है। **दूसरे उद्देशक में-** आठ कर्म प्रकृतियों की १४८ उत्तर प्रकृतियों की जघन्य-उत्कृष्ट ब ध स्थितियाँ, अबाधाकाल, एकेन्द्रियादि के इन प्रकृतियों का जघन्य-उत्कृष्ट ब ध दर्शाया है। अ त में आठों कर्मों के जघन्य स्थितिब धक (बा धने वाले) और उत्कृष्ट स्थितिब धक का स्पष्टीकरण किया गया है।

प्रश्न-२ : कर्मब ध का स्वरूप क्या है एव वह कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर- मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद,कषाय और योग इन पा चों में से किसी के भी निमित्त से आत्मा में जो अचेतन द्रव्य आता है वही कर्म द्रव्य है। रागद्वेष के स योग से वह आत्मा के साथ ब ध जाता है और समय पाकर वह कर्म अपने स्वभावानुसार फल देता है।

रागद्वेष जनित मानसिक प्रवृत्ति के अनुसार क्रोधादि कषायवश शारीरिक वाचिक क्रिया होती है, वही द्रव्य कर्मोपार्जन का कारण बनती है वस्तुतः कषाय प्रेरित अथवा कषाय रहित मन वचन काया की प्रवृत्ति से ही आत्मा में कर्मों का आगमन होता है। उन कर्म परमाणुओं का चार प्रकार का ब ध होता है।

(१) प्रकृति ब ध- आत्मा के ज्ञान आदि गुणों को आवृत करने रूप या सुख-दुःख देने रूप मुख्य आठ प्रकार के स्वभावों का ब ध, "प्रकृति बध" है।

(२) स्थिति ब ध- कर्मों के विपाक की फल देने की अवधि का निश्चय करना, ब ध करना स्थिति ब ध है।

(३) अनुभाग ब ध- कर्म रूप में ग्रहीत पुद्गलों के फल देने की शक्ति का तीव्र-म द होना 'अनुभाग ब ध' है।

(४) प्रदेश ब ध- भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले कर्मप्रदेशों की स ख्या का निर्धारण होना आत्मा के साथ ब ध होना प्रदेशब ध है।

प्रश्न-३ : कर्मों का मौलिक विभाजन कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर- लोक में कार्मण वर्गणा के सामान्य पुद्गल होते है उन्हें आत्मा ग्रहण करती है। फिर आत्म परिणामों के आधार से उनका मौलिक आठ कर्म प्रकृतियों के रूप में विभाजन होता है वह प्रकृति ब ध के रूप में होता है। अतः प्रकृति की अपेक्षा कर्मों के प्रमुख आठ प्रकार है। यों इस वर्गीकरण से कर्मों की मूल प्रकृति आठ कही जाती है। उत्तर प्रकृति अर्थात् इन आठों कर्मों के अवाँतर भेद १४८ होते हैं। इन अवाँतर भेदों की अपेक्षा कर्मब ध का विभाजन, वर्गीकरण १४८ प्रकार से होता है। प्रथम उद्देशक में आठ मौलिक कर्म प्रकृति की विचारणा की गई है। एव दूसरे उद्देशक में उन १४८ प्रकृतियों की विचारणा है।

आठ कर्म प्रकृति :- (१) ज्ञानावरणीय-आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करने वाला। **(२) दर्शनावरणीय**-दर्शनगुण एव जागृति को आवृत्त करने वाला। **(३) वेदनीय**-सुख दुःख की विभिन्न अवस्थाओं को देने वाला। **(४) मोहनीय**-आत्मा को मोहित मति बनाकर कुश्रद्धा कुमान्यता असदाचरणों में कषायों एव विकारों में उलझाने वाला।

(५) आयुष्य-किसी न किसी स सारिक गतियों के भवस्थिति में रोके रखने वाला। **(६) नामकर्म**-दैहिक विचित्र अवस्थाओं को प्राप्त कराने वाला। सुन्दर-खराब, शक्ति सम्पन्न, निर्बल शरीरों को एव विभिन्न स योगों को प्राप्त कराने वाला। **(७) गौत्रकर्म**-ऊँच और नीच जाति, कुल एव हीनाधिक बल, रूप आदि प्राप्त कराने वाला। **(८) अ तरायकर्म**-दान, लाभ, भोग, उपभोग में बाधक अवस्थाओं को पैदा करने वाला।

प्रश्न-४ : कर्मब ध की यह पर परा कब तक चलती है, इससे मुक्ति कब होती है ?

उत्तर- एक कर्म के उदय से दूसरे कर्म का उदय होता रहता है। कर्मों के उदय से जीव की मति और परिणति वैसी होती रहती है अर्थात् कर्मों का उदय अन्य उदय को प्रेरित करता है और उदय से आत्मा की परिणति प्रभावित होती है। परिणति की तारतम्यता से पुनः नये कर्म ब ध होते रहते हैं। इस प्रकार आठों तरह के कर्म ब ध से और उदय से यह स सार चक्र चलता रहता है।

किन्तु जब आत्मा अपनी विशिष्ट ज्ञान विवेक शक्ति से सशक्त बन जाती है तो वह कर्मोदय प्रेरित बुद्धि एव वैसी परिणति वाली नहीं होकर सजाग रहती है एव पूर्ण विवेक के साथ कर्म प्रभाव पर परा को अवरुद्ध करने में सफल हो जाती है। तब क्रमशः कर्मों से मुक्त बनती जाती है, नये कर्म ब ध कम होते हैं, उनका फल भी कम पड़ जाता है। तब एक दिन कर्मों का प्रभाव पूर्ण रूप से ध्वस्त नष्ट हो जाता है और आत्मा सदा के लिये कर्मों से एव कर्मब ध और उसके फल भोगने से दूर हो जाती है अर्थात् पूर्णतया मुक्त बन जाती है। वह शाश्वत सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेती है।

प्रश्न-५ : आठ कर्मों का वेदन-उसका फल जीव को कितने प्रकार से भोगना पड़ता है ?

उत्तर- २४ ही द ड़क के समस्त जीव ज्ञानावरणीय आदि आठों कर्मों का वेदन करते हैं। वे कर्म स्वय जीव के द्वारा बा धे हुए स चित किये हुए होते हैं। स्वतः विपाक प्राप्त, उदय प्राप्त होते हैं। इस प्रकार वे कर्म जीव से ही कृत निवर्तित एव परिणामित होते हैं। स्वतः उदीरित होते हैं या परत भी उदीरित होते हैं एव तद्योग्य गति, स्थिति, भव को प्राप्त

होकर वे कर्म अपना विशिष्ट फल प्रकट करते हैं। यथा- नरकगति को प्राप्त कर विशिष्ट अशाता वेदनीय, मनुष्य तिर्यंच भव में विशिष्ट निद्रा, देव भव में विशिष्ट सुख आदि। आठों कर्मों के विपाक के अनेक प्रकार है, यथा-

(१) ज्ञानावरणीय कर्म का १० प्रकार का विपाक- ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव एव केवल इन पा च प्रकार के ज्ञान का आवरण होता है किन्तु यहाँ मतिज्ञानावरणीय के परिणाम रूप १० प्रकार कहे गये है जो कि पा च इन्द्रियों से स ब धित है। यद्यपि द्रव्येन्द्रियाँ नाम कर्म से स ब धित है तथापि भावेन्द्रिय का स ब ध ज्ञानावरणीय से है। उपकरण रूप जो बाह्य आभ्य तर श्रोत्रेन्द्रिय(कान) है वह नाम कर्म के उदय से प्राप्त है एव **लब्धि और उपयोग भावेन्द्रिय** है वह ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होती है। इसका(भावेन्द्रिय का) आवरण होना वह ज्ञानावरणीय के उदय से होता है। इसके क्षयोपशम की प्राप्ति यह **लब्धि** रूप है और उससे प्राप्त विषय में उपयुक्त होना, उस विषय को अच्छी तरह ग्रहण करना, समझना यह **उपयोग** रूप है।

(१ से ५) इन्द्रियों के क्षयोपशम को आवरित(बाधित) करना। (६ से १०) पा च इन्द्रियों के उपयोग को अर्थात् उनसे होने वाले ज्ञान को बाधित करना। यह दस प्रकार का विपाक ज्ञानावरणीय कर्म के उदय का बताया गया है। इस कर्म के उदय से जीव जानने योग्य को भी नहीं जान पाता, जानना चाहते हुए भी नहीं जान सकता और जानकर के भी फिर नहीं जानता है अथवा उसका पूर्व ज्ञान लुप्त हो जाता है।

(२) दर्शनावरणीय कर्म का ९ प्रकार का विपाक-(१-४) चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल इन चार दर्शन को बाधित करना। (५) निद्रा- सामान्य सहज निद्रा आना। (६) निद्रा-निद्रा- प्रगाढ़ निद्रा आना। (७) प्रचला- बैठे-बैठे निद्रा आना। (८) प्रचला-प्रचला- चलते-चलते निद्रा आना। (९) स्त्यानर्द्धि निद्रा- महानिद्रा आना, दिन में सोचे हुए असाधारण कार्य रात्रि में उठकर इस निद्रा में ही कर लिये जाते हैं एव पुनः वह व्यक्ति सो जाता है।

यह ९ प्रकार का दर्शनावरणीय कर्म का उदय जन्य विपाक है। इस कर्म के उदय से जीव देखने योग्य पदार्थों को देख नहीं पाता, देखना

चाहते हुए भी देखता नहीं और देखकर भी बाद में नहीं देखता है।

(३) वेदनीय कर्म का १६ प्रकार का विपाक- सातावेदनीय- (१-५)मनोज्ञ शब्द, रूप, ग ध,रस, स्पर्श के पदार्थों का स योग मिलना। (६) मन से प्रसन्न रहने के स योग होना। (७) बोलने की परेशानी रहित स योग होना अर्थात् बोलने में भी आन द शा ति का स योग होना। (८) शरीर के सुख या सेवा का स योग प्राप्त होना। **असातावेदनीय-** ऊपरोक्त आठों का विपरीत प्राप्त होना।

(४) मोहनीय कर्मों का ५ प्रकार का विपाक- (१) मिथ्यात्व- मिथ्या मति होना, मिथ्या श्रद्धा मान्यता होना। (२) मिश्र- मिश्र मति, मिश्र श्रद्धा, मान्यता होना। (३) सम्यक्त्व मोहनीय- क्षायिक समकित प्राप्ति में बाधक होना। (४) कषाय- १६ प्रकार के कषाय भावों में परिणामों में स लग्न बनना। (५) नोकषाय- वेद, हास्य, भय आदि ९ प्रकार की विकृत अवस्थाओं में स लग्न होना। इस प्रकार मुख्य पा च प्रकार का मोह कर्म का विपाक होता है।

(५) आयुष्य कर्म का चार प्रकार का विपाक-(१) नरकायु (२) तिर्यंचायु (३) मनुष्यायु (४) देवायु रूप से आयुष्य कर्म का चार प्रकार का परिणाम है।

(६) नाम कर्म का २८ प्रकार का विपाक- शुभनाम-(१ से ५) स्वय के शब्द, रूप, ग ध, रस, स्पर्श का ईष्ट होना। इसी प्रकार स्वय की (६) गति (चाल)। (७) स्थिति(अवस्थान)। (८) लावण्य (९) यश। (१०) उत्थान कर्म बल वीर्य पुरुषकार पराक्रम आदि का मन पस द होना। (११-१४) ईष्ट, का त, प्रिय एव मनोज्ञ स्वर का होना। **अशुभ नाम-** ऊपरोक्त १४ का विपरीत प्राप्त होना।

(७) गौत्र कर्म का १६ प्रकार का विपाक- उच्चगौत्र- १. जाति २. कुल ३. बल ४. रूप ५. तप ६. श्रुत ७. लाभ ८. ऐश्वर्य,इन आठ का श्रेष्ठतम मिलना। **नीचगौत्र-** इन उक्त आठ की निम्नस्तरीय उपलब्धि-प्राप्ति होना।

अ तराय कर्म का ५ प्रकार का विपाक- १. दान २. लाभ ३. भोग (४) उपभोग ५. वीर्य-पुरुषार्थ में बाधाएँ उत्पन्न होना, विघ्न होना

या स योग न बनना। चाहते हुए या स योग मिलते हुए भी न कर पाना यह अ तराय कर्म का विपाक-फल है।

प्रश्न-६ : कर्मों के उदय में शक्य विरोध या सहयोग किस प्रकार स भव है तथा अन्य भी विशिष्ट ज्ञातव्य क्या है ?

उत्तर- (१) मदिरा आदि सेवन से ज्ञान लुप्त होना, ब्राह्मी सेवन से बुद्धि स्मृति विकसित होना, भोज्य पदार्थों से निद्रा-अनिद्रा, रोग-निरोग होना। औषध, चश्में के प्रयोग से दृष्टि का तेज होना, इत्यादि पुद्गल जन्य पर निमित्त कर्म विपाक भी होते है एव स्वतः अवधि आदि ज्ञान का उत्पन्न न होना, स्वतः रोग आ जाना इत्यादि स्वतः कर्म विपाक है।

(२) बेइन्द्रिय के कान, नाक, आ ख का लब्धि उपयोग का अभाव होता है। इस प्रकार तेइन्द्रिय आदि का भी समझ लेना। कुष्ट रोग से उपहत शरीर या या लकवा(पक्षघात)से उपहत शरीर के स्पर्शेन्द्रिय का लब्धि उपयोग आवरित होता है। जन्म से अ धे-गूगे है या बाद में हो गये हो उनके श्रोत, चक्षु, घ्राण आदि इन्द्रियों के लब्धि उपयोग का आवरण समझना चाहिये।

(३) चक्षु-अचक्षु दर्शनावरणीय में सामान्य उपयोग बाधित होता है एव ज्ञानावरणीय में विशेष उपयोग, विशिष्ट अवबोध आवरित होता है।

(४) कर्मों के उदय, क्षयोपशम आदि से तथा द्रव्य, क्षेत्र,काल, भाव, भव से भी प्रभावित होते हैं। यथा- सर्दी में या प्रातःकाल अध्ययन स्मरण की सुलभता। शात एका त स्थान में तत्त्वज्ञान की ध्यान की अनुप्रेक्षा विशेष गुणवर्धक होती है। निद्रा आने या एकाग्रचित हो जाने पर वेदनीय कर्म सुसुप्त हो जाता है। इत्यादि विविध उदाहरण प्रस ग समझ लेने चाहिये।

(५) **उत्थान=** शरीर स ब धी चेष्टा, **कर्म=** भ्रमण-गमन आदि, **बल=** शारीरिक शक्ति, **वीर्य=** आत्मा में उत्पन्न होने वाला सामर्थ्य, **पुरुषकार=** आत्मजन्य स्वाभिमान विशेष, **पराक्रम=** अपने कार्य-लक्ष्य में सफलता प्राप्त कर लेना। यह उत्थान-कम्म-बल-वीर्य-पुरुषकार-पराक्रम का अर्थ है।

(६) नाम कर्म में इच्छित(स्वय के मन पस द) शब्दादि होना **इष्ट शब्द** आदि है। इष्ट का त आदि स्वर का मतलब है- वीणा के समान वल्लभ

खुद का स्वर होना, कोयल के समान कमनीय स्वर होना, इसी प्रकार अन्यों को अभिलषणीय, प्रिय स्वर का होना। यह ईष्ट शब्द और ईष्ट स्वर आदि में अ तर समझना चाहिये।

(७) वेदनीय कर्म में मनोज्ञ अमनोज्ञ दूसरों के शब्दादि का स योग मिलना होता है और नाम कर्म में स्वय के शरीर से स ब धित शब्दादि होते हैं। यह दोनों के मनोज्ञ और ईष्ट शब्दों में अ तर है।

(८) गधा, ऊँट, कुत्ता आदि के शब्द अनिष्ट होते हैं, कोयल, तोता, मयूर आदि के शब्द ईष्ट होते हैं।

इस प्रकार इस प्रथम उद्देशक में आठ मूल कर्म प्रकृति उसका स्वरूप, ब ध स्वरूप एव उदय के प्रकार अर्थात् कर्म फल देने के प्रकार बताये गये हैं। आगे दूसरे उद्देशक में आठ मूल कर्म प्रकृति की उत्तर प्रकृतियें और उनके भेदानुभेदों का वर्णन किया गया है साथ ही उन समस्त प्रकृतियों का जघन्य और उत्कृष्ट ब ध काल-स्थितियाँ बताई गई है। **॥ उद्देशक-१ समाप्त ॥**

प्रश्न-७ : आठ कर्म प्रकृतियों के उत्तर भेद किस प्रकार है और स्थिति की अपेक्षा उनका ब ध जघन्य-उत्कृष्ट कितना होता है ?

उत्तर- आठ कर्मों में ज्ञानावरणीय कर्म, आयुकर्म और अ तरायकर्म की केवल उत्तर प्रकृतियें कही गई है उनके पुनः भेद नहीं किये गये हैं। शेष पा च कर्मों की उत्तर प्रकृतियों के पुनः अनेक भेद किये गये हैं।

(१) ज्ञानावरणीय-उत्तर प्रकृति पा च है। (२) दर्शनावरणीय-उत्तर प्रकृति दो हैं एव उसके भेद ९ है। (३) वेदनीय- उत्तर प्रकृति दो हैं एव उसके भेद १६ है। (४) मोहनीय-उत्तर प्रकृति दो हैं एव उसके भेद ५ और कुल २८ भेदानुभेद है। (५) आयुष्य-उत्तर प्रकृति ४ है। (६) नाम कर्म-उत्तर प्रकृति ४२ हैं एव उसके भेद ९३ है। (७) गौत्रकर्म-उत्तर प्रकृति दो हैं एव उसके भेद १६ है। (८) अ तरायकर्म-उत्तर प्रकृति ५ है। ये कुल १७६ भेद होते हैं। इनमें से १४८ उत्तर प्रकृतियों की ब ध स्थिति बताई गई है। २८ भेदों को कम कर दिये हैं। वेदनीय और गौत्र कर्म के १६-१६ भेद कहे हैं किन्तु ब धस्थिति केवल २-२ भेदों की ही कहीं गई है। अतः १४+१४=२८ कम होने से १७६-२८=१४८ होते हैं।

१४८ कर्म प्रकृतियों की ब ध स्थिति :-

क्रम	कर्म प्रकृति नाम	जघन्य ब ध स्थिति	उत्कृष्ट ब ध स्थिति
१-५	मतिज्ञानावरणीय आदि पा च	अ तर्मुहूर्त	३० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर
६-९	चक्षुदर्शनावरणीय आदि चार	अ तर्मुहूर्त	३० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर
१०-१४	निद्रा आदि पा च	३/७सागर. साधिक	३० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर
१५	ईर्यावहि साता वेदनीय	दो समय	दो समय
	सांपरायिक साता वेदनीय	१२ मुहूर्त	१५ क्रोड़ाक्रोड़ी सागर
१६	असाता वेदनीय	३/७ सागरोपम देशोन	३० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर
१७	सम्यक्त्व मोहनीय	अ तर्मुहूर्त	६६ सागर साधिक
१८	मिथ्यात्व मोहनीय	१ सागर. देशोन	७० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर
१९	मिश्र मोहनीय	अ तर्मुहूर्त	अ तर्मुहूर्त
२०-३१	तीन कषाय चौक (१२)	४/७ सागर। देशोन	४० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर
३२-३५	सज्वलन कषाय चौक	२ मास /१मास/ अर्धमास/अ तर्मुहूर्त	४० क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम
३६	स्त्री वेद	सातिया ड़ेढ़ भाग सागरोपम देशोन	१५ क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम
३७	पुरुष वेद	८ वर्ष	१० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर
३८	नपु सक वेद	२/७सागर। देशोन	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर
३९-४०	हास्य, रति	१/७सागर देशोन	१० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर
४१-४४	अरति, भय शोक, दुग छा	२/७सागर देशोन	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर
४५-४६	नरकायु, देवायु	१०००० वर्ष सा॰ अ तर्मुहूर्त	३३ सागर + १/३ करोड़ पूर्व
४७-४८	तिर्यंचायु, मनुष्यायु	अ तर्मुहूर्त	३ पल्य+१/३करोड़ पूर्व
४९	नरक गति	२/७ हजार सागर देशोन	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर
५०	तिर्यंच गति	२/७ सागरोपम देशोन	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर
५१	मनुष्य गति	सातिया ड़ेढ़ भाग सागरोपम देशोन	१५ क्रोड़ाक्रोड़ीसागर सागरोपम
५२	देव गति	१/७हजार सागर देशोन	१० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर
५३	एकेन्द्रिय जाति	२/७ सागर देशोन	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर
५४-५६	बेइन्द्रियादि तीन जाति	९/३५सागर देशोन	१८ क्रोड़ाक्रोड़ी सागर

५७	प चेन्द्रिय जाति	२/७ सागर॰ देशोन	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
५८	औदारिक शरीर	२/७ सागर॰ देशोन	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
५९	वैक्रिय शरीर	२/७ हजार सागर॰ देशोन	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
६०	आहारक शरीर	अ त: क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰	अ त:क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
६१-६२	तैजस, कार्मण शरीर	२/७ सागर॰ देशोन	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
६३-७२	५ ब धन, ५ स घातन	स्व शरीर समान	स्व शरीर समान
७३-७५	अ गोपा ग तीन	स्व शरीर समान	स्व शरीर समान
७६	व्रजऋषभ नाराच स घयण	५/३५(१/७)सागर॰ देशोन	१० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
७७	ऋषभ नाराच स घयण	६/३५ सागर॰ देशोन	१२ क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
७८	नाराच स घयण	७/३५(१/५) सागर॰ देशोन	१४ क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
७९	अर्धनाराच	८/३५ सागर॰ देशोन	१६ क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
८०	कीलिका स घयण	९/३५ सागर॰ देशोन	१८ क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
८१	सेवार्त स घयण	१०/३५(२/७) सागर॰ देशोन	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
८२-८७	स स्थान ६	स घयण के समान	
८८	सफेद वर्ण	४/२८(१/७) सागर॰ देशोन	१० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
८९	पीला वर्ण	५/२८ सागर॰ देशोन	१२॥ क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
९०	लाल वर्ण	६/२८ सागर॰ देशोन	१५ क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
९१	नीला वर्ण	७/२८(१/४)सागर॰ देशोन	१७॥ क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
९२	काला वर्ण	८/२८ सागर॰ देशोन	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
९३	सुग ध	१/७ सागर॰ देशोन	१० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
९४	दुर्गंध	२/७सागर॰ देशोन	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
९५-९९	पा च रस	पा च वर्ण के समान	
१००-१०३	कर्कश, गुरु, शीत, रूक्ष	२/७ सागर॰ देशोन	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
१०४-१०७	मृदु, लघु, स्निग्ध, उष्ण	१/७सागर॰ देशोन	१० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
१०८-११०	अगुरु लघु, उपघात, पराघात	२/७सागर॰ देशोन	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
१११-११४	चार आनुपूर्वी	४ गति के समान	
११५-११८	उच्छ्वास, आतप, उद्योत, निर्माण नामकर्म	२/७ सागरोपम (कुछ कम)	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम
११९	तीर्थंकर नामकर्म	अ त: क्रो॰को॰ सागर॰	अतः क्रो॰क्रो॰ सागर॰
१२०	शुभ विहायोगति	१/७ सागर॰ देशोन	१० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
१२१	अशुभ विहायोगति	२/७ सागर॰ देशोन	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰

१२२-१२६	त्रस, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक	२/७ सागरोपम (कुछ कम)	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम
१२७-१२९	सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण	९/३५ सागर॰ देशोन	१८ क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
१३०-१३४	स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय नामकर्म	१/७ सागरोपम (कुछ कम)	१० क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम
१३५-१४०	अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुश्वर, अनादेय, अयश॰	२/७ सागरोपम (कुछ कम)	२० क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम
१४१	यशकीर्ति नामकर्म	आठ मुहूर्त	१० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
१४२	उच्च गोत्र	आठ मुहूर्त	१० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰
१४३	नीच गोत्र	२/७ सागर॰ देशोन	२० क्रोड़ाक्रोड़ी देशोन
१४४-१४८	दाना तरायादि पा च	अ तर्मुहूर्त	३० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर॰

स केत–सागर॰=सागरोपम। पल=पल्योपम। को॰को॰=कोड़ा कोड़ी। कुछ कम=पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग कम। १/७=एक सागरोपम का एक सातवाँ भाग। १/७ हजार साग॰= एक हजार सागरोपम का सातवाँ भाग। ९/३५ सागर=एक सागर के पैंतीसवें भाग ९।

प्रश्न-८ : १४८ प्रकृति ब ध स ब धी विशेष जानने योग्य तत्त्व क्या क्या है ?

उत्तर- (१) १/७ सागर, २/७ सागर आदि जो जघन्य ब ध स्थिति है वह एकेन्द्रिय की अपेक्षा होती है आयुष्य को छोड़कर जो आठ मुहूर्त, अ तर्मुहूर्त का जघन्य ब ध है वह अप्रमत्त गुणस्थानों की अपेक्षा है। **(२)** जहाँ उत्कृष्ट ब ध १० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर होता है वहाँ जघन्य १/७ सागर होता है उसी प्रकार २० सागर का २/७,३० सागर का ३/७ होता है। **(३)** जघन्य उत्कृष्ट दो समय का ब ध वीतराग अवस्था का है। **(४)** जघन्य उत्कृष्ट अ तः क्रोड़ाक्रोड़ी ब ध सम्यक्दृष्टि श्रावक एव साधु की अपेक्षा है। **(५)** नामकर्म में १४ पिंड़ प्रकृति है और आठ प्रत्येक प्रकृति है अर्थात् आठ एक भेद वाली और १४ अनेक भेदों वाली प्रकृतियाँ है।

(६) आठ प्रत्येक प्रकृतियाँ- १. अगुरुलघु २. उपघात ३. पराघात ४. उच्छ्वास ५. आतप ६. उद्योत ७. तीर्थंकर ८. निर्माण।

(७) चौदह पिंड़ प्रकृतियाँ-(१) गति-४ (२) जाति-५ (३) शरीर-५

(४) अ गोपा ग-३ (५) ब धन-५ (६) स घातन-५ (७) सहनन-६ (८) स स्थान-६ (९) वर्ण-५ (१०) ग ध-दो (११) रस-पा च (१२) स्पर्श-आठ (१३) आनुपूर्वी-चार (१४) विहायोगति-दो।

(८) दो दसक- १. त्रस दसक- त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, शुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति। **२.** स्थावर दसक- स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति ।

प्रश्न-९ : अबाधाकाल क्या है और समुच्चय अबाधाकाल कितना होता है ?

उत्तर- प्रत्येक कर्म प्रकृति की ब ध स्थिति के अनुपात से अबाधा काल होता है। जिस कर्म प्रकृति की जितने क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम की ब ध स्थिति है उतने ही सौ वर्ष का अबाधा काल जानना चाहिये, यथा-

उत्कृष्ट ब ध	उत्कृष्ट अबाधाकाल
७० क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम का	७००० वर्ष
३० क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम का	३००० वर्ष
२० क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम का	२००० वर्ष
१५ क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम का	१५०० वर्ष
१० क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम का	१००० वर्ष
१२ क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम का	१२०० वर्ष
१८ क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम का	१८०० वर्ष
१७॥ क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम का	१७५० वर्ष
१४ क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम का	१४०० वर्ष
१६ क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम का	१६०० वर्ष
१२॥ क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम का	१२५० वर्ष

नोट- जघन्य अबाधाकाल अ तर्मुहूर्त आदि समझ लेना चहिये। आयुष्यकर्म का अबाधाकाल जघन्य अ तर्मुहूर्त, मध्यम ६ महिना, उत्कृष्ट क्रोड़पूर्व का तीसरा भाग अर्थात् १/३ क्रोड़पूर्व।

प्रश्न-१० : एकेन्द्रिय से प चेन्द्रिय तक के ब ध काल का वर्गीकरण किस प्रकार है ?

उत्तर- एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट ब ध एक सागरोपम है, बेइन्द्रिय का २५

सागरोपम, तेइन्द्रिय का ५० सागरोपम, चौरेन्द्रिय का १०० सागरोपम, असन्नि प चेन्द्रिय का १००० सागरोपम का उत्कृष्ट ब ध है। यह ७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम वाले मिथ्यात्व मोह कर्म की अपेक्षा है। अन्य जिस प्रकृति का जितना उत्कृष्ट ब ध हो उसे इसी अनुपात से समझ लेना चाहिये अर्थात् सन्नी प चेन्द्रिय का ७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम बराबर एकेन्द्रिय का एक सागरोपम।

एकेन्द्रिय से असन्नि प चेन्द्रिय तक का जघन्य ब ध काल अपने उत्कृष्ट ब ध काल से पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग कम होता है।

एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट ब ध काल विवरण :-

प्रकृति	उत्कृष्ट ब धसमुच्चय	एकेन्द्रिय का उत्कृष्टब ध
ज्ञानावरणीयादि	३० क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम	३/७ सागरोपम
सातावेदनीय	१५ क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम	सातिया डेढ़ सागरोपम
मिथ्यात्व मोह	७० क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम	१ सागरोपम
१६ कषाय	४० क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम	४/७ सागरोपम
पुरुष वेद	१० क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम	१/७ सागरोपम
बेइन्द्रिय जाति	१८ क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम	९/३५ सागरोपम
ऋषभ नाराच	१२ क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम	६/३५ सागरोपम
नीलावर्ण	१७॥ क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम	७/२८ सागरोपम

इस प्रकार सभी प्रकृतियों का एकेन्द्रिय का ब ध जान लेना। तेरह प्रकृति का ब ध एकेन्द्रिय के नहीं है अतः १४८-१३=१३५ प्रकृति का ब ध होता है। आयुष्य कर्म का ब ध जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व और २२ हजार वर्ष का तीसरा भाग साधिक।

तेरह प्रकृति-नरक त्रिक, देव त्रिक, वैक्रिय द्विक, आहारक द्विक और तीर्थंकर नाम कर्म, मिश्र मोह, सम्यक्त्व मोह।

विकलेन्द्रिय आदि के ब ध- बेइन्द्रिय में भी इन १३५ प्रकृतियों का उत्कृष्ट ब ध २५ गुणा अर्थात् २५ सागरोपम के उक्त भाग समझ लेना। जघन्य ब ध उत्कृष्ट से पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग कम समझना। इसी प्रकार तेइन्द्रिय के १३५ प्रकृतियों का ब ध ५० गुणा, चौरेन्द्रिय का सौ गुणा एव असन्नि प चेन्द्रिय का हजार गुणा समझ लेना।

आयुष्य कर्म का ब ध एकेन्द्रिय के समान ही विकलेन्द्रिय का है। असन्नि प चेन्द्रिय में आयुब ध जघन्य अ तर्मुहूर्त(मनुष्य तिर्यंचायु)एव जघन्य अ तर्मुहूर्त साधिक १०००० वर्ष (देव-नरकायु) उत्कृष्ट पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग और १/३ करोड़पूर्व अधिक।

असन्नि प चेन्द्रिय पा च प्रकृति का ब ध नहीं करता है, यथा- तीर्थंकर नाम, आहारक द्विक, मिश्रमोह, सम्यक्त्व मोह। शेष १४८-५ =१४३ प्रकृति का ब ध ऊपरोक्त तरीके से जानना।

सन्नी प चेन्द्रिय में तीन गति में सभी प्रकृतियों का जघन्य अ तः कोड़ाकोड़ी सागरोपम का ब ध होता है, उत्कृष्ट समुच्चय के समान ब ध होता है।

जिनका समुच्चय में जघन्य ब ध अ तर्मुहूर्त आदि है वह मनुष्य में भी उतना ही है। जिनका जघन्य ब ध सागरोपम में है उनका मनुष्य में अ तः कोड़ाकोड़ी सागरोपम है।

आयुब ध सन्नी में-नारकी देवता में-तिर्यंचायु ब ध जघन्य अ तर्मुहूर्त+ ६मास, उत्कृष्ट क्रोड़पूर्व+६ मास। मनुष्यायु ब ध जघन्य अनेक मास (अथवा अनेक वर्ष)+६ मास, उत्कृष्ट क्रोड़पूर्व+६ मास। तिर्यंच में- तीन गति का आयुष्य समुच्चय के समान एव देवायु ब ध उत्कृष्ट १८ सागरोपम+१/३करोड़पूर्व है। मनुष्य में-चारों गति के आयुष्य समुच्चय के समान है।

प्रश्न-११ : कर्मों का जघन्य ब ध कब कहाँ होता है और उत्कृष्ट ब ध कब कहाँ होता है ?

उत्तर- जघन्य कर्म ब धक-आयुकर्म- अस क्षेपद्धा(अ तिम अ तर्मुहूर्त) प्रविष्ट जीव सर्व जघन्य आयुब ध करता है। **मोहकर्म-** ८वें ९वें गुणस्थान वाला मनुष्य सर्व जघन्य मोहकर्म का ब ध करता है। **शेष ६ कर्म-** १०वें गुणस्थान वाला सर्व जघन्य ब ध करता है।

उत्कृष्ट कर्मब धक- ७कर्म- सन्नी प चेन्द्रिय, पर्याप्त, जागृत, साकारोपयुक्त, मिथ्यादृष्टि, कृष्णलेशी, उत्कृष्ट स क्लिष्ट परिणामी और कुछ न्यून(मध्यम) स क्लिष्ट परिणामी नारकी देवता, देवी, कर्मभूमि तिर्यंच-तिर्यंचाणी, मनुष्य-मनुष्याणी उत्कृष्ट सातों कर्मों का ब ध करते हैं।

आयुष्य कर्म-(१) कर्मभूमि सन्नी तिर्यंच और मनुष्य(पुरुष)पर्याप्त जागृत साकारोपयुक्त मिथ्यादृष्टि परम कृष्णलेशी उत्कृष्ट स क्लिष्ट परिणामी ही उत्कृष्ट ३३ सागरोपम नरक का आयुब ध करता है। **(२)** तथा मनुष्य सम्यग्दृष्टि, शुक्ललेशी अप्रमत्त स यत विशुद्ध परिणामी भी उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम सर्वार्थसिद्ध अणुत्तर विमान का आयुष्यब ध करता है अर्थात् मनुष्य, नरक-देव दोनों का उत्कृष्ट आयुब ध करता है। **(३)** मनुष्याणी पर्याप्त जागृत सम्यग्दृष्टि शुक्ललेशी अप्रमत्त स यत उत्कृष्ट ३३ सागरोपम सर्वार्थसिद्ध अणुत्तर विमान का आयुब ध करती है, नारकी का नहीं करती है। **॥ उद्देशक-२ समाप्त ॥**

❋ पद-२४ : कर्मब ध ❋
(बाँधतो बाँधे)

प्रश्न-१ : कर्मों के स ब ध में यहाँ किन-किन विषयों का निरूपण है?

उत्तर- जीव ज्ञानावरणीय आदि किसी कर्म की मुख्यता से कर्मब ध करता है तब साथ में प्रायः आठों कर्मों में से अनेकों कर्मों का ब ध होता है। गुणस्थान की अपेक्षा इन कर्मों की स ख्या में हीनाधिकता होती है। तथा आठ कर्मों में एक आयुष्य कर्म ही ऐसा है जो जीवन में मात्र एक बार ही ब धता है। अन्य सातों कर्म प्रायः सभी जीवों के प्रतिसमय ब धते रहते हैं। तथापि गुणस्थानों के विकास से उसमें कमी होती है यथा- छट्ठे सातवें गुणस्थान वालों को जीवन में एक बार आठ कर्म का और अन्य समयों में सातों कर्म का ब ध निर तर होता रहता है। आठवें नौंवे गुणस्थान में आयुष्य कर्म ब ध नहीं होने से मात्र सात कर्म निर तर ब धते है, वहाँ आठ कर्म ब ध का विकल्प नहीं होता है। दसवें गुणस्थान में मोहनीयकर्म का ब ध भी नहीं होने से ६ कर्मों का ब ध होता है। आगे गुणस्थान-११,१२,१३ में मात्र एक वेदनीय कर्म का ही ब ध होता है उसके साथ अन्य कोई भी कर्मब ध उन गुणस्थानवर्ती जीवों के नहीं होता है। १४वें गुणस्थान में सर्व कर्म का अब ध हो जाता है। इस तरह **कर्मब ध** स ख्या की अपेक्षा ५ प्रकार के बनते हैं- **(१) सप्तविध ब धक**-आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्म बा धने वाले। **(२) अष्टविध ब धक**-सभी

कर्म बा धने वाले। (३) **छः विध ब धक**–आयु और मोह कर्म छोड़कर शेष ६ कर्म बा धने वाले। **(४) एक विध ब धक**–वेदनीय कर्म बा धने वाले। **(५) अब धक**–१४वें गुणस्थानवर्ती एव सिद्ध।

प्रश्न–२ : २४ द ड़क की अपेक्षा एक कर्म बा धते हुए कितने कर्म ब धते हैं ?

उत्तर– नारकी–देवता(बा धतो बा धे)– ज्ञानावरणीय कर्म बा धते हुए एक नारकी जीव या एक देवता सप्तविध ब धक है या अष्टविध ब धक है। अनेक नारकी–देव की अपेक्षा– (१) सभी सप्तविध ब धक है अथवा (२) बहुत सप्तविध ब धक और एक अष्टविध ब धक अथवा (३) बहुत सप्तविध ब धक और अनेक अष्टविध ब धक। इस तरह तीन भ ग है। इसी प्रकार दर्शनावरणीय आदि छ कर्म के **बा धतोबा धे** का कथन है। नारकी देवता में आयुकर्म बा धते हुए नियमा आठ कर्म का ब ध होता है।

पा च स्थावर(बा धते बा धे)– ज्ञानावरणीय कर्म बा धते हुए एक स्थावर जीव सप्तविध ब धक या अष्टविध ब धक है। अनेक की अपेक्षा सप्तविध ब धक भी बहुत और अष्टविध ब धक भी बहुत होते हैं। शेष छ कर्म बा धते हुए भी इसी तरह है। आयु बा धते नियमा अष्टविध ब धक है।

मनुष्य(बा धतो बा धे)– ज्ञानावरणीय कर्म बा धते हुए एक मनुष्य सप्तविध ब धक या अष्टविध ब धक अथवा षड़विध ब धक होता है। अनेक मनुष्य की अपेक्षा ९ भ ग होते हैं क्यों कि एक शाश्वत और दो अशाश्वत के ९ भ ग, सोलवें पद में दर्शाये अनुसार समझना। ज्ञानावरणीय के समान दर्शनावरणीय, नामकर्म, गौत्र कर्म और अ तराय कर्म का कथन है। वेदनीय कर्म बा धते हुए एक मनुष्य सप्तविध ब धक या अष्टविध ब धक या षड़ विध ब धक अथवा एक विध ब धक होता है। अनेक मनुष्यों की अपेक्षा ९ भ ग होते है क्यों कि अष्टविध ब घक और षड़विध ब धक ये दो अशाश्वत है।

मोहनीय कर्म बा धते हुए एक मनुष्य सप्तविध ब धक या अष्टविध ब धक होता है अनेक मनुष्य की अपेक्षा तीन भ ग नारकी में कहे अनुसार है। आयुष्य कर्म के साथ नियमा आठ कर्म का ब ध होता है।

समुच्चय जीव– ज्ञानावरणीय आदि छ कर्म बा धते तीन भ ग होते हैं

शेष मनुष्य के समान है। क्यों कि समुच्चय में अष्टविध ब धक **एकेन्द्रिय की अपेक्षा** शाश्वत होते हैं। अतः एक षड़विध ब धक ही अशाश्वत होता है। एक अशाश्वत से कुल तीन भ ग ही होते हैं।

मोहनीय कर्म बा धते हुए समुच्चय एक जीव सप्तविध ब धक या अष्टविध ब धक होता है। अनेक जीव की अपेक्षा सप्तविध ब धक भी बहुत और अष्टविध ब धक भी बहुत होते हैं(एकेन्द्रिय की अपेक्षा)। आयुकर्म बा धते हुए नियमा अष्टविध ब धक होते हैं।

शेष द ड़क– तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच प चेन्द्रिय, भवनपति आदि चारों जाति के देव इन सभी का आठों कर्म बा धतो बा धे नारकी के समान है। मनुष्य के सिवाय २३ द ड़क में आठवाँ आदि ऊपर के गुणस्थान नहीं होते हैं। अतः उनमें ७ या आठ दो विकल्प से ही कर्म ब ध होते हैं।

प्रश्न–३ : सात, आठ, छ, एक कर्मब धक और अब धक जीवों में शाश्वत अशाश्वत का विश्लेषण किस प्रकार है ?

उत्तर– षड़विध ब धक १०वें गुणस्थान वाला है यह गुणस्थान अशाश्वत है। एकविध ब धक में गुणस्थान ११वाँ, १२वाँ, १३वाँ यों तीन गुणस्थान है, इनमें १३वाँ गुणस्थान शाश्वत होने से एकविध ब धक शाश्वत मिलते हैं।

अष्टविध ब धक आयुष्य बा धने वाले होते है जो कि १९ द ड़क में अशाश्वत है, अतः तीन भ ग होते हैं। पा च स्थावर में अष्टविध बधक से ये भ ग नहीं बनते हैं।

दो बोल अशाश्वत होने से– शाश्वत का एक भ ग, दोनों अशाश्वत के अस योगी चार भ ग और द्विस योगी ४ भ ग। यों कुल १+४+४=९ भ ग होते हैं।

यथा मनुष्य के ९ भ ग– (१) सभी सप्तविध ब धक (२) सप्तविध ब धक बहुत, अष्टविध ब धक एक (३) सप्तविध ब धक बहुत, अष्टविध ब धक बहुत (४) सप्तविध ब धक बहुत, षड़विध ब धक एक (५) सप्तविध ब धक बहुत, षड़विध ब धक बहुत। (६) सप्तविध ब धक बहुत, अष्टविध ब धक एक, षड़विध ब धक एक (७) सप्तविध ब धक बहुत, अष्टविध ब धक एक, षड़विध ब धक बहुत (८) सप्तविध ब धक बहुत, अष्टविध ब धक बहुत, षड़विध ब धक एक (९) सप्तविध ब धक बहुत, अष्टविध ब धक बहुत, षड़विध ब धक बहुत।

पद-२५ : कर्मब ध-वेद
(बाँधतो वेदे)

प्रश्न-१ : ज्ञानावरणीय आदि एक-एक कर्म बा धता हुआ जीव कितने कर्मों का वेदन करता है ?

उत्तर- मनुष्य के सिवाय २३ द ड़क में आठ ही कर्मों का वेदन नि र तर सभी जीवों के होता है। अतः कोई भी कर्म बा धते हुए वे जीव आठों कर्मों का वेदन करते हैं। इसमें अन्य कोई विकल्प नहीं बनता है। मनुष्य में ऊपर के गुणस्थान होने से कुल तीन विकल्प बनते हैं- (१) दसवें गुणस्थान तक **आठ** कर्म का वेदन है। (२) ११वें, १२वें गुणस्थान में **सात** कर्म का वेदन है। (३) १३वें १४वें गुणस्थान में चार कर्म का वेदन है। इसलिये मनुष्य में और समुच्चय जीव में ज्ञानावरणीय आदि सात कर्म बा धते हुए जीव आठ ही कर्मों का वेदन करते हैं क्यों कि ज्ञानावरणीय आदि सातों कर्मों का ब ध दसवें गुणस्थान तक होता है वहाँ तक जीव के आठों कर्मों का उदय चालू रहता है। ११वें १२वें गुणस्थान में जीव और मनुष्य साता वेदनीय एक ही कर्म का ब ध करते हैं उस समय उनके **सात** कर्मों का उदय होता है, मोहनीय कर्म को छोड़ कर। १३वें गुणस्थान में जीव और मनुष्य एक साता वेदनीय कर्म का ब ध ही करते हुए **चार** अघाति कर्मों का वेदन करते है। इस प्रकार-(१) ज्ञानावरणीय आदि सात कर्म बा धते हुए जीव-अष्ट कर्मवेदक ही होते है। (२) वेदनीय कर्म बा धते हुए जीव सात कर्म वेदक और चार कर्म वेदक भी होते हैं।

शाश्वत-अशाश्वत- सात कर्मवेदक जीव ११वें १२वें अशाश्वत गुणस्थान में होने से वे अशाश्वत होते हैं अर्थात् कभी होते है कभी नहीं होते है। अतः उसके (सात कर्म वेदक के) तीन भ ग होते हैं, यथा- (१) कभी लोक में सभी जीव आठ कर्म वेदक और चार कर्मवेदक मिलते हैं। (२) कभी आठ कर्मवेदक और चार कर्मवेदक अनेक एव **सात** कर्मवेदक एक जीव होवे। (३) कभी आठ और चार कर्मवेदक जीव अनेक एव सात कर्मवेदक भी अनेक होवे।

आठ कर्मवेदक सर्व स सारी जीव है वे शाश्वत है और ४ कर्मवेदक जीव केवली होते हैं वे भी शाश्वत होते हैं।

पद-२६ : कर्मवेद ब ध
(वेदतो बाँधे)

प्रश्न-१ : ज्ञानावरणीय आदि कर्म का वेदन करता हुआ जीव कितने कर्मों का ब ध करता है ?

उत्तर- मोहनीय कर्म का वेदन १० वें गुणस्थान तक है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अ तरायकर्म का वेदन १२वें गुणस्थान तक है और वेदनीय, आयु, नाम और गौत्र कर्म का वेदन १४वें गुणस्थान तक है।

दसवें गुणस्थान की अपेक्षा षड़विध ब ध होता है, ११वें, १२वें गुणस्थान की अपेक्षा एक विध ब ध होता है। १३वें गुणस्थान की अपेक्षा एक विध ब ध और चौदहवें गुणस्थान की अपेक्षा अब ध होता है।

नारकी आदि १८ द ड़क- आठों ही कर्म वेदते हुए नारकी आदि एक जीव सप्तविध ब धक होता या अष्टविध ब धक। अनेक जीव की अपेक्षा अष्टविध ब धक अशास्वत होने से तीन-तीन भ ग होते हैं।

पा च स्थावर- आठों ही कर्म वेदते हुए एक जीव सप्तविध ब धक या अष्टविध ब धक होता है। अनेक जीव की अपेक्षा बहुत सप्तविध ब धक और बहुत अष्टविध ब धक होते हैं।

मनुष्य- ज्ञानावरणीय कर्म वेदते हुए एक मनुष्य सप्तविध ब धक या अष्टविध ब धक या षड़विध ब धक अथवा एक विध ब धक होता है। अनेक मनुष्यों की अपेक्षा सप्त विध ब धक शाश्वत है और शेष तीन बधक अशाश्वत है। तीन अशाश्वत के २७ भ ग होते हैं। भ गविधि सोलहवें पद के अनुसार जानना। इस प्रकार दर्शनावरणीय और अ तरायकर्म के वेदतो बा धे का वर्णन है।

वेदनीय कर्म वेदते हुए मनुष्य सप्तविध ब धक या अष्टविध ब धक या षड़विध ब धक या एकविध ब धक अथवा अब धक होता है। अनेक मनुष्य की अपेक्षा तीन ब धक अशाश्वत है। सप्तविध ब धक और एकविध

ब धक शाश्वत है। तीन अशाश्वत होने से २७ भ ग होते हैं जो १६वें पद से समझ लेना। इसी तरह आयु, नाम और गौत्र कर्म का कथन है।

मोहनीय कर्म वेदते हुए एक मनुष्य सप्तविध या अष्टविध ब धक अथवा षड़विध ब धक होता है। अनेक मनुष्य की अपेक्षा ९ भ ग होते हैं क्यों कि अष्टविध ब धक और षड़विध ब धक दो बोल अशाश्वत है।

समुच्चय जीव–मनुष्य में जहाँ २७ भ ग कहे वहाँ ९ भ ग कहना, क्यों कि समुच्चय जीव में अष्टविध ब धक एकेन्द्रिय की अपेक्षा से शाश्वत होते हैं। इसी प्रकार मनुष्य में ९ भ ग कहे वहाँ तीन भ ग होते हैं।

पद-२७ : कर्मवेद-वेदक
(वेदतो वेदे)

प्रश्न-१ : ज्ञानावरणीय आदि कर्म का वेदन करते हुए जीव उसके साथ में कुल कितने कर्मों का वेदन करते हैं ?

उत्तर– २३ द ड़क के जीव आठों कर्म वेदते हुए नियमा आठ ही कर्म वेदते हैं क्यों कि १०वें गुणस्थान तक के सभी जीवों के आठ कर्मों का उदय होता है। ११वें, १२वें गुणस्थान में मोह कर्म का उदय नहीं रहता है। इसके सिवाय सात कर्मों का उदय वहाँ रहता है। फिर १३वें,१४वें गुणस्थान में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय एव अ तराय का भी उदय नहीं रहता है, केवल चार अघातिकर्म- आयु, नाम, गौत्र, वेदनीय का उदय वहाँ अ तिम समय तक रहता है। २३ द ड़क में वे ऊपर के गुणस्थान नहीं होते हैं। अतः आठों ही कर्म वेदन का एक ही विकल्प नियमतः होता है।

समुच्चय जीव एव मनुष्य में ऊपर के सभी गुणस्थान होते हैं। अतः ज्ञानावरणीय कर्म वेदते हुए समुच्चय जीव और मनुष्य आठ वेदे या सात वेदे। जिसमें सात वेदक अशाश्वत होने से बहुवचन की अपेक्षा तीन भ ग होते हैं। दर्शनावरणीय और अ तराय कर्म भी इसी प्रकार है।

वेदनीय कर्म वेदते हुए समुच्चय जीव और मनुष्य आठ वेदे, सात वेदे या चार वेदे। बहुवचन की अपेक्षा एक सात वेदक अशाश्वत होने से तीन भ ग होते हैं। आयु, नाम और गौत्र कर्म भी इसी प्रकार है।

प्रश्न-२ : कर्म स ब धी चार पदों का पारस्परिक अ तर या स ब ध क्या है ?

उत्तर– पद २४ से २७ चार पद में कर्मब ध और वेदन की चौभ गी के एक-एक भ ग के आधार से एक एक पद में तत्स ब धी विषय का विश्लेषण किया गया है और उसी के आधार से उस उस पद का नाम भी रखा गया है–

क्रम	विषय का भ ग	नाम
२४	प्रत्येक कर्म बा धते समय अन्य कर्मब ध	बा धतो बा धे
२५	प्रत्येक कर्म बा धते समय अन्य कर्मवेदन	बा धतो वेदे
२६	प्रत्येक कर्म वेदन करते समय अन्य कर्मब ध	वेदतो बा धे
२७	प्रत्येक कर्म वेदन करते समय अन्य कर्मवेदन	वेदतो वेदे

पद-२८ : आहार
(उद्देशक-१)

प्रश्न-१ : इस पद में विषय निरूपण किस प्रकार किया गया है?

उत्तर– प्रस्तुत पद में दो उद्देशकों से विषय का विभाजन इस प्रकार है–

प्रथम उद्देशक में–जीवों के आहार, जीवों में आहार के प्रकार, आहार का समय या अ तरकाल, आहार के पुद्गलों की शुभाशुभता, सातर निर तर आहार, आहार का परिणमन स्वरूप, किसके शरीर का आहार, रोमाहार आदि, इस तरह आहार स ब धी विविध सामान्य विशेष जानकारियाँ इस उद्देशक में दी गई है।

दूसरे उद्देशक में– १३ द्वारों के आधार से जीव और २४ द ड़क में विचारणा की गई है, साथ ही एकवचन-बहुवचन से उन बोलों में आहारक अनाहारक स ब धी होने वाले भ ग भी बताये हैं। यों पूरे इस उद्देशक का मौलिक विषय एक ही है।

प्रश्न-२ : जीवों के आहार के प्रकार एव आहार का समय अथवा अ तरकाल स ब धी निरूपण किस प्रकार है ?

उत्तर– जीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति में २४ द ड़क के जीवों का

आहार स ब धी कुछ वर्णन है। वहाँ आहार के पुद्गलों के प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, वर्णादि, छः दिशाओं स ब धी एव आत्मावगाढ़ आदि २८८ प्रकार का आहार बताया गया है। यहाँ पर आहार स ब धी अन्य अनेक विषयों का वर्णन है। (१) चौवीस ही द ड़क के जीव आहारक अणाहारक दोनों तरह के होते हैं। (२) नारकी, देवता अचित्त आहारी होते हैं। मनुष्य-तिर्यंच सचित्त, अचित्त, मिश्र तीनों तरह का आहार करते हैं। (३) चोवीस द ड़क में आभोग और अनाभोग दोनों तरह का आहार है। अनाभोग आहार स्वतः होने से सभी जीवों के पूरे भव में निर तर चलता रहता है। (४) आभोग आहार इच्छा होने पर होता है। अतः उसकी काल मर्यादा है, वह इस प्रकार है, यथा- **नारकी में-** अस ख्य समय के अ तर्मुहूर्त से आहारेच्छा होती है। **पाँच स्थावर में-** आभोग आहार भी निर तर चालू रहता है। **तीन विकलेन्द्रिय में-** नरक के समान अस ख्य समय के अ तर्मुहूर्त से आहारेच्छा उत्पन्न होती है किन्तु विमात्रा से उत्पन्न होती है अर्थात् अंतर्मुहूर्त भी छोटा बड़ा निश्चित नहीं है एव कितनी बार होती है कितनी देर रहती है इत्यादि कोई **निश्चित मर्यादा** नहीं होती है।

सन्नी तिर्यंच में- जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट दो दिन (बेले)के अ तर से(युगलिक की अपेक्षा) आहारेच्छा होती है। **सन्नी मनुष्य में-** जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन दिन(तेले)के अतर से। **असुरकुमार में-** जघन्य एक दिन से, उत्कृष्ट साधिक १००० वर्ष से। **नवनिकाय और व्य तर में-** जघन्य एक दिन से, उत्कृष्ट अनेक दिनों से। **ज्योतिषी में-** जघन्य अनेक दिन से, उत्कृष्ट भी अनेक दिनों से। **वैमानिक में-** जघन्य अनेक दिन से उत्कृष्ट हजारों वर्षो से अर्थात् जितने सागरोपम की स्थिति है उतने हजार वर्षों से आहारेच्छा होती है। यथा- सर्वार्थसिद्ध देवों को ३३ हजार वर्ष से आहारेच्छा होती है। जिस तरह सातवें श्वासोश्वास पद में पक्ष कहे हैं उसी तरह यहाँ उतने हजार वर्ष समझना चाहिये।

नैरयिकों का आहार, श्वासोश्वास बार बार एव कभी कभी यों दोनों तरह से होता है अर्थात् सातर निर तर दोनों तरह का(अपर्याप्त की अपेक्षा) होता है। इसी तरह औदारिक के सभी द ड़क में समझना। देवताओं में बहुत समय से कभी-कभी आहार होता है।

प्रश्न-३ : आहार के पुद्गलों में शुभाशुभता कहां कैसी होती है ?

उत्तर- नैरयिक प्रायः अशुभ वर्णादि का अर्थात् काला, नीला, दुर्गंध वाले, तिक्त, कटुक, खुरदरा, भारी, शीत, रुक्ष, पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण कर विपरिणामित करके सर्वात्मना आहार करते हैं।

देवता प्रायः शुभ वर्णादि का अर्थात् पीला, सफेद, सुग धमय, खट्टा, मीठा, मृदु, हल्का, स्निग्ध, उष्ण पुद्गलों को ग्रहण कर इच्छित मनोज्ञ रूप में परिणमन कर आहार करते हैं, जो कि उनके सुख रूप होता है।

औदारिक द ड़कों में सामान्य रूप से अशुभ शुभ सभी वर्णादि वाले पुद्गलों का आहार होता है।

प्रश्न-४ : आहार के परिणमन स ब धी निरूपण किस प्रकार है और उसका स्पष्ट आशय क्या है ?

उत्तर- जो आहार पुद्गल लिये जाते हैं उसका स ख्यातवाँ (अस ख्यातवाँ) भाग आहार-रस-रूप में परिणत कर ग्रहण करते हैं और उन पुद्गलों का आस्वाद तो द्रव्य एव गुणों की अपेक्षा अन तवें भाग ही होता है। चौवीस द ड़क में इसी प्रकार है।

नैरयिक आहार हेतु जितने पुद्गल लेते हैं वे अपरिशेष ग्रहण करते हैं अर्थात् गिरना, बिखेरना, बचाना अथवा तो खल भाग रूप से छोड़ना आदि नहीं होता है। उसी प्रकार सभी देव एव एकेन्द्रियों के अपरिशेष आहार होता है क्यों कि कवलाहार नहीं है।

विकलेन्द्रिय एव तिर्यंच प चेन्द्रिय तथा मनुष्य के रोमाहार से तो अपरिशेष आहार ही होता है कि तु कवलाहार में ग्रहीत आहार में से स ख्यातवें भाग का आहार रस रूप में परिणत होता है एव अनेक हजारों भाग, यों ही विध्व स को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् उनका शरीर में कोई उपयोग नहीं होता। उनमें कितनों का आस्वादन और स्पर्श भी नहीं होता अर्थात् अन ता अन त प्रदेशी स्थूल पुद्गलों में अनेक पुद्गल स्क ध सूक्ष्म बादर अवगाहना में अवगाहित होते है उनकी अपेक्षा आस्वादन एव स्पर्श नहीं होता। यथा- चक्रवर्ती की दासी पूर्ण शक्ति से निर तर खर पृथ्वीकाय को पीसे तो भी कई जीवों को शस्त्र का स्पर्श भी नहीं होता

है। ऐसा ही कारण यहाँ कवलाहार के पुद्गलों के आस्वाद में समझना चाहिए।

प्रश्न-५ : ग्रहित आहार के स ख्यातवें भाग का परिणमन होता या अस ख्यातवें भाग का परिणमन होता है ?

उत्तर- यहाँ परिशेष कवलाहार के प्रस ग में परिशेष पुद्गलों के लिये स ख्यात(अनेक)हजारों भाग कहा है तो जो ग्रहण किया आहार है वह भी स ख्यातवाँ भाग ही स भव है क्यों कि अस ख्यातवाँ भाग प्रक्षेप आहार का ग्रहण करना कहा जाय तो परिशेष अनेक अस ख्यातवें भाग होगा जब कि अनेक अस ख्यातवें भाग परिशेष नहीं कहकर अनेक हजारों भाग परिशेष रखना बताया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रक्षेप आहार से ग्रहित पुद्गलों का स ख्यातवाँ भाग आहार होता है। चाहे वह हजारवाँ भाग भी हो किन्तु अस ख्यातवाँ भाग स भव नहीं है एव बुद्धिगम्य भी नहीं है। अतः यहाँ **"अ"** लिपिदोष या भ्राति से प्रक्षिप्त समझना चाहिये।

व्यवहार से भी कोई समझना चाहे तो प्रक्षेप आहार का स ख्यातवाँ भाग शरीर में आहार रूप में काम आना उपयुक्त लगता है। अस ख्यातवें भाग ही यदि शरीर के काम आवे तो जो औदारिक शरीर की वृद्धि होती हुई प्रत्यक्ष दिखाई देती है वह होना भी स भव नहीं हो सकता क्यों कि अस ख्यातवें भाग का आहार एक महिने में ३०० बार भी शरीर में आवे तो वह शरीर की वृद्धि एक ग्राम जितनी भी नहीं कर सकता है। अतः अस ख्यातवें भाग के पाठ को यहाँ अशुद्ध समझना चाहिये एव **स ख्यातवें भाग** ऐसा पाठ सुधार कर अर्थ परमार्थ समझना चाहिये । इसी आशय अनुप्रेक्षण से प्रस्तुत प्रकरण में स ख्यातवें भाग ही कहा है।

प्रश्न-६ : इस उद्देशक में आहार के स ब ध में अन्य कौन-कौन सी जानकारियाँ दी गई है ?

उत्तर- इन परिशेष हजारों भाग वाले पुद्गलों में घ्राण के अविषयभूत अल्प होते उससे रसना के अविषय भूत होने वाले अन त गुण और उससे स्पर्श के अविषयभूत होने वाले अन तगुण होते हैं। बेइन्द्रिय में घ्राण का विषय नहीं कहना, तेइन्द्रिय चौरेन्द्रिय प चेन्द्रिय में समझना।

ये आहार रूप ग्रहण किये पुद्गल शरीर पने अर्थात् अग उपाग इन्द्रियों के रूप में परिणत हो जाते हैं। नारकी में अशुभ और दुःख रूप

में, देवताओं में शुभ और सुख रूप में और मनुष्य, तिर्यंच में सुख-दुःख विभिन्न रूपों में विमात्रा में परिणत हो जाते हैं।

सभी जीव पूर्व भाव की अपेक्षा एकेन्द्रिय से लेकर प चेन्द्रिय के शरीर के त्यक्त पुद्गलों का आहार करते हैं और वर्तमान भाव की अपेक्षा स्वय का परिणामित आहार करने से एकेन्द्रिय **एकेन्द्रिय के** शरीर का ही आहार करते हैं यावत् प चेन्द्रिय **प चेन्द्रिय** के शरीर का ही आहार करते हैं।

नैरयिकों के और एकेन्द्रिय के रोमाहार एव ओजाहार होता है। देवों के रोमाहार ओजाहार एव मणभक्खी आहार होता है। विकलेन्द्रिय आदि शेष सभी के रोमाहार ओजाहार और प्रक्षेपाहार (कवलाहार) होता है। **॥ उद्देशक-१ समाप्त ॥**

प्रश्न-७ : १३ द्वारों से आहारक अनाहारक का निरूपण किस प्रकार है ?

उत्तर- २४ द ड़क के जीव तो आहारक अणाहारक दोनों प्रकार के होते हैं, फिर भी दृष्टि, कषाय, स यत, भवी, वेद आदि के आहारक अनाहारक के बोध हेतु यहाँ १३ द्वारों से आहारक अनाहारक की विचारणा की गई है। साथ ही २४ द ड़क पर भी एक वचन बहुवचन से वर्णन किया गया है।

(१) जीव-समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय जीव आहारक भी बहुत होते हैं एव अणाहारक भी बहुत होते हैं। शेष २३ द ड़क में तीन भ ग होते हैं, अणाहारक अशाश्वत होने से। सिद्ध सभी अणाहारक ही होते हैं। (एक वचन में सर्वत्र स्वतः समझ लेना कि आहारक है या अनाहारक)।

(२) भवी- भवी, अभवी दोनों में समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय प्रथम द्वार के समान एक भ ग और २३ द ड़क में तीन भ ग आहारक अनाहारक से होते हैं। नो भवी नो अभवी नियमा अणाहारक होते हैं।

(३) सन्नी-सन्नी जीव और १६ द ड़क(एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय के आठ द ड़क छोड़कर)आहारक अणाहारक से तीन भ ग होते हैं।

असन्नि- जीव और एकेन्द्रिय में एक भ ग। विकलेन्द्रिय प चेन्द्रिय में तीन भ ग। नारकी, भवनपति, व्य तर एव मनुष्य में असन्नि का बोल ही

अशाश्वत है, अतः ६ भ ग होते हैं। अनेक असन्नि की पृच्छा होने से अस योगी भ ग में वे अनेक(सभी) असन्नि या तो आहारक होते हैं या अनाहारक होते हैं। द्विस योगी में ४ भ ग एक-अनेक से बनते हैं । यों अस योगी २ और द्विस योगी ४ कुल छः भ ग इस प्रकार है-(१) सभी आहारक (२) सभी अणाहारक (३)आहारक एक अणाहारक एक (४) आहारक एक अणाहारक अनेक (५) आहारक अनेक अणाहारक एक (६) दोनों ही अनेक। **नो सन्नी** नो असन्नि मनुष्य में तीन भ ग। सिद्ध में सभी अणाहारक।

(४) लेश्या- जिस लेश्या में एकेन्द्रिय के सिवाय **जितने द ड़क** होते हैं उनमें बहुवचन की अपेक्षा तीन भ ग होते हैं।

जीव और एकेन्द्रिय में सलेशी एव कृष्णादि **तीन लेश्या** में एक भ ग होता है। **तेजोलेश्या** में एकेन्द्रिय(पृथ्वी,पानी,वनस्पति)में छः भग (असन्निवत्) । तेजो आदि तीनों शुभ लेश्या में समुच्चय जीव में भी तीन भ ग होते हैं, क्यों कि ५ स्थावर में ये लेश्याए नहीं होती । अलेशी सभी अनाहारक ही होते हैं।

(५) दृष्टि- सम्यग्दृष्टि जीव और १६ द ड़क में तीन भ ग। विकलेन्द्रिय में छ भ ग। मिथ्यादृष्टि जीव एकेन्द्रिय में एक भ ग। शेष सभी में तीन भग। मिश्र दृष्टि के १६ द ड़क सभी नियमा आहारक होते हैं।

(६) स यत-अस यत जीव और एकेन्द्रिय में एक भ ग। १९ द ड़क में तीन भ ग। स यतास यत जीव, मनुष्य और तिर्यंच प चेन्द्रिय आहारक ही होते हैं। स यत जीव और मनुष्य आहारक अनाहरक दोनों होते है (केवली की अपेक्षा) अतः उसमें तीन भ ग। नो स यत नो अस यत नो स यतास यत जीव और सिद्ध भगवान अनाहारक ही होते हैं।

(७) कषाय- समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय में सकषायी एव क्रोधी, मानी, मायी, लोभी सब में एक भ ग। शेष सभी द ड़क में तीन तीन भग है। पर तु नारकी में मान, माया, लोभ में छ भ ग होते हैं और देवता में क्रोध, मान, माया में ६ भ ग होते हैं अर्थात् देवता नारकी में तीन-तीन कषाय अशाश्वत है। अकषायी **जीव** में एक भ ग, **मनुष्य** में तीन भग। **सिद्ध** अणाहारक ही होते हैं।

(८) ज्ञान- सज्ञानी, मति, श्रुत, अवधिज्ञानी में जितने द ड़क है उसमें तीन भ ग होते हैं किन्तु विकलेन्द्रिय में छ भ ग होते हैं। सनाणी(सज्ञानी) जीव में एक भ ग होता है(केवल ज्ञान की अपेक्षा आहारक अणाहारक दोनों सदा बहुत होते हैं) ।

मनःपर्यव ज्ञानी नियमा आहारक होते हैं। केवल ज्ञानी मनुष्य में आहारक अणाहारक के तीन भ ग। जीव में आहारक अणाहारक का एक भ ग। सिद्ध अणाहारक ही होते हैं।

अज्ञान- अज्ञानी, मतिश्रुत अज्ञानी जीव एकेन्द्रिय में एक भ ग। शेष सभी में तीन भ ग। विभ ग ज्ञानी में मनुष्य, तिर्यंच आहारक ही होते हैं। नारकी देवता के १४ द ड़क में तीन भ ग।

(९) योग- सयोगी, काययोगी में जीव एकेन्द्रिय में एक भ ग, शेष सभी में तीन भ ग, वचनयोगी मनयोगी आहारक ही होते हैं। अयोगी अणाहारक ही होते हैं।

(१०) उपयोग- दोनों उपयोग में जीव और एकेन्द्रिय के एक भ ग। शेष में तीन भ ग होते हैं। सिद्ध अणाहारक ही होते हैं।

(११)वेद- सवेदी और नपु सकवेदी जीव एकेन्द्रिय में एक भ ग, शेष सभी में तीन भ ग। स्त्रीवेद पुरुषवेद सभी द ड़क में तीन भ ग। अवेदी जीव में एक भ ग। मनुष्य में तीन भ ग। सिद्ध अणाहारक ही होते हैं।

(१२) शरीर- सशरीरी एव तैजस कार्मण शरीरी जीव और एकेन्द्रिय में एक भ ग, शेष सभी द ड़क में तीन भ ग।

औदारिक, वैक्रिय, आहारक तीनों शरीर आहारक ही होते हैं किन्तु औदारिक शरीर मनुष्य में केवली समुद्घात की अपेक्षा आहारक, अणाहारक दोनों होते हैं, उसमें तीन भ ग होते हैं।

(१३) पर्याप्ति- छहों पर्याप्ति के पर्याप्त सभी आहारक ही होते हैं, मनुष्य में केवली समुद्घात की अपेक्षा आहारक-अनाहारक दोनों होते हैं उसमें तीन भ ग होते हैं। जिस द ड़क में जितनी पर्याप्ति हो वही समझना। आहार पर्याप्ति के अपर्याप्त सभी द ड़क में अणाहारक होते हैं।

शेष पाँच पर्याप्ति के अपर्याप्त आहारक अणाहारक दोनों होते हैं

उसमें एकेन्द्रिय में एक भ ग। नारकी, देवता और मनुष्य में ६ भ ग । शेष में तीन भ ग होते हैं। समुच्चय जीव के भाषा, मनपर्याप्ति के अपर्याप्त में तीन भ ग होते हैं, तीन पर्याप्ति के अपर्याप्त में एक भ ग होता है और आहार पर्याप्ति का अपर्याप्त अणाहारक ही होता है ।

प्रश्न-८ : भ ग बनने स ब धी विशेष ज्ञातव्य क्या है ?

उत्तर- (१) एक जीव में कोई भ ग नहीं बनते हैं और उसमें आहारक या अनाहारक या दोनों में से जो भी होता है वह कहा जाता है। अतः यहाँ उसे सभी द्वारों में बार बार नहीं कहा गया है स्वतः समझने का स केत किया है।

(२) बहुत जीव की अपेक्षा एकेन्द्रिय जिस किसी बोल में होता है या समुच्चय जीव के साथ होता है तो एक भ ग बनता है । वह जिस बोल में या जीव के साथ नहीं होता है तो प्रायः तीन भ ग बनते हैं। क्वचित कहीं नहीं बनते वह ऊपरोक्त वर्णन में ध्यान से देख लें।

(३) तेरह द्वारों का जो भेद स्वय अशाश्वत होता है वहाँ ६ भ ग बनते हैं। उदाहरण ऊपरोक्त वर्णन में देखें।

(४) जो बोल केवल आहारक ही होता है या केवल अणाहारक ही होता है उसके एकवचन या बहुवचन में कहीं भी भ ग नहीं बनते हैं।

(५) तेरह द्वार का कोई भी भेद कितने द ड़क में होता है यह जीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति से जान कर याद रखना चाहिये।

❋ पद-२९ : उपयोग ❋

प्रश्न-१ : उपयोग कितने कहे हैं, और द ड़कों में किस प्रकार पाये जाते हैं ?

उत्तर- उपयोग के दो प्रकार है, यथा- १.साकार उपयोग २. अणाकार उपयोग। साकारोपयोग के ८ भेद- ५ ज्ञान, ३ अज्ञान। अणाकारोपयोग के चार भेद है- ४ दर्शन।

द ड़कों में उपयोग-

नारकी में	९	३ ज्ञान	३ अज्ञान	३ दर्शन
देवता में	९	३ ज्ञान	३ अज्ञान	३ दर्शन

पाँच स्थावर में	३	२ अज्ञान	१ दर्शन	-
तीन विकलेन्द्रिय में	५/६	२ ज्ञान	२ अज्ञान	दर्शन १/२
तिर्यंच प चेन्द्रिय में	९	३ ज्ञान	३ अज्ञान	३ दर्शन
मनुष्य में	१२	५ ज्ञान	३ अज्ञान	४ दर्शन
विशेष ज्ञातव्य-जब जीव ज्ञान अज्ञान के उपयोग में उपयुक्त होता है तब साकारोपयुक्त या साकारोपयोग वाला होता है एव जब दर्शन के उपयोग में उपयुक्त होता है तब अणाकार उपयोग वाला होता है।				

❋ पद-३० : पश्यता ❋

प्रश्न-१ : पश्यता का स्वरूप क्या है और वे २४ द ड़क में कितने पाये जाते हैं ?

उत्तर- उपयोग के समान ही **पश्यता** का वर्णन है अर्थात् पश्यता के भी दो प्रकार है- १.साकार पश्यता २. अणाकार पश्यता। साकार पश्यता के ६ भेद है- ४ ज्ञान २ अज्ञान। अनाकार पश्यता के ३ भेद है-३ दर्शन।

मति ज्ञान, मति अज्ञान और अचक्षुदर्शन ये तीन उपयोग पश्यता में नहीं होते हैं। ये तीनों उपयोग बुद्धि ग्राह्य है। अतः पश्यता में इनका समावेश नहीं होता है। श्रुतज्ञान, श्रुत अज्ञान, चक्षुदर्शन ये इन्द्रिय ग्राह्य होने से एव शेष ६ ज्ञान दर्शन आत्म प्रत्यक्षी भूत होने से उन्हें पश्यक कहा गया है।

द ड़को में पश्यत्ता :-

देवता, नारकी और तिर्यंच प चेन्द्रिय में	६	२ ज्ञान, २ अज्ञान, २ दर्शन
मनुष्य में	९	४ ज्ञान, २ अज्ञान, ३ दर्शन
पाँच स्थावर में	१	श्रुत अज्ञान
बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय में	२	श्रुतज्ञान, श्रुत अज्ञान
चौरेन्द्रिय में	३	श्रुतज्ञान, श्रुत अज्ञान, चक्षु दर्शन

विशेष ज्ञातव्य- ज्ञानोपयोग वाले साकार पश्यता कहे जाते हैं और दर्शनोपयोग वाले अनाकार पश्यत्ता कहे जाते हैं।

प्रश्न-२ : केवलज्ञानी के और छद्मस्थ के उपयोग में क्या विशेषता-भिन्नता होती है ?

उत्तर- जीवों को जब ज्ञानोपयोग अर्थात् साकारोपयोग होता है उस समय अणाकारोपयोग नहीं होता है। जिस समय अणाकारोपयोग होता है उस समय साकारोपयोग नहीं होता है अर्थात् जीव में ज्ञान और दर्शन एक साथ में क्षयोपशम भाव में रह सकते हैं किन्तु उन दोनों में से उपयोग एक का ही होता है।

ज्ञानोपयोग-साकारोपयोग से जानना होता है और दर्शनोपयोग-अनाकार उपयोग से देखना होता है। अतः जानने और देखने रूप उपयोग भी भिन्न-भिन्न समय में होता है। अतः छद्मस्थ और केवली सभी के एक समय में एक उपयोग ही होता है साकार उपयोग अथवा अणाकार उपयोग।

केवलज्ञानी प्रत्येक पदार्थ के स्वरूप को उसके नाम अर्थ भावार्थ आकारों से, युक्तिपूर्वक, उपमा एव दृष्टात पूर्वक, वर्ण ग ध रस स्पर्श एव स स्थानों से, ल बाई-चौड़ाई आदि मापों से या प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से जानते देखते हैं। जिस समय देखने रूप दर्शनोपयोग अनाकारोपयोग में होते हैं उसके अन तर समय में ज्ञानोपयोग-साकारोपयोग में होते हैं। उपयोग के समान दोनों पश्यता भी समझ लेना चाहिये।

छद्मस्थों के दोनों उपयोग जघन्य एव उत्कृष्ट अस ख्य समय के अ तर्मुहूर्त वाले होते हैं और केवल ज्ञानी के एक-एक समय के ही दोनों उपयोग होते हैं। दोनों उपयोगकाल का अ तर्मुहूर्त भी अत्य त छोटा समय है जिसे छद्मस्थ बुद्धि से समझ नहीं सकते और दोनों उपयोग एक साथ जैसा आभास होता है। तो फिर एक-एक समय के केवलियों के उपयोग की क्रमिकता का आगम कथन तो पूर्ण श्रद्धा का ही विषय है। उसे युगपत मानने में नहीं उलझना चाहिये।

पद-३१ : सन्नी

प्रश्न-१ : सन्नी-असन्नि के विषय में यहाँ क्या निरूपण है ?

उत्तर- सन्नी-असन्नि इन दो शब्दों से जगत के सभी जीवों का ग्रहण

हो जाता है। (१) जिन जीवों के **मन** होता है वे **सन्नी** होते हैं, (२) जिनके मन नहीं होता वे **असन्नि** होते हैं। अथवा असन्नि से आकार उत्पन्न होने वाले और मनःपर्याप्ति पूर्ण नहीं किये हुए नारकी देवता भी **असन्नि** कहे गये हैं। जो गर्भज या औपपातिक होते हैं वे सन्नी है।

चौवीस द ड़क में-

नारकी भवनपति व्य तर में	सन्नी एव असन्नि
मनुष्य एव तिर्यंच प चेन्द्रिय में	सन्नी एव असन्नि
ज्योतिषी वैमानिक में-	सन्नी है, असन्नि नहीं
पाँच स्थावर तीन विकलेन्द्रिय में	असन्नि है, सन्नी नहीं
नो सन्नी नो असन्नि में	जीव, मनुष्य और सिद्ध

पद-३२ : स यत

प्रश्न-१ : स यत स ब धी यहाँ क्या कथन किया गया है ?

उत्तर- श्रमण, मुनि, स यत कहे जाते हैं। श्रावक-श्रमणोपासक, स यतास यत कहलाते है, शेष सभी अस यत होते हैं।

२४ द ड़क में- २२ द ड़क के जीव अस यत है। सन्नी तिर्यंच प चेन्द्रिय अस यत और स यतास यत दोनों तरह के होते हैं। मनुष्य में कोई स यत होते हैं, कोई अस यत होते हैं और कोई स यतास यत भी होते हैं। सिद्ध भगवान नो स यत नो अस यत नो स यतास यत होते हैं।

विशेष ज्ञातव्य- यह जानने की तत्त्वदृष्टि से कथन किया जाता है किन्तु कोई देव या विशिष्ट व्यक्ति प्रत्यक्ष हो उसे(यह या तूं) **अस यत है,** ऐसे निष्ठुर वचन नहीं कहे जाते। ऐसे निष्ठुर वचन बोलने के लिये भगवती सूत्र में निषेध किया गया है।

स यत के ५ भेद सामायिक आदि का विस्तृत विश्लेषण भगवती श.२५, उद्दे.७ में किया गया है। प्रश्नोत्तर भाग-४ देखें।

❋ पद-३३ : अवधि ❋

प्रश्न-१ : अवधिज्ञान के स ब ध में इस पद में किन विषयों का निदर्शन किया गया है ?

उत्तर- न दी सूत्र में पाँच ज्ञान स ब धी विस्तृत वर्णन है। नारकी तथा वैमानिक देवता के अवधिज्ञान का विषय जीवाभिगम सूत्र में है तत्स ब धी जानकारी के लिये वहीं अवधिज्ञान प्रकरण देखना चाहिये।

नारकी में-भव प्रत्ययिक अवधि होता है। जघन्य आधा कोश उत्कृष्ट चार कोश क्षेत्र सीमा वाला होता है। त्रिकोन नावा के आकार वाला अवधि क्षेत्र होता है। आभ्य तर अवधि होता है, बाह्य नहीं होता है। देश अवधि होता है, सर्व अवधि नहीं होता है। आनुगामिक अवधि होता है। अपड़िवाई(जीवन भर रहने वाला)और अवस्थित(नहीं बढ़ने वाला नहीं घटने वाला) अवधि होता है।

असुरकुमार में-भवप्रत्ययिक अवधि होता है। जघन्य २५ योजन उत्कृष्ट अस ख्य द्वीप समुद्र क्षेत्र सीमा वाला होता है। पल्लक के आकार चौकोन होता है। शेष वर्णन नरक के समान है।

नवनिकाय एव व्य तर में- उत्कृष्ट अवधि क्षेत्र स ख्याता द्वीप समुद्र का होता है। शेष वर्णन असुरकुमार के समान है ।

तिर्यंच प चेन्द्रिय में- जघन्य अगुल के अस ख्यातवें भाग का उत्कृष्ट अस ख्य द्वीप समुद्र प्रमाण अवधिज्ञान होता है । क्षायोपशमिक अवधि, बाह्य अवधि, विविध आकारों में और देश अवधि तिर्यंच में होता है। अनुगामिक, अननुगामिक, हायमान, वर्धमान, पड़िवाई, अपड़िवाई, अवस्थित, अनवस्थित इत्यादि दोनों प्रकार के अवधिज्ञान तिर्यंच प चेन्द्रिय में होते हैं।

मनुष्य में- क्षायोपशमिक अवधि होता है। जिसमें जघन्य अ गुल के अस ख्यातवें भाग, उत्कृष्ट अस ख्यात लोक ख ड़ जितना सीमा क्षेत्र जानने की क्षमता होती है। शेष तिर्यंच के समान। परमावधि ज्ञान मनुष्य के होता है अर्थात् देश सर्व, आभ्य तर बाह्य दोनों प्रकार के अवधि ज्ञान मनुष्य में होते हैं।

ज्योतिषी में- जघन्य स ख्याता द्वीप समुद्र और उत्कृष्ट भी स ख्याता द्वीपसमुद्र देखने की क्षमता वाला अवधिज्ञान होता है, शेष असुरकुमार के समान।

वैमानिक में- जघन्य अगुल के अस ख्यातवें भाग और उत्कृष्ट लोक नाल(त्रस नाल)।

स स्थान-वाणव्य तरों का पटह के आकार, ज्योतिषी का झालर के आकार अवधिज्ञान होता है। १२ देवलोक का ऊर्ध्व मृद ग। नव ग्रैवेयक में- पुष्पच गेरी। अणुत्तर विमान में जवनालिका(लोकनालिका) ये अवधि क्षेत्र के आकार है।

नोट- अवधिज्ञान स ब धी अवशेष जानकारी के लिये न दीसूत्र का एव जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति का अध्ययन करे ।

❋ पद-३४ : परिचारणा ❋

प्रश्न-१ : परिचारणा किसे कहते हैं ? इसके कितने प्रकार दर्शाये गये है ?

उत्तर- परिचारणा शब्द का अर्थ-मैथुन सेवन, काम क्रीड़ा, रति, विषयभोग आदि है। प्रविचारणा भी इसका पर्याय शब्द जैन साहित्य में (तत्त्वार्थ सूत्र में)प्रचलित है। आहार, अध्यवसाय एव सम्यक्त्व-मिथ्यात्व का भी परिचारणा गत परिणामों में असर पड़ता है।

आहार से शरीर पुष्ट होता है, शरीर में ही विषय वासना की उत्पत्ति होती है। परिणामों में मोह भावों की वृद्धि होने से काम भोग का प्रयत्न होता है। परिचारणा करते हुए भी मिथ्यात्वी और सम्यग्दृष्टि की आसक्ति में अ तर होता है।

औदारिक द ड़को में परिचारणा के बाद विविध क्रियाएँ होती है अर्थात् स सारिक कृत्य वृद्धि, गर्भाधान, स तति स रक्षण आदि क्रियाएँ बढ़ती है। वैक्रिय द ड़कों में पहले विशेष शरीर, हजारों रूप आदि बनाते हैं फिर परिचारणा करते हैं। अतः पहले विक्रिया होती है। परिचारणा के बाद उनके कोई क्रिया-विक्रिया नहीं होती।

परिचारणा के पाँच प्रकार है-(१) कायपरिचारणा- स्त्री पुरुष का मैथुन सेवन (२) स्पर्श परिचारणा- दोनों लि गी का परस्पर आलि गन आदि (३) रूप परिचारणा- परस्पर दृष्टिपात, नृत्य आदि अवलोकन (४)शब्द परिचारणा-गीत, हास्य आदि के शब्द श्रवण (५) मन परिचारणा- परस्पर मनोभावों का आदान-प्रदान। सन्नी तिर्यंच और मनुष्यों के ये पाँचों परिचारणा है, नारकी में आका क्षा मात्र से पाँचों है।

एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय में प्रविचारणा है कि तु विक्रिया पहले या पीछे नहीं है। प्रविचारणा भी अव्यक्त स ज्ञा से है।

देवताओं में भवनपति व्य तर ज्योतिषी पहला दूसरा देवलोक में मनुष्य के समान मैथुन सेवन रूप **काय परिचारणा** है। वीर्य पुद्गल भी देवी के शरीर में प्रविष्ट होकर उसके इद्रिय, शरीर रूप में परिणमन होते हैं किन्तु गर्भाधान उनके नहीं होता है।

देव को परिचारणा की इच्छा होती है तो देवियाँ रूप शृ गार आदि करके उपस्थित होती है।

प्रश्न-२ : देवियाँ दूसरे देवलोक तक ही होती है तो आगे के देवलोक में देवों को प्रविचारणा किस प्रकार होती है ?

उत्तर- तीसरे देवलोक से १२ वें देवलोक तक देवियाँ नहीं होती है तथापि तीसरे चौथे देवलोक में स्पर्श परिचारणा होती है, पाँचवे छट्ठे देवलोक में रूप परिचारणा होती है, सातवें आठवें देवलोक में शब्द परिचारणा होती है।

इन देवों के परिचारणा की इच्छा होने पर पहले-दूसरे देवलोक से अपरिग्रहिता देवियाँ वहाँ पहुँच जाती है। फिर ऊपरोक्त कथनानुसार वे देव आसक्तियुक्त अ गों के स्पर्श मात्र से या रूप देखने में तल्लीन होकर या शब्द श्रवण में दत्तचित होकर मैथुन भावों की तृप्ति कर लेते हैं। ऐसा करते हुए भी उनके शरीर से पुद्गल देवी के शरीर में पहुँच जाते हैं और वे उसके शरीर की पुष्टि रूप बनते हैं।

मन परिचारणा वाले ९ वें, १०वें, ११वें, १२वें देवलोक के देवों के जब मन परिचारणा की इच्छा होती है तब देवी वहाँ नहीं जाती है किन्तु अपने स्थान में रहकर ही विक्रिया, विभूषा एव मनोपरिणामों से

उस रूप में परिणत होती है। इस प्रकार वे दोनों परिचारणा का अनुभव मन से ही करके इच्छापूर्ति कर लेते हैं ऐसा करने पर भी देव शरीर पुद्गलों का देवी शरीर में स क्रमण एव परिणमन हो जाता है।

इस प्रकार की विभिन्न परिचारणाओं से ही उनके वेद मोह की उपशांति हो जाती है। नवग्रैवेयक एव अणुत्तर देवों के किसी भी प्रकार की परिचारणा या स कल्प नहीं होते हैं।

अल्पाबहुत्व-अपरिचारणा वाले देव अल्प है, मन परिचारणा वाले अस ख्य गुणा, शब्द परिचारणा वाले अस ख्यात गुणा, रूप परिचारणा वाले अस ख्यात गुणा, स्पर्श परिचारणा वाले अस ख्यात गुणा, काय परिचारणा वाले देव अस ख्य गुणा है।

पद-३५ : वेदना

प्रश्न-१ : वेदनाओं का स्वरूप इस पद में किस प्रकार दर्शाया गया है ?

उत्तर-शीत, उष्ण एव शीतोष्ण तीन प्रकार की वेदना सभी (२३)द ड़कों में अल्पाधिक होती है। नारकी में-पहली दूसरी तीसरी में उष्ण, चौथी पाँचवी में दोनों। छट्ठी, सातवीं में शीत वेदना है।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव की वेदना २४ ही द ड़क में है।

शारीरिक, मानसिक एव उभय तीन प्रकार की वेदना १६ द ड़क में हैं। एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय में केवल शारीरिक वेदना है।

साता, असाता, मिश्र तीन प्रकार की वेदना २४ ही द ड़क में हीनाधिक होती है। यह उदय प्रमुखा वेदना है।

दुःखा, सुखा, अदुःखासुखा, यह तीन प्रकार की वेदना परोदीरित निमित्त प्रमुख है। तीनों वेदना २४ ही द ड़क में होती है।

अभ्युपगमिकी=स्वेच्छा से स्वीकार की जाने वाली केशलोच आदि, औपक्रमिकी=अनिच्छा से अचानक आ जाने वाली। यथा- गिर जाने आदि से होने वाली, ये दोनों प्रकार की वेदना तिर्यंच प चेन्द्रिय और मनुष्य में होती है, शेष सभी द ड़क में केवल एक औपक्रमिकी वेदना होती है।

निदा=व्यक्त वेदना, अनिदा=अव्यक्त वेदना। ये दोनों प्रकार की वेदना नारकी में होती है क्यों कि वहाँ सन्नी असन्नि दोनों होते हैं। इसी प्रकार भवनपति व्य तर में भी दोनों होती है। ज्योतिषी वैमानिक में भी दोनों वेदना होती है। समदृष्टि मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से। पाँच स्थावर तीन विकलेन्द्रिय में एक अनिदा वेदना ही होती है। मनुष्य तिर्यंच प चेन्द्रिय में दोनों वेदना होती है।

❋ पद-३६: समुद्घात ❋

प्रश्न-१ : समुद्घात किसे कहते हैं और सात समुद्घातों का स्वरूप क्या है ?

उत्तर- मूल शरीर से कुछ आत्मप्रदेशों का अल्प समय के लिये बाहर निकलना। आत्म प्रदेशों की इस प्रकार की प्रक्रिया सात प्रकार के प्रस गों से होती है। अतः समुद्घातें सात प्रकार की कही गई है।

१. वेदनीय समुद्घात-अशाता वेदनीय की तीव्रता से आत्मप्रदेश अवगाहित क्षेत्र से बाहर परिस्प दित होते हैं उस समय जो वह आत्मा की प्रक्रिया होती है उसे वेदनीय समुद्घात कहते हैं।

२. कषाय समुद्घात-क्रोध, मान, माया या लोभ किसी भी कषाय की तीव्रता से आत्मप्रदेश शरीर अवगाहित क्षेत्र से बाहर परिस्प दित होते हैं, इस प्रक्रिया को कषाय समुद्घात कहते हैं।

३. मारणा तिय समुद्घात-मरण समय में भावी जन्म स्थान तक आत्मप्रदेशों का जाना एव वापिस आना रूप आत्म प्रक्रिया मारणा तिक समुद्घात कही जाती हैं।

४. वैक्रिय समुद्घात-नारकी, देवता, मनुष्य और तिर्यंच जो कोई भी उत्तर वैक्रिय करते हैं तब उन्हें पहले समुद्घात करनी पड़ती है। वही वैक्रिय समुद्घात है। अर्थात् वैक्रिय शरीर बनाने के लिये उसके योग्य पुद्गल ग्रहण करने हेतु आत्मप्रदेशों को ल बाई-ऊँचाई में हजारो योजन बाहर फैलाया जाता है। फिर उस शरीर प्रमाण चौड़ाई और हजारों योजन ल बाई वाले अवगाहित क्षेत्र में रहे हुए वैक्रिय वर्गणा के पुद्गल

ग्रहण किये जाते हैं। इस प्रकार आत्मप्रदेशों की शरीर से बाहर निकलने की यह प्रक्रिया वैक्रिय समुद्घात कही जाती हैं।

५. तैजस समुद्घात-शीत या उष्ण तेजोलब्धि वाला किसी का उपकार या अपकार करने के परिणामों से उक्त दोनों प्रकार के पुद्गल ग्रहण करके प्रक्षेप करता है उन पुद्गलों को विशेष मात्रा में ग्रहण करने एव छोड़ने हेतु आत्मप्रदेशों के शरीर अवगाहित क्षेत्र से बाहर निकलने रूप जो क्रिया होती है वह तैजस समुद्घात है।

६. आहारक समुद्घात-शका का समाधान एव जिज्ञासा की स तुष्टि के लिये जो एक नया लघु शरीर बनाकर करोड़ों माइल दूर भेजा जाता है, वह आहारक शरीर होता है। उस आहारक शरीर को बनाने में और भेजने में आत्मप्रदेश कुछ बाहर निकाले जाते हैं और फिर कुछ आत्मप्रदेश उस नूतन शरीर के साथ रहते हुए इच्छित स्थान में जाते हैं। आत्मप्रदेशों की शरीर अवगाहित क्षेत्र से बाहर निकलने रूप यह स पूर्ण क्रिया आहारक समुद्घात हैं।चौदह पूर्व के ज्ञानी आहारक लब्धि स पन्न श्रमण ही यह समुद्घात कर सकते हैं, अन्य कोई नहीं कर सकता ।

७. केवली समुद्घात-मोक्ष जाने के निकट पूर्व में अघातिकर्मों की विषमरूपता को सम रूप में करने हेतु आत्मप्रदेश स पूर्ण लोक प्रमाण प्रदेशों में व्याप्त हो जाते हैं। आत्मप्रदेशों की और लोकप्रदेशों की स ख्या समान है। अतः यह जीव के आत्मप्रदेशों की सर्वोत्कृष्ट अवगाहना होती है। औदारिक शरीर तो इस समय भी अपनी अवगाहना में ही रहता है, केवल आत्मप्रदेश ही निकलते हैं। इस प्रकार आठ समय के लिये आत्म-प्रदेशों के बाहर निकलने रूप यह प्रक्रिया है, इसे ही केवली समुद्घात कहा गया है।

प्रश्न-२ : समुद्घातों में समय कितना लगता है और केवली समुद्घात के आठ समय की प्रक्रिया किस प्रकार है ?

उत्तर- प्रार भ की ६ समुद्घात में अस ख्य समय का अतर्मुहूर्त रूप समय लगता है। केवली समुद्घात में आठ समय लगते हैं जिसकी प्रक्रिया इस प्रकार है- केवली समुद्घात की प्रक्रिया में जीव पहले समय शरीर की चौड़ाई-मोटाई प्रमाण ऊपर-नीचे लोका त तक आत्मप्रदेशों को फैलाता है।

दूसरे समय में शरीर की चौड़ाई-मोटाई प्रमाण उस द ड़ रूप प्रदेशों को पूर्व-पश्चिम और उत्तर दक्षिण एक-एक भित्ति रूप(कपाट रूप) में विस्तृत करता है। तीसरे समय में उन भित्ति रूपस्थ आत्मप्रदेशों को दोनों बाजू में लोका त तक विकसित करता है जिससे आत्मप्रदेश पूरे लोक क्षेत्र में अर्थात् सम किनारे वाले घनीकृत लोक रूप में व्याप्त हो जाते हैं। किन्तु लोक विषम किनारे वाले घन रूप होने से उसके वे छोटे खुणे निष्कु ट रूप क्षेत्र अव्याप्त रह जाते हैं जो चौथे समय में आपूरित हो जाते हैं। इस प्रकार स पूर्ण लोक में पूर्ण रूपेण आत्मप्रदेशों को व्याप्त होने में कुल चार समय लगता है और इसी क्रम से आत्मप्रदेशों को पुनः स कुचित (साहरण) करने में भी चार समय लगते हैं।

इस तरह केवल एक समय(चौथे समय) ही आत्मप्रदेशों की स पूर्ण लोक प्रमाण अवगाहना या सर्वोत्कृष्ट अवगाहना होती है एव अपेक्षा से अर्थात् **खुणो निष्कुटों के रिक्त रहने को गोण** कर दिये जाने की अपेक्षा तीन समय (तीसरे, चौथे और पाँचवें समय) की लोक प्रमाण अवगाहना होती है इन तीनों समयों में आत्मप्रदेश शरीर में कम और बाहर अत्यधिक होते हैं। इसी कारण इन तीन समयों में जीव अणाहारक होता है एव उस समय औदारिक का योग भी नहीं माना जाता है। कार्मण काय योग(कार्मण शरीर का व्यापार)रहता है। अन्य पाँच समयों में आत्म प्रदेश शरीर में ज्यादा रहते हैं और बाहर कम होते हैं। अतः औदारिक शरीर का योग या मिश्रयोग और आहारकता बनी रहती है।

आठ समय का विवरण :-

समय	स स्थान	योग
१	द ड़ रचना-द ड़रूप में आत्मप्रदेश	औदारिक
२	कपाट रचना-कपाट रूप (दिवालरूप)	औदारिक मिश्र
३	पूरित मन्थान-समान किनारावाला घनरूप लोक प्रमाण	कार्मण
४	पूरित लोक-विषम किनारावाला घनरूप लोक प्रमाण	कार्मण
५	लोक साहरण-समघनरूप लोक	कार्मण
६	मन्थान साहरण-कपाट रूप स स्थान	औदारिक मिश्र
७	कपाट साहरण - द ड़रूप स स्थान	औदारिक मिश्र
८	द ड़ साहरण - शरीरस्थ	औदारिक

प्रश्न-३- : २४ द ड़क में समुद्घातें कितनी पाई जाती है तथा जीवों के भूतकालीन और भविष्यकालीन समुद्घातों का परिमाण किस प्रकार है ?

उत्तर- द ड़कों में समुद्घात- नारकी में-४, देवता में-५, चार स्थावर तीन विकलेन्द्रिय में-३, वायुकाय में-४, तिर्यंच प चेन्द्रिय में-५, मनुष्य में-७। ये स ख्या क्रम से ही होती है अर्थात् पहली से तीसरी, पहली से चौथी आदि समुद्घात।

२४ द ड़क के एक-एक जीव की कुल समुद्घातें :-

समुद्घात	जीव	भूतकाल		भविष्यकाल	
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
वेदनीयादि पाँच	२४ द ड़क में	अन ता	अन ता	०/१-२-३	अन ता
आहारक	२३ द ड़क में	०/१-२-३	×	०/१-२-३-४	×
आहारक	मनुष्य में	०/१-२-३-४	×	०/१-२-३-४	×
केवली	२३ द ड़क में	-	×	०/१	×
केवली	मनुष्य में	०/१	×	०/१	×
(०/१-२-३ का अर्थ है-कभी नहीं होवे। यदि होवे तो १-२ आदि।)					

२४ द डक के सभी जीव की कुल समुद्घातें :-

समुद्घात	जीव	भूतकाल		भविष्यकाल	
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
वेदनीयादि पाँच	२४ द ड़क में	×	अन ता	अन ता	अन ता
आहारक	२२ द ड़क में	×	अस ख्याता	×	अस ख्याता
आहारक	वनस्पति में	×	अन ता	×	अन ता
आहारक	मनुष्य में	स ख्याता	अस ख्याता	स ख्याता	अस ख्याता
केवली	२२ द ड़क में	×	×	×	अस ख्याता
केवली	वनस्पति में	×	×	×	अन ता
केवली	मनुष्य में	०/१-२-३	अनेक सो	स ख्याता	अस ख्याता

प्रश्न-४ : २४ द ड़क का एक एक जीव २४ द ड़क में भविष्य काल में सात समुद्घातें कितनी कितनी करेगा ? और भूतकाल में कितनी की है ?

उत्तर- एक एक जीव की प्रत्येक द ड़क में समुद्घातें :-

समुद्घात	जीव	द ड़क में	भविष्यकाल	
			जघन्य	उत्कृष्ट
वेदनीय	नैरयिक	२४ द ड़क में	०/१-२-३	अन ता
वेदनीय	२३ द ड़क	नरक में	०/स ख्याता	अन ता
वेदनीय	२३ द ड़क	२३ द ड़क में	०/१-२-३	अन ता
कषाय	नैरयिक	नरक में	०/१-२-३	अन ता
कषाय	नैरयिक	११ द ड़क देव में	०/स ख्याता	अन ता
कषाय	नैरयिक	ज्योतिषी वैमानिक में	०/अस ख्याता	अन ता
कषाय	नैरयिक	औदारिक द ड़कों में	०/१-२-३	अन ता
कषाय	१३ द ण्ड क के देव	नरक में	०/स ख्याता	अन ता
कषाय	१३ द ण्ड क के देव	१३ द ड़क स्वस्थान में	०/१-२-३	अन ता
कषाय	१३ द ण्ड क के देव	११ द ड़क परस्थान में	०/स ख्याता	अन ता
कषाय	१३ द ण्ड क के देव	ज्यो॰ वैमा॰परस्थान में	०/अस ख्याता	अन ता
कषाय	शेष दस द ण्ड क	नरक देव में	०/स ख्याता	अन ता
कषाय	शेष दस द ण्ड क	ज्यो॰ वैमा॰ में	०/अस ख्याता	अन ता
कषाय	शेष दस द ण्ड क	शेष १० द ड़क में	०/१-२-३	अन ता
मरणा तिक	२४ द ड़क	२४ द ड़क में	०/१-२-३	अन ता
आहारक	२४ द ड़क	२३ द ड़क में	नहीं	×
आहारक	२३ द ड़क	मनुष्य में	०/१-२-३-४	×
आहारक	मनुष्य	मनुष्य में	०/१-२-३-४	×
केवली	२३ द ड़क	मनुष्य में	०/१	×
केवली	मनुष्य	मनुष्य में	०/१	×
केवली	२४ द ड़क	२३ द ड़क में	×	×

विशेष- (१) वैक्रिय समुद्घात कषाय समुद्घात के समान है। चार स्थावर तीन विकलेन्द्रिय में नहीं है। अतः २४ द ड़क वाले जीवों के १७ द ड़क में वैक्रिय समुद्घात का कथन करना। **तैजस समुद्घात** मारणा तिक समुद्घात के समान है किन्तु २४ द ड़क वाले जीवों के १५ द ण्ड क(१३ देव के+१ मनुष्यका + १ तिर्यंच प चेन्द्रिय का=१५) में तैजस समुद्घात का कथन करना।

भूतकाल की अपेक्षा- पाँच समुद्घातें जहाँ होवे वहाँ अन त है।

(१) आहारक समुद्घात २३ द ड़क वालों के मनुष्यपने ०/१-२-३ है। मनुष्य के मनुष्यपने ०/१-२-३-४ है। २३ द ड़क पने तो होती ही नहीं है।

(२) केवली ०/१-२-३ भूतकाल में २३ द ड़क वालों के २४ द ड़क में नहीं है। मनुष्य के मनुष्य पने ०/१ है।

(३) जघन्य ०/१-२-३ इस स केत का अर्थ प्रथम चार्ट में नीचे दिया है। उत्कृष्ट स ख्या चार्ट में यहाँ स्पष्ट है ।

प्रश्न-५ : समुद्घात स ब धी विशेष ज्ञातव्य क्या क्या है ?

उत्तर- १. आहारक समुद्घात तीन बार किए हुए जीव तीन गतियों में मिल सकते हैं। मनुष्य में चार बार किये हुए मिल सकते हैं अर्थात् चौथी बार आहारक समुद्घात करने वाला उसी भव में मोक्ष जाता है।

२. दस औदारिक द ड़क में कोई भी समुद्घात के होने की नियमा नहीं है और होवे तो जघन्य १-२-३ आदि होवे।

३. नारकी में प्रत्येक जीव के वेदनीय समुद्घात नियमतः होती है। शेष किसी भी द ड़क में ऐसा नियम नहीं है।

४. कषाय समुद्घात और वैक्रिय समुद्घात नारकी और देवता दोनों में नियमतः होते हैं।

५. नियमतः होने वाली समुद्घातें १०००० आदि स ख्यात वर्ष की उम्र वालों के जघन्य स ख्याता बार होती है और अस ख्य वर्ष की उम्र वालों के जघन्य अस ख्य बार होती है। इसलिए ज्योतिषी, वैमानिक में कषाय समुद्घात जघन्य अस ख्य कही है और भवनपति आदि में जघन्य स ख्यात कही है।

प्रश्न-६ : प्रत्येक द ड़क के सभी जीवों की अन्य द ड़क में समुद्घातें किस प्रकार कही गई है ?

उत्तर- सभी जीवों की पृच्छा होने से प्रत्येक द ड़क में पाँच समुद्घातें तो भूत-भविष्य में अन त ही कही जायेगी क्यों कि भवी-अभवी सभी शामिल है जो अन तकाल तक करते ही रहेंगे। आहारक और केवली समुद्घात केवल मनुष्य में ही की जाती है वह कोष्ठक में दर्शाई है-

द ड़क के सभी जीवों की २४ द ड़क में समुद्घार्ते:-

समुद्घात	जीव	द ड़क में	भूतकाल में	भविष्यकाल में
५ समुद्घात	२४ द ड़क	२४ द ड़क	अन ता	अन ता
आहारक	२४ द ड़क	२३ द ड़क	×	×
आहारक	२२ द ड़क	मनुष्य में	अस ख्याता	अस ख्याता
आहारक	वनस्पति	मनुष्य में	अन ता	अन ता
आहारक	मनुष्य	मनुष्य में	ज॰ स ख्याता उ॰ अस ख्याता	ज॰ स ख्याता उ॰ अस ख्याता
केवली	२४ द ड़क	२३ द ड़क में	×	×
केवली	२२ द ड़क	मनुष्य में	×	अस ख्याता
केवली	वनस्पति	मनुष्य में	×	अन ता
केवली	मनुष्य	मनुष्य में	ज॰ ०/१-२-३ उ. अनेक सो	ज॰ स ख्याता उ॰ अस ख्याता

प्रश्न-७ : २४ द ड़क में पाई जाने वाली समुद्घातों की अल्पा-बहुत्व किस प्रकार है ?

उत्तर- नारकी में- १. सबसे कम मरण समुद्घात २. वैक्रिय समुद्घात अस ख्यगुणा ३. कषाय समुद्घात स ख्यातगुणा ४. वेदना समुद्घात स ख्यातगुणा ५. असमवहत स ख्यातगुणा ।

देवों के १३ द ड़क में- १.सबसे कम तैजस समुद्घात २. मरण समुद्घात अस ख्यगुणा ३. वेदना अस ख्यगुणा ४. कषाय स ख्यातगुणा ५. वैक्रिय स ख्यातगुणा ६. असमवहत अस ख्यगुणा ।

चार स्थावर- १. मरण समुद्घात सबसे कम २. कषाय समुद्घात स ख्यात गुणा ३. वेदना समुद्घात विशेषाधिक ४. असमवहत अस ख्यगुणा ।

वायुकाय-१. वैक्रिय समुद्घात समसे कम २. मरण समुद्घात अस ख्यगुणा ३. कषाय समुद्घात स ख्यातगुणा ४. वेदना समुद्घात विशेषाधिक ५. असमवहत अस ख्यगुणा ।

विकलेन्द्रिय-१. सबसे कम मरण समुद्घात २. वेदना समुद्घात अस ख्यगुणा ३. कषाय समुद्घात अस ख्यात गुणा ४. असमवहत स ख्यगुणा ।

तिर्यंच प चेन्द्रिय- १. सबसे कम तैजस समुद्घात २. वैक्रिय समुद्घात अस ख्यगुणा ३. मरण समुद्घात अस ख्य गुणा ४. वेदना समुद्घात अस ख्य गुणा ५. कषाय समुद्घात स ख्यात गुणा ६. असमवहत स ख्यातगुणा ।

मनुष्य- १. सबसे कम आहारक समुद्घात २. केवली समुद्घात स ख्यात गुणा ३. तैजस समुद्घात स ख्यात गुणा ४. वैक्रिय समुद्घात स ख्यातगुणा ५. मरण समुद्घात अस ख्यगुणा ६. वेदना समुद्घात अस ख्यगुणा ७. कषाय समुद्घात स ख्यातगुणा ८. असमवहत अस ख्यगुणा ।

समुच्चय जीव-१. सबसे कम आहारक समुद्घात २. केवली समुद्घात स ख्यातगुणा ३. तैजस समुद्घात अस ख्यगुणा ४. वैक्रिय समुद्घात अस ख्यगुणा ५. मरण समुद्घात अन तगुणा ६. कषाय समुद्घात अस ख्य गुणा ७. वेदना समुद्घात विशेषाधिक ८. असमवहत अस ख्यगुणा ।

सात समुद्घातों की अल्पाबहुत्व :-

	वेदनीय	कषाय	मारणा तिक	वैक्रिय	तैजस	आहारक	केवली	असमु॰
जीव	७ विशे॰	६ अस॰	५ अन त	४ अस ॰	३ अस ॰	१ अल्प	२ स ॰	८ अस ॰
पृथ्वी आदि	३ विशे॰	२ स ॰	१ अल्प	×	×	×	×	४ अस ॰
वायु	४ विशे॰	३ स ॰	२ अस ॰	१ अल्प	×	×	×	५ अस ॰
वनस्पति	३ विशे॰	२ स ॰	१ अल्प	×	×	×	×	४ अस ॰
विकलेन्द्रिय	२ अस ॰	३ अस ॰	१अल्प	×	×	×	×	४ स ॰
तिर्यंच प ॰	४ अस ॰	५ स ॰	३ अस ॰	२ अस ॰	१ अल्प	×	×	६ स ॰
मनुष्य	६ अस ॰	७ स ॰	५ अस ॰	४ स ॰	३ स ॰	१ अल्प	२ स ॰	८ अस ॰
देवता	३ अस ॰	४ स ॰	२ अस ॰	५ स ॰	१ अल्प	×	×	६ अस ॰
नारकी	४ स ॰	३ स ॰	१ अल्प	२ अस ॰	×	×	×	५ स ॰

स केत :- स॰ = स ख्यातगणा, अस ॰ = अस ख्यातगणा, अन त॰ = अन तगणा, विशे॰ = विशेषाधिक, असमु॰ = असमवहत(असमोहिया), समु॰ = समुद्घात, पृथ्वी आदि = पृथ्वी पाणी अग्नि, प ॰ = प चेन्द्रिय ।

प्रश्न-८ : कषाय समुद्घातों के स ब ध में यहाँ क्या निरूपण किया गया है ?

उत्तर- कषाय चार है, उनकी समुद्घात भी चार है अर्थात् क्रोध, मान, माया और लोभ चारों की अलग-अलग समुद्घात होती है। २४ द ड़क में चारों ही समुद्घात होती है ।

(१) चौवीस द ड़क के प्रत्येक जीव ने चारों समुद्घात अतीतकाल मे अन त की है और अनागत काल में जघन्य ०/१-२-३ उत्कृष्ट अन त करेगा।

(२) प्रत्येक द ड़क के सभी जीवों ने चारों समुद्घात अतीत काल में अन त की है और भविष्यकाल में अन त करेंगे।

(३) प्रत्येक द डक के एक-एक जीव की प्रत्येक द ड़क में- क्रोध समुद्घात का स पूर्ण कथन वेदना समुद्घात के समान है। मान-माया समुद्घात का स पूर्ण कथन मरण समुद्घात के समान है। लोभ समुद्घात का वर्णन कषाय समुद्घात के समान २३ द ड़क में है किन्तु नरक में आगामी काल में जघन्य ०/ १-२-३ उत्कृष्ट अन त।

समुद्घात	जीव	द ड़क में	भविष्यकाल	
			जघन्य	उत्कृष्ट
क्रोध	नैरयिक	२४ द ड़क में	०/१-२-३	अन ता
क्रोध	२३ द ड़क	नरक में	०/स ख्याता	अन ता
क्रोध	२३ द ड़क	२३ द ड़क में	०/१-२-३	अन ता
मान,माया	२४ द ड़क	२४ द ड़क में	०/१-२-३	अन ता
लोभ	नैरयिक	नरक में	०/१-२-३	अन ता
लोभ	नैरयिक	११ द ड़क देव में	०/स ख्याता	अन ता
लोभ	नैरयिक	ज्योतिषी वैमानिक में	०/अस ख्याता	अन ता
लोभ	नैरयिक	औदारिक द ड़कों में	०/१-२-३	अन ता
लोभ	१३ द ड़क के देव	नरक में	०/१-२-३	अन ता
लोभ	१३ द ड़क के देव	१३ द ड़क स्वस्थान में	०/१-२-३	अन ता
लोभ	१३ द ड़क के देव	११ द ड़क परस्थान में	०/स ख्याता	अन ता
लोभ	१३ द ड़क के देव	ज्यो॰ वैमा॰परस्थान में	०/अस ख्याता	अन ता
लोभ	शेष दश द ड़क	नरक देव में	०/१-२-३	अन ता
लोभ	शेष दश द ड़क	शेष १० द ड़क में	०/१-२-३	अन ता

(४) प्रत्येक द ड़क के सभी जीवों ने प्रत्येक द ड़क में चारों समुद्घातें अन त की है और अन त करेंगे।

कषाय समुद्घातों की अल्पाबहुत्व-(१) नारकी- सबसे कम लोभ

समुद्घात; उससे मान, माया और क्रोध क्रमशः स ख्यात गुणा है; उससे असमवहत स ख्यातगुणा है। **(२)** देवता- सबसे कम क्रोध समुद्घात उससे मान, माया, लोभ और असमवहत क्रमशः स ख्यातगुणा।

(३) तिर्यंच- सबसे कम मान समुद्घात फिर क्रोध, माया और लोभ क्रमशः विशेषाधिक। असमवहत स ख्यात गुणा।

(४) मनुष्य- १. सबसे कम अकषाय समुद्घात(केवली समुद्घात) २. उससे मान समुद्घात अस ख्यगुणा ३-५. क्रोध, माया, लोभ क्रमशः विशेषाधिक ६. असमवहत स ख्यातगुणा। **(५)** समुच्चय जीव- मनुष्य के समान है किन्तु मान समुद्घात अन तगुणा है।

-	क्रोधसमु॰	मान समु॰	माया समु॰	लोभ समु॰	अकषायी	असमु॰
जीव	३ विशे॰	२ अन त	४ विशे॰	५ विशे॰	१ अल्प	६ स॰
मनुष्य	३ विशे॰	२अस ख्य	४ विशे॰	५ विशे॰	१ अल्प	६ स॰
नारकी	४ स॰	२ स॰	३ स॰	१ अल्प	-	५ स॰
देवता	१ अल्प	२ स॰	३ स॰	४ स	-	५ स॰
तिर्यंच	२ विशे॰	१ अल्प	३ स॰	४ स॰	-	५ स॰

प्रश्न-९ : छाद्मस्थिक समुद्घातों की अल्पाबहुत्व किस प्रकार है ?

उत्तर- केवली समुद्घात के अतिरिक्त शेष छहों समुद्घात छद्मस्थों के होती है केवली के नहीं होती है। अतः छाद्मस्थिक समुद्घात छः है। २४ द ड़क में छादमस्थिक समुद्घातें पूर्वोक्त सात समुद्घातों के समान समझना। मनुष्य में सात के स्थान पर ६ समझना।

प्रश्न-१० : समुद्घातों की अल्पाबहुत्व स ब धी तुलना एव विशिष्ट विचारणा क्या है ?

उत्तर- (१) नारकी एव एकेन्द्रिय में वेदना समुद्घात वाले ज्यादा है, कषाय समुद्घात वाले कम है। शेष सभी में वेदना वाले कम है, कषाय वाले ज्यादा है अर्थात् विकलेन्द्रिय आदि में जीव दुःख की अपेक्षा कषायों में ज्यादा रहते हैं। चार कषायों में से भी तीनों गति में लोभ समुद्घात ज्यादा कही गयी है केवल नारकी में क्रोध समुद्घात ज्यादा है।

मौखिक पर परा में इस प्रकार कहा जाता है- १. नारकी में क्रोध ज्यादा २. मनुष्य में मान ज्यादा ३. तिर्यंच में माया ज्यादा ४. देव में लोभ

ज्यादा। उक्त कथन की इस अल्पाबहुत्व से स गति नहीं हो सकती है किन्तु स ज्ञा पद से उसकी स गति हो जाती है।

(२) समुच्चय जीव में मरण समुद्घात से कषाय समुद्घात वाले अस ख्यगुणे कहे गये है जब कि पृथ्वी आदि वनस्पति पर्यंत सभी में स ख्यात गुणे हैं, यह अस गत है। क्यों कि वनस्पति में भी स ख्यातगुणा है तो समुच्चय जीव में अस ख्यातगुणा होना अस भव है। अतः यहाँ लिपि दोष अवश्य है किन्तु यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि **समुच्चय जीव का पाठ गलत है** या पाँच स्थावर का या वनस्पति का।

स भावना यह लगती है कि समुच्चय जीव में कभी स ख्यात का अस ख्यात बन गया हो। टीकाकार ने इस विषय में कोई चिंतन नहीं दिया है, जैसा पाठ मिला वैसा स्पष्टीकरण कर दिया है बल्कि यहाँ तो स्पष्टीकरण भी नहीं करके सुगम बताकर स्वय ही विचार करने का कह दिया; जबकि यहाँ तो विशेष स्पष्टीकरण की आवश्यकता थी।

(३) सात समुद्घातों की अल्पाबहुत्व में समुच्चय जीव, पाँच स्थावर एव मनुष्य-देव में असमवहत अस ख्यगुणे कहे हैं जब कि चार कषायों की अल्पााबहुत्व में सर्वत्र असमवहत को स ख्यातगुणा ही कहा गया है। यह भी आपस में अस गत सा लगता है। यदि कषाय समुद्घातों की अल्पाबहुत्व में सर्वत्र अस ख्यातगुणा कर दिया जाय तो भी नारकी, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच प चेन्द्रिय में विरोध आता है। टीकाकार ने यहाँ पर भी कोई चिंतन प्रस्तुत नहीं किया है।

तीसरे पद में समवहत से असमवहत स ख्यातगुणा कहा गया है। अस ख्यातगुणा नहीं कहा है। अतःअसमवहत सर्वत्र स ख्यातगुणा ही माना जा सकता है। जब विकलेन्द्रिय में असमवहत स ख्यातगुणा हो सकता है तो समुच्च जीव और वनस्पति में स ख्यात गुणा होने में कोई आपत्ति नहीं है और मनुष्य एव देव भी स ख्यातगुणे कहे जाय तो भी कोई आपत्ति नहीं है। इस प्रकार सर्वत्र स ख्यातगुणे असमवहत मान लेने पर **"अ"** लिपिदोष से हुआ मानना होगा। तब कषाय समुद्घातों की तथा सातों समुद्घातों की और तीसरे पद की(२५६ ढ़िगलों की) अल्पाबहुत्व में परस्पर विरोध नहीं आयेगा।

(४) मनुष्य में असमवहत अस ख्यगुणा कह दिया गया है जब कि तीन विकलेन्द्रिय तिर्यंच प चेन्द्रिय में स ख्यातगुणा ही कहा गया है इसका भी कारण टीका में स्पष्ट नहीं किया गया है।

(५) वेदनीय और कषाय समुद्घात वाले आपस में कहीं भी अस ख्यातगुणे नहीं कहे हैं केवल विकलेन्द्रिय में ही अस ख्यातगुणे कहे हैं इसका भी तात्पर्य अज्ञात है। विकलेन्द्रिय के सिवाय सर्वत्र स ख्यातगुणे या विशेषाधिक ही कहे है अतः यहाँ भी **"अ"** लिपि दोष से होना स भव है।

(६) विकलेन्द्रिय, तिर्यंच प चेन्द्रिय और नारकी इन सभी के समवहतों से असमवहत स ख्यातगुणे होते हैं और शेष सभी द ड़कों में असमवहत अस ख्यगुणे अधिक होते हैं। इनमें नारकी देवता आदि का तात्पर्य स्पष्ट है किन्तु विकलेन्द्रिय का कारण अज्ञात है और जब कषायों की अल्पाबहुत्व पर लक्ष्य किया जाय तो दुविधा ही प्रतीत होती है अर्थात् इन अल्पाबहुत्वों का तात्पर्य रहस्यार्थ पर परा में विलुप्त सा हो गया है अथवा तो इनके पाठों में **'अ'** स ब धि लिपि दोष हुए हैं। तत्व केवली गम्य ।

(७) जीव, मनुष्य और तिर्यंच में मान समुद्घात कम है फिर क्रोध, माया, लोभ समुद्घातें क्रमशः विशेषाधिक है जबकि नारकी देवता में कषाय समुद्घातें क्रमशः स ख्यातगुणी है। नारकी में लोभ, मान, माया, क्रोध यह क्रम है और देवता में क्रोध, मान, माया, लोभ अनुक्रम से स ख्यातगुणा है।

(८) अकषाय समुद्घात शब्द से केवली समुद्घात अपेक्षित है और असमवहत शब्द से सातों समुद्घातों से रहित जीव विवक्षित है।

(९) वायुकाय में वैक्रिय समुद्घात वाले बादर पर्याप्तों के स ख्यातवें भाग में होते है फिर भी नारकी देवता से इनकी स ख्या अधिक होती है। क्यों कि ९८बोल की अल्पाबहुत्व में बादर वायुकाय पर्याप्त का ५७वाँ बोल है जब कि देवों का अतिम बोल ४१वाँ है। बारहवें पद के बद्धेलक के अनुसार वायुकाय के वैक्रिय बद्ध शरीर क्षेत्र पल्योपम के अस ख्यातवें भाग है जब कि देव अस ख्य श्रेणियों के प्रदेश तुल्य है। बादर पर्याप्त वायुकाय के स ख्यातवें भाग वालों को वैक्रिय करना कहा जाता है किन्तु वह स गत नहीं है, अस ख्यातवें भाग कहना उपयुक्त है। ऐसा कहने पर भी क्षेत्र पल्योपम के अस ख्यातवें भाग होने में बाधा नहीं आती है।

मूलपाठ में भी पल्योपम का अस ख्यातवाँ कहा है टीका में भी पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग ही सामान्य रूप से कह दिया गया है **क्षेत्र पल्योपम** होने का स्पष्टीकरण टीकाकार ने भी नहीं किया है। आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित विवेचन के १२वें पद में भी क्षेत्र पल्योपम होने की चर्चा नहीं की है तथापि वास्तविकता यही है कि क्षेत्र पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग कहना चाहिये।

नोट :– तुलना विचारणा का सार यह है कि समुच्चय जीव में कषाय समुद्घात स ख्यातगुणा कहना चाहिये और जीव एकेन्द्रिय मनुष्य और देव में असमवहत स ख्यातगुणे कहने चाहिए एव **अ** को लिपिदोष से आया हुआ समझना चाहिये। ऐसा मानने पर अनेक शंकाएँ जड़मूल से स्वतः समाप्त हो जाती है।

प्रश्न-११ : समुद्घात स ब धी समय, क्षेत्रसीमा एव क्रिया लगने का विश्लेषण किस प्रकार है ?

उत्तर– समुद्घात आत्म प्रदेशों के शरीर से बाहर निकलने की प्रमुख क्रिया है। वे आत्म प्रदेश जितने क्षेत्र का अवगाहन करते हैं और उसमें जितना समय लगता है वह इस प्रकार है –

(१) वेदनीय और कषाय समुद्घात में–शरीर की लम्बाई–चौड़ाई का जितना क्षेत्र है उसके अंग और उपांग के मध्य आत्म प्रदेशों से जो रिक्त स्थान है उसे आपूरित करने से शरीर प्रमाण क्षेत्र घनी रूप में आत्म प्रदेशों से व्याप्त होता है।

(२) इस क्षेत्र को आत्म प्रदेशों से व्याप्त करने में एक समय या दो समय उत्कृष्ट तीन समय लगता है।

आत्म प्रदेशों के व्याप्त होने की प्रक्रिया सर्वत्र एक सी होती है। केवली समुद्घात के पहले दूसरे तीसरे समय की प्रक्रिया के समान होती है। जितना क्षेत्र व्याप्त करना होता है उसके अनुसार क्षेत्र की लम्बाई-चौड़ाई का अन्तर पड़ता है। व्याप्त करने का क्षेत्र एक दिशागत हो तो एक समय लगता है चार दिशागत हो या मोड़ हो तो दो समय लगते हैं तथा विदिशा गत हो या विदिशा का मोड़ हो तो तीन समय लगते हैं एव लोका त खुणे(कोने) हो या अन्य ऐसा गमन क्षेत्र हो तो

कदाचित चार समय भी आत्म प्रदेशों को जाने में लग जाते हैं।

(३) इस विधानानुसार मारणा तिक समुद्घात और केवली समुद्घात को छोड़कर शेष पाँच समुद्घात में उत्कृष्ट तीन समय में आत्म प्रदेशों के शरीर से बाहर निकल कर अपने परिलक्षित क्षेत्र में व्याप्त होने की क्रिया पूर्ण हो जाती है। मरण समुद्घात में उत्कृष्ट कदाचित चार समय भी पूर्ण व्याप्ति में लगते हैं। केवली समुद्घात में अजघन्य अनुत्कृष्ट चार समय ही आत्मप्रदेशों को लोक में व्याप्त होने में लगते हैं।

(४) इन सात समुद्घातों के पुद्गल ग्रहण निस्सरण एव कर्म निर्जरण का कुल काल जघन्य उत्कृष्ट अस ख्य समयों का अ तर्मुहूर्त है किन्तु केवली समुद्घात का कुल काल आठ समय का अ तर्मुहूर्त ही होता है एव आहारक समुद्घात का काल जघन्य एक समय का है एव उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त का है।

(५) तात्पर्य यह है कि आत्म प्रदेशों को बाहर व्याप्त होने का काल जघन्य एक समय, २ समय और उत्कृष्ट ३ या ४ समय है और उस व्याप्त क्षेत्र में ग्रहण-निस्सरण आदि स पूर्ण क्रिया समाप्त करने का समय अंतर्मुहूर्त है एव केवली समुद्घात का सम्पूर्ण काल आठ समय है।

(६) मरण समुद्घात गत आत्म प्रदेशों की अवगाहना जघन्य अगुल के अस ख्यातवें भाग होती है और उत्कृष्ट एक दिशा में अस ख्य योजन की होती है। यह सीमा नये उत्पत्ति क्षेत्र के दूरी की अपेक्षा है।

(७) वैक्रिय और तैजस समुद्घात में – जघन्य अ गुल के अस ख्यातवें भाग उत्कृष्ट स ख्याता योजन एक दिशा या विदिशा में। इसमें पुद्गल ग्रहण हेतु द ड़ाकार आत्म प्रदेश फैलाये जाते हैं उसकी लम्बाई की अपेक्षा यह सीमा है।

(८) आहारक समुद्घात में– जघन्य अगुल के अस ख्यातवें भाग उत्कृष्ट एक दिशा में स ख्याता योजन होता है। यह सीमा भी द ड़ निकालने की अपेक्षा ही है।

(९) केवली समुद्घात में– आत्मप्रदेशों की अवगाहना स पूर्ण लोक प्रमाण होती है।

(१०) इन समुद्घातों से छोड़े गये पुद्गल लोक में प्रसारित होते हैं उनसे जिन जीवों की विराधना होती है, उन्हें किलामना पहुँचती है, उसकी क्रिया समुद्घात करने वाले जीव को लगती है। वे क्रियाएँ पाँच है- (१) कायिकी (२) अधिकरणिकी (३) प्राद्वेषिकी (४) परितापनिकी (५) प्राणातिपातिकी। इनका विश्लेषण बावीसवें क्रिया पद में किया गया है। इन पाँच में भी किसी जीव से तीन किसी से चार और किसी से पाँच क्रिया लगती है। उन जीवों को समुद्घात गत जीव से या अन्य जीवों से ३-४ या ५ क्रिया अपनी प्रवृति अनुसार लग सकती है।

(११) नैरयिक की मरण समुद्घात जघन्य साधिक हजार योजन होती है और उत्कृष्ट अस ख्याता योजन होती है। जघन्य पाताल कलशों में जन्मने की अपेक्षा होती है।

(१२) एकेन्द्रिय में मरण समुद्घात में उत्कृष्ट चार समय(दोनों तरफ स्थावरनाल की अपेक्षा)आत्म प्रदेशों को परिलक्षित क्षेत्र व्याप्त करने में लगता है। शेष १९ द ड़क में उत्कृष्ट तीन समय ही लगता है।

(१३) वैक्रिय समुद्घात वायुकाय में जघन्य अगुल के अस ख्यातवें भाग है शेष सभी में जघन्य अगुल के स ख्यातवें भाग है। नारकी और वायुकाय के यह एक दिशा में होती है शेष सभी के दिशा विदिशा में भी होती है।

(१४) तैजस समुद्घात सभी के जघन्य अगुल के अस ख्यातवें भाग की होती है। तिर्यंच में एक दिशा में होती है मनुष्य और देव में दिशा विदिशा में भी होती है।

(१५) वैक्रिय, तैजस, आहारक समुद्घात में १,२,३ समय में आत्मप्रदेशों से जितना क्षेत्र व्याप्त करके पुद्गल ग्रहण निस्सरण होता है उतने क्षेत्र प्रमाण अवगाहना और उतने समय का काल यहाँ प्रस्तुत प्रकरण में बताया गया है। किन्तु इस प्रक्रिया के बाद जो रुप आदि बनाये जाते हैं एव जो क्रिया की जाती है उन रुपों की या क्रिया की अवगाहना या स्थिति आदि नहीं बताई गई है। इससे भी स्पष्ट होता है आत्म प्रदेशों के अवगाहित क्षेत्र से बाहर निकलने की प्रक्रिया को प्रमुख रुप से समुद्घात माना गया है।

प्रश्न-१२ : सातों समुद्घातों का प्रतिफल क्या है ?

उत्तर- वेदनीय समुद्घात में- रोग आदि कष्टों से प्रपीड़ित अवस्था में आत्म प्रदेशों का दुःख जन्य स्प दन होता है। इसमें वेदनीय कर्म का तीव्र उदय और निर्जरा होती है एव परिणाम के अनुसार ब ध होता है।

कषाय समुद्घात में- चारों कषायों की तीव्रता, प्रचड़ता, आशक्ति से प्रभावित आत्म प्रदेशों में कम्पन्न-स्प दन पैदा होता है। इसमें कषाय मोहनीय कर्म का उदय एव निर्जरण होता है एव तन्निमित्तक विविध कर्म ब ध भी होता है।

मरण समुद्घात में- आगामी उत्पत्ति स्थल में आत्म प्रदेशों का गमन और आगमन प्रार भ हो जाता है इसमें आयु कर्म का विशेष उदय एव निर्जरण होता है।

वैक्रिय, तैजस, आहारक- ये तीनों समुद्घातें, प्राप्त लब्धि विशेष के द्वारा अपने-अपने प्रयोजनों से जीव स्वय करता है एव अपने प्रयोजन या कुतुहल को पूर्ण करता है। इसमें नाम कर्म का उदय एव निर्जरण होता है।

इन छहों समुद्घातों में तन्निमित्तक अल्पाधिक सापरायिक कर्म ब ध भी होता है।

केवली समुद्घात मोक्ष जाने के कुछ समय(मुहूर्त प्रमाण) पूर्व होती है। विषम मात्रा में रहे वेदनीय, नाम और गौत्र कर्मों को अवशेष आयु के साथ सम करने हेतु की जाती है। स्थूल(व्यवहार) दृष्टि से स्वतः होती है एव सूक्ष्म सैद्धान्तिक दृष्टि से जीव करता है। इसमें वेदनीय, नाम और गौत्र कर्मों का विशिष्ट उदय एव निर्जरण होता है। वीतरागी होने से केवल ईर्यावहि क्रिया का ब ध होता है।

चारों अघाति कर्मों में जिनके स्थिति आदि की अपेक्षा विशेष विषमता नहीं होती है, वे केवली समुद्घात नहीं करते हैं।

केवली समुद्घात से निर्जीण पुद्गल सम्पूर्ण लोक में व्याप्त होते हैं किन्तु वे अत्य त सूक्ष्म होते हैं, छद्मस्थ जीव उनको वर्ण, गध, रस, स्पर्श से जान देख नहीं सकते।

कोई देव तीव्र सुग ध के ड़िब्बे को खोलकर हाथ में लेकर तीन चुटकी जितने समय में २१ चक्कर जम्बूद्वीप के लगाकार आवे उससे व्याप्त ग ध के पुद्गल अत्य त सूक्ष्म रूप में ऐसे बिखर जाते हैं कि छद्मस्थों के जानने या देखने में विषयभूत नहीं बनते हैं। उसी प्रकार केवली समुद्घात के सर्वलोक में व्याप्त हुए पुद्गलों के विषय में समझना चाहिये।

प्रश्न-१३ : केवली समुद्घात और आयोजीकरण को स्पष्ट रूप से किस प्रकार समझें ?

उत्तर- आयोजीकरण अतर्मुहूर्त का होता है। मोक्ष के सन्मुख होने की प्रक्रिया या मोक्ष जाने के पूर्व की तैयारी को आयोजीकरण कहा जाता है। इस आयोजीकरण में मुख्यतः दो क्रियाएँ होती है- (१) केवली समुद्घात (२) योग निरोध करने की क्रमिक प्रक्रिया।

यों तो तेरहवाँ गुणस्थान जिनको प्राप्त हो गया है वे मोक्ष के सन्मुख ही है, फिर भी अन्तिम तैयारी की प्रमुखता से यहाँ आयोजीकरण विवक्षित है। यह आयोजीकरण केवली समुद्घात से प्रार भ होकर योग निरोध की पूर्णता में समाप्त होता है। योग निरोध की प्रक्रिया पूर्ण होने पर, पूर्ण अयोगी जीव १४वें गुणस्थान में पहुंचता है। वहाँ पर भी अत्यल्प समय-पाँच लघु अक्षर उच्चारण जितने समय तक ठहर कर अवशेष कर्म क्षय करके वह सिद्ध बुद्ध मुक्त होता है।

केवली समुद्घात और योग निरोध प्रक्रिया के बीच भी अस ख्य समयों का अ तर्मुहूर्त काल रहता है जो कई मिनिटों का होता है। उस मध्यकाल में केवली द्वारा गमनागमन, शय्या स स्तारक लौटाना, किसी के साथ अल्प वार्तालाप या देवों को मानसिक उत्तर देने की प्रक्रिया इत्यादि प्रस ग भी बन सकते हैं।

कई जीवों को केवली समुद्घात नहीं होती है उनके भी उस प्रमाण के अ तर्मुहूर्त पूर्व मोक्ष जाने की प्रक्रिया रूप आयोजीकरण चालू हो जाता है। योग निरोध के भी पूर्व की क्रमिक तैयारी होती है एव फिर क्रमशः योग निरोध होता है।

केवली समुद्घात अवस्था में मन और वचन का योग नहीं होता है। काय योग में औदारिक, औदारिक मिश्र एव कार्मण ये तीन काय योग होते हैं।

प्रश्न-१४ : योगनिरोध की प्रक्रिया और शैलेषी अवस्था क्या है एव १४वें गुणस्थान में मुक्त होने स ब धी क्या प्रक्रिया होती है ?

उत्तर- योगनिरोध प्रक्रिया- सर्व प्रथम मनयोग का निरोध किया जाता है। सन्नी प चेन्द्रिय पर्याप्त के प्रथम समय का जो मनोयोग होता है उससे भी अस ख्यगुण हीन मनोयोग का प्रति समय निरोध करते हुए अस ख्य समयों में पूर्ण रूप से मनोयोग का निरोध कर दिया जाता है।

उसके अन तर वचन योग का निरोध किया जाता है। बेइन्द्रिय के पर्याप्त में जघन्य योग वाले के वचन योग से अस ख्यगुण हीन वचन योग का प्रति समय निरोध किया जाता है एव अस ख्य समयों में पूर्णतया वचन योग का निरोध हो जाता है।

उसके बाद काय योग का निरोध किया जाता है। सूक्ष्म अपर्याप्त पनक(फूलन) प्रथम समयोत्पन्न का जो जघन्य काय योग होता है उससे अस ख्यातगुण हीन काय योग का प्रति समय निरोध किया जाता है। अस ख्य समयों में पूर्णतया काय योग का निरोध हो जाता है।

इस प्रकार तीनों योगों का निरोध करके केवली शैलेषी अवस्था को प्राप्त करता है। इस शैलेषी अवस्था में आत्म प्रदेश दो तिहाई (२/३) शरीर अवगाहित क्षेत्र में रहते हैं। काय योग के निरोध के साथ ही १/३ भाग के आत्मप्रदेश स कुचित हो जाते हैं क्यों कि अयोगी होने के पूर्व ही आत्म प्रदेशों के स कुचित होने की क्रिया हो जाती है। शैलेषी अवस्था और अयोगी अवस्था में ऐसी प्रक्रिया स भव नहीं है और इसी में ही उनका अयोगित्व और शैलेषीपन सार्थक है।

फलितार्थ यह है कि तेरहवें गुणस्थान के अत तक- १. आत्मप्रदेशों को १/३ स कोच २. अयोगित्व ३. शैलेषी(निष्प्रक प) अवस्था इन तीनों की प्राप्ति हो जाती है। इन तीनों अवस्था की प्राप्ति होने से ही १४वाँ गुणस्थान प्रार भ होता है, ऐसा समझना चाहिये।

चौदहवें गुणस्थान में अस ख्यगुण श्रेणी करके अस ख्य कर्म स्क धो का क्षय कर, चार अघाती कर्मों का एक साथ क्षय करके, औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर और सभी छोड़ने योग्य पर पदार्थों को केवली त्याग कर देते हैं और ऋजु श्रेणी से, अस्पर्शद् गति से, साकारोपयोग में, एक समय में, अविग्रह गति से सिद्ध होते हैं। वे उर्ध्व लोकाग्र में पहुच कर स्थित होते हैं।

सिद्ध अवस्था में जीव सदा के लिये कर्म रज रहित, शाश्वत आत्म सुखों में लीन रहते हैं। उनका पुनः स सार में आगमन एव जन्म मरण नहीं होता है क्यों कि कर्म ही स सार का बीज है और वे सम्पूर्ण कर्मों को मूलतः क्षय करने से ही सिद्ध बनते हैं।

सिद्धों से सुख का स्वरुप आदि औपपातिक सूत्र में वर्णित है जिसके लिये प्रश्नोत्तर भाग-६ देखना चाहिये ।

॥ पद-३६ स पूर्ण ॥

॥ प्रज्ञापना सूत्र स पूर्ण ॥

॥ जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर भाग-७ स पूर्ण ॥

इस पुस्तक में

प्रूफ सहयोग : श्री विमलकुमार जी नवलखा, सूरत

सेटींग सहयोग : श्री मनसुखभाई सोल की, राजकोट ।

परिशिष्ट

स पादन सहयोगी श्री विमलकुमार जी नवलखा, सूरत के आये प्रश्नों के उत्तर

जीवाभिगम सूत्र आधारित :-

प्रश्न-१ : अढ़ाई द्वीप से बाहर बादर अग्नि नहीं, वर्षा नहीं तो अस ख्याता समुद्रों में जल तथा नदियों में जल की विद्यमानता कैसे ?

उत्तर : बादर अग्नि की वहाँ आवश्यकता नहीं होती क्यों कि कर्मभूमिज लोग वहाँ नहीं होते। वातावरण स्वाभाविक अनुकूल होता है। वर्षा नहीं होती फिर भी समुद्रों में पानी के जीव और पानी के पुद्गल स्वतः उत्पन्न होते रहते हैं। नदी-नाले वहाँ नहीं होते। ढाई द्वीप में पर्वतों पर पद्मद्रह आदि में से निर तर पानी निकलता रहता है और स्वाभाविक उत्पन्न होता रहता है। झरनों में निर तर पानी पर्वत से निकलता रहता है तो भी सदा चालू रहता है वैसे ही ढाई द्वीप के बाहर भी जलीय स्थलों में समझ लेना चाहिये। पानी के जीवों की उत्पत्ति और पुद्गलों के चय-उपचय स्वभाव की ही इसमें मुख्य भूमिका रही हुई है और लोक स्वभाव से ऐसा होता रहता है ।

प्रश्न-२ : ज्योतिषी स्थिर होते है तो वहाँ वातावरण कैसा रहता होगा ?

उत्तर : जहाँ ज्योतिषी स्थिर है वहाँ सूर्य एक-एक लाख योजन दूरी पर व्यवस्थित होते है अतः दिन जैसा प्रकाश सदा रहता है। अतः वहाँ रात-दिन भी परिवर्तित नहीं होते। क्यों कि सदा दिन जैसा ही रहता है, यथा- देवलोकों में, व्य तरों के नगरो में तथा भवनपति के भवनों में सदा रत्नों का प्रकाश रहता है वैसे ही ढाईद्वीप के बाहर भी सूर्यों का प्रकाश रहता है। च द्र, सूर्य से ५० हजार योजन दूर होते है, तारे आदि अपनी अपनी व्यवस्था से ७९० योजन ऊपर से आगे होते है। सूर्य के प्रकाश में वे सभी समाविष्ट रहते है उनका दिखना या नहीं दिखना कोई जरूरी नहीं होता है। देवों के निवासों में सर्वत्र रत्नों का प्रकाश

होता है और ढाईद्वीप बाहर सूर्यों का प्रकाश होता है । किसी को कोई तकलीफ नहीं होती है ।

प्रश्न–३ : सूर्य-च द्र और अन्य ज्योतिषीयों को हमेशा देव उठाते है; तो क्या वहाँ देवों की अदली बदली होती है ? समय बदलता है, पालियां बदलती है ? उनका व्यवहार कैसे होता है? और स्थिर ज्योतिषीयों का विमान कौन उठाते हैं या नहीं ?

उत्तर : चर ज्योतिषी विमानों को जो हजारों देव उठाते हैं वे गतिरतिक स्वभाव वाले होने से वहाँ रहे हुए घोडे आदि आकृतियों में स्वतः प्रवेश करके वहन करते रहते हैं। लवणशिखा को भी लाखों देव स भाले रखते हैं। यह सभी स्थितियाँ लोक स्वभाव से चलती रहती है और देव भी उसी स्वभाव से कार्यरत रहते हैं। देवों के वैक्रिय शक्ति होती है इससे उन्हें कहीं जाने आने में रूकावट नहीं आती है। बाकी पालियाँ पलटना आदि कुछ हो तो उसका वर्णन उपलब्ध नहीं होने से कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। स्थित विमानों को किसी को उठाने जैसी कोई व्यवस्था नहीं होती है अर्थात् ढाईद्वीप के बाहर के ज्योतिषीयों के वाहक देव होने की शक्यता नहीं लगती है। वे विमान लोक स्वभाव से आकाश में यथावत स्थिर रहते हैं। शास्त्र में उनके लिये(अणुत्तर विमान के समान) कोई आधार नहीं बताया गया है ।

प्रश्न–४ : पाताल कलश एक लाख योजन गहरा है, अधोलोक की भूमि में ९९ हजार योजन तक समुद्र से भी नीचे गया है, तो क्या वहाँ नरक के पाथड़ों में दिखता है । पोलार में क्या स्थिति है?

उत्तर : पाताल कलशे १ लाख योजन ऊँडे है उनकी भित्ति पृथ्वीकाय की है वह रत्नप्रभा की ठोस पृथ्वी में ही समाविष्ट रहती है। जहाँ नैरयिकों के रहने के पाथडों की पोलार आती है वहाँ पाताल कलशों की दिवाल स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। उस दिवाल के पास कोई भ्रमण करने या रहते नैरयिक काल कर जाय तो पाताल कलशों के अ दर के पानी में जलचर आदि के रूप में भी उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसा नैरयिकों की मारणा तिक समुद्घात की लम्बाई के कथन से प्रज्ञापना पद–२१ से ज्ञात होता है । वहाँ नारक जीवों की मारणा तिक समुद्घात जघन्य

१००० योजन साधिक कही है, जो पाताल कलशों की भित्ति से स ब धित होती है ।

प्रश्न–५ : लवण समुद्र एक हजार योजन का गहरा है, प्रदेश–प्रदेश करके ७०० योजन ऊँचाई बढ़ती है, पानी की ऊँचाई + समुद्र की गहराई = १७०० योजन गहरा हुआ क्या ? उदकमाल १६००० (१५३००) योजन हुआ है क्या ?

उत्तर : लवण समुद्र के पानी की ऊँचाई और गहराई दोनों क्रमशः बढने से किनारे से ९५००० योजन जाने पर पानी की ऊँचाई ७०० योजन और गहराई १००० योजन हो जाती है । उदकमाल कुल १७००० योजन समुद्रीतल से है उसमें उपरोक्त १७०० योजन समाविष्ट है अर्थात् स्वत त्र दगमाल १००००योजन चौडाई वाला १७०००–१७०० =१५३०० योजन ऊँचा है ।

प्रश्न–६ : छोटे कलश एक हजार योजन गहरे है, पाथड़ा तीन हजार योजन का है तो कलश लकटते है या वहाँ पृथ्वी है ?

उत्तर : एक हजार योजन ऊँडे छोटे पाताल कलशे तो प्रथम पाथडे के १००० योजन की छत की पृथ्वी में ही समाविष्ट रहते हैं । कलशों के अ दर पोलार होती है, बाहर ठोस भूमि होती है । कलशे लटकने की स्थिति नहीं है । ये कलश ता बे, पीतल के निर्मित नहीं होते किन्तु स्वभावतः पृथ्वी में रचित होते हैं इन्हें पृथ्वी का हिस्सा समझना चाहिये ।

प्रश्न–७ : ग्रैवेयक, अणुत्तर विमान के देव क्या वस्त्र रहित रहते हैं (जीवाभिगम प्रश्नोत्तर, भाग–६, पेज–१४६)

उत्तर : ग्रैवेयक अनुत्तर विमान के देवों के वस्त्र आभूषण श्रृ गार विक्रिया आदि नहीं होते है, वे जन्म से ही व्यवस्थित सु दर शरीर वाले होते हैं । नवजात बालक के समान । अ तर्मुहूर्त में पर्याप्त होने के बाद अपनी उसी परिपूर्ण दो हाथ या एक हाथ की अवगाहना से अपनी शय्या या विमान की सीमा में ही रहते हैं । विशेष गमनागमन भी उन्हें नहीं है । विशिष्ट अवधिज्ञान या विभ गज्ञान के भावों में तथा श्रेष्ठ वर्ण, ग ध, रस, स्पर्श की अनुभूति में सुखमय अवस्था में रहते हैं।

प्रश्न–८ : सातवें गुणस्थान वाला गिरे तो छट्ठे, चढ़े तो ८वें और काल करे तो ४ में, क्या अन्य में नहीं मरता ? ६ और ११ आदिमें मरता हे क्या ? ८ से १४में से १३वाँ छोड़कर समुद्घात नहीं होती तो मरता कैसे ?

उत्तर : सातवें गुणस्थान वाला अपने गुणस्थान में काल करे तो देव बनता है , वहाँ चौथा गुणस्थान हो जाता है । विरतिभाव नहीं रहने से । ऊपर के या नीचे के गुणस्थान में जाने की अपेक्षा आठवें और छट्ठे में जाता है । किसी भी गुणस्थान में जाने के बाद वहाँ से काल करे या किसी ऊपर नीचे के गुणस्थान में जावे तो फिर वह उस गुणस्थान की गत कहलाती है । सातवें गुणस्थान की सीधी और अन तर गत में ६, ८ और चौथे गुणस्थान की मार्गणा कही गई है, वह मार्गणा द्वार का विषय है । बाकी १२वाँ, १३वाँ और तीसरा गुणस्थान अमर है, शेष किसी भी गुणस्थान में जीव मर सकते हैं ।

प्रश्न–९ : नरक, भवनपति, व्यन्तर के आवास मेरु से ५ लाख योजन विस्तार छोड़कर(ज बूद्वीप लवणसमुद्र) बाद में होते हैं ?

उत्तर : नारकी जीव समभूमि से २००० योजन ऊँडे तक नहीं है । बाद में १००० योजन की पोलार में होते है। भवनपति के आवास भी चालीस हजार योजन नीचे जाने के बाद है । अतः इनके लिये समुद्रों का पानी आदि कुछ बाधक नहीं है । व्य तरों के नगर १०० योजन समभूमि से नीचे जाने के बाद है अतः वे समुद्रों के नीचे नहीं होते । मात्र अस ख्य द्वीपों के नीचे की भूमि के पोलार में होते हैं । उनके नगर ज बूद्वीप आदि छोटे द्वीपों के नीचे होने की स भावना नहीं है क्यों कि उनके नगर हजारों लाखों योजन के होते हैं ।

प्रश्न–१० : सलिलावती–वप्रा १००० योजन नीचे है, सीतोदा नदी लवणसमुद्र में मिलती है, वहाँ ९५००० योजन तक लवण समुद्र में पानी नहीं है क्या, यह कैसे स भव हुआ ? लवणसमुद्र चूड़ी की तरह गोल है, १००० योजन की जगती है तो वहाँ जगती में द्वार है ? और द्वार है तो १००० योजन का पानी वहाँ इकट्ठा क्यों नही हुआ वहाँ कोई बा ध है ?

उत्तर : सलिलावती–वप्रा विजय एक हजार योजन ऊँडी है, वहाँ की सीतोदा नदी का पानी जगती के नीचे से अर्थात् उसकी नीचे की भूमि से होकर ९५००० योजन जाकर लवणसमुद्र के जल में समाविष्ट हो सकता है अथवा बीच में ही पृथ्वी में फैलकर विलीन हो जाता है ऐसा समझ सकते है । मूल पाठ में इसकी स्पष्टता नहीं मिलने से पूज्य श्री समर्थमलजी म॰सा॰ ऐसा समाधान फरमाते थे । जगती और द्वार वगैरह तो समभूमि की सीध से ही ऊपर आठ योजन है । जगती के नीचे और द्वार के नीचे जगती की भूमि १००० योजन तक ठोस भूमि है । जो सलिलावती विजय तक ऊँडी खुली दिखती है । उसी का भेदन करके सीतोदा नदी का पानी पृथ्वी में जाता है।

प्रज्ञापना सूत्र आधारित :–

प्रश्न–१ : भवनपति में उत्तर में ३,६६,००,००० और दक्षिण में ४,०६,००,००० ये अस ख्याता अधिक कैसे हुए ?

उत्तर : भवनपति के जो उत्तर और दक्षिण में भवन है वे स ख्याता अस ख्याता योजन के होते हैं । उनमें अस ख्य देवों का समावेश हो जाता है, जिससे दक्षिण में स ख्याता विमान अधिक होने पर भी देव अस ख्यातगुणा हो सकते हैं ।

प्रश्न–२ : स यतादि में १४ योग(कार्मण छोड़कर)इसे समझावें?

उत्तर : स यत में ४ मन के, ४ वचन के योग होते ही हैं । काया के औदारिक शरीर होने से उसके–२, वैक्रिय शरीर बनावे तो उसके दो और आहारक शरीर बनावे तो उसके दो योग होते हैं । यों कुल ४+४+२+२+२=१४ योग सामायिक, छेदोपस्थापनीय स यत में हो सकते हैं । ये दोनों स यत आहारक ही होते है । इसलिये एका त अनाहारक ऐसा कार्मण योग इनमें नहीं होता है । यदि समुच्चय स यत की पृच्छा करेंगे तो उसमें केवली का समावेश हो जाने से १५ ही योग कहे जायेंगे । केवली समुद्घात के तीन समय अनाहारक होने के समय का कार्मण योग यथाख्यात चारित्र में गिना जाता है । इस प्रकार अलग–अलग अपेक्षा से– (१) समुच्चय स यत में–१५ योग (२) सामायिक छेदो–पस्थापनीय में–१४ योग (३) परिहार विशुद्ध में– ९ कोई लब्धि नहीं

फोडते ।(४) सूक्ष्म स पराय में-९ (५) यथाख्यात में-११(४ मन के, ४ वचन के, ३ काया के) योग होते हैं ।

प्रश्न-३ : वैमानिक देव देवी ऊर्ध्वलोक तिर्यंकलोक प्रतर में रहे हुए बताया है, वहाँ वैमानिक निवास नहीं है फिर स ख्यातगुणा कैसे ?

उत्तर : वैमानिक देव मरकर ऊर्ध्वलोक से तिरछालोक में मनुष्य, तिर्यंच में जन्मते हैं उस समय वाटेवहेता या मारणा तिक समुद्घात में वे ऊर्ध्वलोक-तिरियलोक के स धिस्थान के दोनों प्रतरों का स्पर्श करते है । एक समय में देवों के जन्म मरण की स ख्या लघुद ड़क के उपपात द्वार में दी है । उसमें जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट स ख्याता अस ख्याता देवों के १ समय में जन्मने-मरने का कहा है । अतः निवास नहीं होने पर भी उपरोक्त अपेक्षा से वे कभी कहीं स ख्यातगुणा कभी कहीं अस ख्यातगुणा भी हो सकते हैं ।

प्रश्न-४ : वैमानिक अधोलोक में स ख्यातगुणा लिखा है, भवनपति के भवनों में या नरक में जाने के कारण, ऐसा क्यों ?

उत्तर : वैमानिक देव भवनपति के भवनों में या नरक में मित्रता या अन्य स ब ध से जा सकते हैं । जैसे आहारक समुद्घात कोईक श्रमण करते है तो भी लोक में उत्कृष्ट अनेक हजार मिल सकते । केवली समुद्घात में भी अनेक सौ लोक में मिल सकते है उसी तरह स योगवश अस ख्य देव होने से कभी नीचे लोक में जाने वाले स ख्याता अस ख्याता भी मिल सकते हैं ।

प्रश्न-५ : समुच्चय त्रस और प चेन्द्रिय ऊर्ध्वलोक तिर्यंकलोक में अस ख्यातगुणा है । अलग-अलग स ख्याता भी-अस ख्याता भी लिखा मिलता है, सही क्या है ?

उत्तर : समुच्चय त्रस और प चेन्द्रिय ऊर्ध्वलोक-तिरियलोक में पूर्व बोल(तेलोक)की अपेक्षा स ख्यगुणा होते हैं । इनके अपर्याप्त भी स ख्यात गुणे होते हैं । किन्तु इनके पर्याप्त के बोल में मूलपाठ में अस ख्यात गुणा कहा है । इसलिये पर्याप्त-अपर्याप्त और समुच्चय का ध्यान नहीं रखने से कहीं स ख्यातगुणा और कहीं अस ख्यातगुणा पुस्तकों में

मिलता है । मूलपाठ के प्रमाण से ऊपर स्पष्ट किया है ।

प्रश्न-६ : प्रज्ञापना में सलिलावती का नाम सभी जगह दिया है वप्रा का क्यों नहीं दिया ?

उत्तर : शास्त्र में मुख्यता या अपेक्षा से एक विजय का नाम मिलता है किन्तु पूरा पश्चिम महाविदेह ढाल वाला होने से अ तिम दो विजय अधोलोक में हो जाती है ऐसा ही स्पष्टीकरण ग्र थों एव सूत्र व्याख्या में है जो तर्कस गत भी है । अतः सर्व सम्मत है ।

प्रश्न-७ : पद-३ में खेत्ताणुवाय के अ तर्गत क्षेत्र स ब धी अल्पा-बहुत्व में दिशा की अपेक्षा द्रव्य में सबसे थोड़े अधोदिशा में कहे हैं, अधोदिशा में काल नहीं होना बताया है, यह किस अपेक्षा से है ?

उत्तर : दिशा की अपेक्षा अधो दिशा में काल नहीं होता है । क्यों कि अधोदिशा ४ प्रदेशी मात्र होती है जो मेरु के रुचक प्रदेश से नीचे लोका त तक होती है । उसमें सूर्य का प्रकाश नहीं जाता है, ठोस पृथ्वी होने से । सलिलावती, वप्रा विजय अधोलोक में है । अतः वहाँ काल है । अधो दिशा ४ प्रदेशी में वे विजय नहीं आती है । इस तरह अधो दिशा और अधोलोक का अ तर समझना चाहिये । ऊर्ध्व दिशा में कालद्रव्य होता है क्यों कि सूर्य का प्रकाश मेरु के अ दर तक जाता है ।

प्रश्न-८ : पड़िवाई के गुणस्थान १४ लिखे हैं, ११वें के बाद पतित नहीं होता तो कैसे लिखा ?

उत्तर : पडिवाई सम्यग्दृष्टि में जो १४ गुणस्थान कहे है वे भविष्यकाल की अपेक्षा कहे है, भूतकाल की अपेक्षा नहीं । ग्यारहवें गुणस्थान से पतित होने के बाद वह पडिवाई कहलाता है । अतः उन भूतकालीन गुणस्थानों को नहीं गिना जाता । जब से वे पडिवाई समग्दृष्टि बने है तब से लेकर मोक्ष जाने तक उनमें कुल १४ ही गुणस्थान हो सकते हैं ।

प्रश्न-९ : एका त मति श्रुत अज्ञान में ९८ बोलों में ३६ बोल और समुच्चय २ अज्ञान में ३९ बोल(५०-५१-५२) ये ज्यादा, तो ये कम ज्यादा किस प्रकार ?

उत्तर : एका त मतिश्रुत अज्ञान में मात्र २ अज्ञान वाले बोल ही लिये जाते हैं । समुच्चय दो अज्ञान में ३ विकलेन्द्रिय का अपर्याप्त गिना जाता है क्यों कि उसमें ५-६ उपयोग होते है उसमें अज्ञान भी है ही और २ ज्ञान भी उसमें होने से वह बोल एका त अज्ञानी में नहीं लिया जा सकेगा ।

प्रश्न-१० : अस्तिद्वार में निगोद को जीवास्तिकाय नहीं गिना, पुद्गलास्तिकाय गिना, कैसे ?

उत्तर : ९८ बोल में ४ बोल शरीरों की अपेक्षा है । निगोद के शरीर मात्र उसमें गिने हैं । अतः उन ४ बोलों को पुद्गलमय शरीर होने से पुद्गलास्तिकाय में गिना जाना उपयुक्त है । उन अस ख्य निगोद शरीरों में जीव अन त होते हैं । ९८ बोल में चारो बोल अस ख्य के हैं । अतः उसमें जीव नहीं गिने गये हैं ।

प्रश्न-११-१२ : दो गति से आवे दो में जावे(तिर्यंच मनुष्य), ४९ बोल भी है ४३ बोल भी है, छ अपर्याप्ता कम ? ५९,६१,६२, ७९ तीन से आवे दो में जावे, कैसे ?

उत्तर : ये चारों बोल पृथ्वी, पानी और वनस्पति के है, इन्हें तीन की आगत दो की गत में नहीं लिया है । ६ बोल पर्याप्ता के लिये हैं । दो अपेक्षा अलग अलग बताई है उसमें पृथ्वी, पानी, वनस्पति के अपर्याप्ता को विकल्प से दोनों बोल में रखे हैं, निकाले हैं । परन्तु वास्तव में अपर्याप्ता में मरने वाले पृथ्वी, पानी, वनस्पति, देव से नहीं आते हैं उनकी दो की आगत गत कहना सही होता है ।

प्रश्न-१३ : नरक में नपु सक है, योनि का अर्थ समझावें ?

उत्तर : नारक, ५ स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और स मूर्च्छिम तिर्यंच मनुष्य ये सभी नपु सक है । उत्पत्ति स्थान को ही अपेक्षा से योनि कहा जाता है । देवता भी शय्या में उत्पन्न होते है, वही उनका योनि स्थान है ।और वे अचित पुद्गल का प्रथम आहार ग्रहण करते है, अतः उनकी अचित्त योनि गिनी गई है ।

प्रश्न-१४ : छठा भ ग नहीं ब ध्यो, बा धे, नहीं बा धसी यह शून्य भ ग कैसे ? (भ.श.८ उ.८)

उत्तर : इरियावही कर्मब ध जीव ने उस भव में पहले बा धा नहीं और वर्तमान में ११वें या १२वें गुणस्थान में(प्रथम समयवर्ती)बा धता है और भविष्य में द्वितिय समयवर्ती वगैरह नहीं बा धेंगे वैसा नहीं होता है । एक भव की अपेक्षा कथन हो तो यह भ ग-नहीं बा ध्यो, बा धे और नहीं बा धसी नहीं होता है । पुस्तक पृष्ट-१६१ में भी स्पष्टीकरण दिया ही है । उसे ध्यान से समझने का प्रयत्न करना चाहिये ।

प्रश्न-१५ : काया रूपी भी, अरूपी भी कहा,कैसे?(भ.श.१३,उ.७)

उत्तर : काया में कार्मण काया-शरीर अति सूक्ष्म होने से उसके चौफर्सी होने से, कभी भी सामान्य ज्ञानी को नहीं दिखने से, इस अपेक्षा से काया अरूपी भी है ऐसा कहा है । औदारिक आदि की अपेक्षा रूपी भी है । यहाँ नयदृष्टि समझना ।

प्रश्न-१६ : अन तजीवों के लक्षण में एक साथ जन्मना मरना कहा है, तो जब अन तजीवी क दमूल जमीन में लगता है, तब छोटा फिर बड़ा होता है तो उस स्थिति में जीवों की स ख्या घटती बढ़ती है या उनकी शरीर की आकृति ही बढ़ती है ?

उत्तर : क दमूल में एक शरीर के अन त जीव साथ में जन्मते-मरते है, वैसे उसमें अस ख्य शरीर होते है । क दमूल के बढने पर उसमें शरीर बढते रहते हैं । उन शरीरों में अन त जीव नये बढते हैं । घटने पर शरीर घटते है उनके अन त जीव साथ में मरते है । एक गोले में अस ख्य प्रतर और १ प्रतर में अस ख्य शरीर होते हैं और एक शरीर में अन त जीव होते हैं ।

प्रश्न-१७ : अनार्य देशों में सि हल मालव कैकय देश जो गिने है वे कैसे है ? सि हल(रावण श्लाघनीय ल का में था) मालव (उज्जैनी, धारा) आदि किस प्रकार कथन है ?

उत्तर : कैकय देश आधा आर्य है ऐसा प्रज्ञापना सूत्र के साडे पच्चीस आर्यदेश में बताया है । सिंहल मालव देश अनार्य की गिनती में जो कहे है उसमें से मालव को आर्य में भी गिनाया है । बाकी कुछ नाम साम्यता और समय-समय, नाम-क्षेत्र परिवर्तन भी हो सकते हैं ।

प्रश्न-१८ : ३० अकर्मभूमि ५६ अन तरद्वीपों में बादर अग्नि नहीं होती, वहाँ कभी आग वगैरह लगती नहीं होगी ?

उत्तर : अकर्मभूमि क्षेत्रों में आग नहीं लगती है क्यों कि बादरअग्नि के जीव नहीं होते हैं । भरत क्षेत्र के पहले दूसरे और तीसरे आरे के समान ।

प्रश्न–२० : इन्द्रियपद में रसनेन्द्रिय की अवगाहना अस ख्यातगुणी क्यों बताई और रसना से स्पर्शन संख्यातगुणी ही कैसे ?

उत्तर : ५ इन्द्रियों में तीन की अवगाहना अ गुल के अस ख्यातवें भाग की है, उनसे रसनेन्द्रिय की अस ख्यगुणी हो जाती एक अ गुल हो तो भी। और फिर रसनेन्द्रिय से स्पर्शेन्द्रिय स ख्यातगुणी ही होती है । चाहे १००० योजन का शरीर हो तो भी उसमें स ख्याता अ गुल ही होते है।

प्रश्न–२१ : श्रोत्रेन्द्रिय का विषय १२ योजन बताया यह ४ कोस से या ४ हजार कोस से कहा है ? यांत्रिक सुविधा में १२ योजन (४ कोस से)क्या मायने रखता है ?

उत्तर : इन्द्रिय का जघन्य विषय आत्मा गुल से होता है और उत्कृष्ट विषय उत्सेधा गुल से होता है । श्रोतेन्द्रिय का विषय गर्जना वगैरह से समझना । या त्रिक प्रयोग में शब्द परिणामा तरित या प्रवाहित होते है, अतः ज्यादा दूर से सुनाई दे, उसमें बाधा नहीं समझना ।

प्रश्न–२२ : अलोक में अजीव का देश है, ऐसा क्यों कहा, अजीव क्यों नहीं कहा ?

उत्तर : अलोक में केवल आकाशद्रव्य है । अस्तिकाय में आकाश को एक द्रव्य गिना है । उसमें लोकाकाश का ख ड कम हो जाने से आकाश का देश(बडा विभाग) है । अतः अजीव(आकाश)का एक देश कहा जाता है, स पूर्ण अख डित आकाश द्रव्य नहीं होने से ।

प्रश्न–२३ : कायप्रयोग में तैजस नहीं लिया है, समस्त स सारी जीवों के दोनों की उपलब्धता होती ही है, तैजस की उपलब्धता से ही कार्मणप्रयोग होता है, फिर तैजस प्रयोग और कार्मण मिश्र प्रयोग क्यों नहीं स्वीकारा ?

उत्तर : यह तो शास्त्रकारों की अपेक्षा विशेष है । तैजस का कार्य सीमित है और कार्मण का कार्य विशेष महत्त्वशील और अधिक व्याप्त

है ऐसा स्वीकार सकते है । ये दोनों सदा के साथी है इसलिये इनका मिश्र नहीं कहा है, एक के कहने का रखा गया है । तीन शरीर के मिश्र है उनमें जो शरीर का योग कभी कभी मिलता है उसका मिश्र लिया है बाकी तो आगम आशय का श्रद्धा का विषय है, ऐसा समझना चाहिये ।

प्रश्न–२४ : देव–देवी की सम्मिलित अल्पाबहुत्व में कृष्ण, नील, कापोत लेश्या कही है, नीचे देवियों में वैमानिक में तेजोलेश्या ही कही है, स्पष्ट करे ?

उत्तर : समुच्चय देव देवी में चारों जाति की देवियाँ होने से वहाँ चार लेश्या होती है किन्तु वैमानिक में तो कृष्ण, नील, कापोत लेश्या होती ही नहीं है । तो उनकी देवी में एक तेजो लेश्या ही पाई जाती है ।

प्रश्न–२५ : कापोतलेश्या का मिश्रवर्ण(ताम्र)किन–किन के मिलने से होता है ?

उत्तर : कापोतलेश्या का वर्ण लाल+आसमानी अथवा लाल+ग्रीन से दोनों तरह से बन सकता है, क्यों कि शास्त्र में पाँच र ग में नीले वर्ण में दोनों वर्णो को(नीला और हरा)गिनाया जाता है । थोकडे में लाल+काला मिश्र कहा है । **(पद–१७, उद्देशक–४)**

प्रश्न–२६ : पद–२३ में अ त में स्त्रियों की नरकगति नहीं कहीं है, उत्कृष्ट में ६ठी नरक भी नहीं बताई, क्यों ?

उत्तर : पद २३ के अ त में उत्कृष्ट आयुब ध का विषय है और उत्कृष्ट आयुब ध ३३ सागर को लिया है । अतः स्त्री को अनुत्तर विमान के ३३ सागर में लिया है और सातवीं नारकी के ३३ सागर में नहीं लिया । अन्य मध्यम स्थिति की वहाँ पृच्छा नहीं हैं । प्रत्येक कर्म का जघन्य ब ध और उत्कृष्ट ब ध कौन करता है यही यहाँ का विषय है अतः छट्ठी नरक का प्रस ग नहीं होने से कथन नहीं है ।

प्रश्न–२७ : अपरिग्रहिता देवियों के स्पर्श, आलि गन, रूप, शब्दादि से ही मैथुन सेवन और वीर्य पुद्गल प्रविष्ट होना किस प्रकार समझाया है ?

उत्तर : जिस प्रकार श्राप से वचन पुद्गलों का असर होता है, म त्र–

त त्र-जाप-तप से पुद्गलों का असर होता है जिससे देवों का आसन क पायमान होता है, अ गस्फुरण होता है। प्रयोग विशेष से विद्या के बल से मानव भी वीर्य पुद्गल प्रक्षेप कर सकता है। इस प्रकार औदारिक पुद्गल अनेक प्रकार से पहुँच सकते है, पहुँचने के प्रमाण भी देखने सुनने को मिलते हैं, तो वैक्रिय शरीर गत पुद्गल भी तथाप्रकार के स्वभाव से देवी के शरीर में मैथुन-परिचारणा के भावों से पहुँच सकते हैं। तीसरे से १२वें देवलोक तक के देव विकार भावों से पहले, दूसरे देवलोक की देवियों को स्मृतिपट पर लाते हैं, उससे भी देवी को कुछ ज्ञात हो जाता है और वह विशेष रूप से अवधिज्ञान से जानकर फिर उस स ब धित देव के पास उन देवलोकों में यथास्थान पहुँच जाती है। इस प्रकार वैक्रिय पुद्गलों की और देवों की विशिष्ट योग्यता से देवी के शरीर में वीर्य पुद्गलों का पहुँचना स भव हो सकता है।

प्रश्न-२८ : केवली समुद्घात के समय सर्व आत्मप्रदेश निकालते हैं या कुछ ? समुद्घात के कितने समय बाद मोक्ष होता है ? मनुष्य में भूतकाल में ०/१ केवली समुद्घात बताया यह कैसे?

उत्तर : केवली समुद्घात में आत्मप्रदेश सम्पूर्ण लोक में व्याप्त होते है।अत: केवली के औदारिक शरीर ने जितने आकाशप्रदेश अवगाहन किये है उतने आत्मप्रदेश शरीर में रहते हैं। शेष सभी आत्म प्रदेश चौथे समय तक क्रम से बाहर निकलते है अर्थात् कुछ पहले समय में, कुछ दूसरे समय में, कुछ तीसरे समय में और कुछ अ त में चौथे समय में जो भी निकलने शेष बचे है वे निकल जाते हैं। पाँचवें समय से वापिस स कोच होना प्रार भ हो जाता है।

समुच्चय मनुष्य में केवली समुद्घात की पृच्छा होने से केवली समुद्घात के बाद के अ तर्मुहूर्त रहने वाले मनुष्यों का समावेश होने से कभी एक किये हुए केवली मिल सकते है, कभी कोई नहीं हो तो नहीं भी मिले।

केवली समुद्घात के अ तर्मुहूर्त बाद जीव मोक्ष जाता है वह अ तर्मुहूर्त १०-२० मिनट आदि का भी हो सकता है, कम ज्यादा भी यथायोग्य समझ लेना।

प्रश्न-२९ : केवली समुद्घात में वेदनीय कर्म का उदय निर्जरा ठीक है पर तु नामगौत्र की विशेष निर्जरा कैसे ?

उत्तर : वेदनीय, नाम, गौत्र कर्म आयु स्थिति में पूरे प्रदेश क्षय नहीं हो सके जितने अधिक होने से ही उन तीनों कर्मों के प्रदेश निर्जरा करने के लिये ही केवली समुद्घात करना आवश्यक होता है। केवल वेदनीय कर्म मात्र का वहाँ कोई स ब ध नहीं है। कोई विशेष साता-असाता विपाक उसमें नहीं होता है। अत: प्रदेश क्षय तीनों का समझना योग्य है।

प्रश्न-३० : शैलेषीकरण के समय १/३ आत्मप्रदेशों का स कुचन क्यों होता है ? कैसे होता है ? ऊपर से कम या नीचे से ?

उत्तर : आत्म प्रदेशों को शरीर रहित होकर मोक्ष जाना होता है और शरीर की अवगाहना में तो जगह जगह पोलार अ दर बाहर होती है। मुक्तात्मा में सघन प्रदेश हो जाना है। दूसरी बात यह भी है कि हाथ पैर अलग होने से उनके ऊपर नीचे फैलाने से पूर्ण अवगाहना मानव की गिनी जाती है और शैलेषीकरण में फिर हाथ पैर अलग जैसा नहीं रहकर सघन हो जाते हैं इस अपेक्षा भी बहुत कुछ एक तिहाई कम हो जाती है।

प्रश्न-३१ : केवली समुद्घात स्त्री नहीं करती क्या ?

उत्तर : केवली समुद्घात स्त्री नहीं करे, ऐसा कोई भी स केत आगम या व्याख्या में मिला नहीं। ९८ बोल के बासठिये के थोकडे वालों ने मनुष्याणी के बोल को केवली समुद्घात में नहीं गिना है। इसके पक्ष में या विपक्ष में कोई स केत कहीं से मिल नहीं सका है।

प्रश्न-३२ : क्या सातवीं नरक में भी सम्यग्दृष्टि होते हैं?

उत्तर : सातवीं नरक में मिथ्यात्वी ही उत्पन्न होते हैं और मिथ्यात्वी ही मरते हैं। फिर भी वहाँ अस ख्य सम्यग्दृष्टि होना बताया है, तीनों दृष्टि सातवीं नारकी में गिनी जाती है। भगवती श.१३, प्रश्न-४।